Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

|| श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथाय नमः ||

P 13663

श्री दिपक ज्योति जैन संघ

कल्प सूत्र

परेल टेंक रोड, आंबावाड़ी, कालाचौकी, मुम्बई-400 033 के सौजन्य से विक्रम संवत 2058 सन् 2002

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

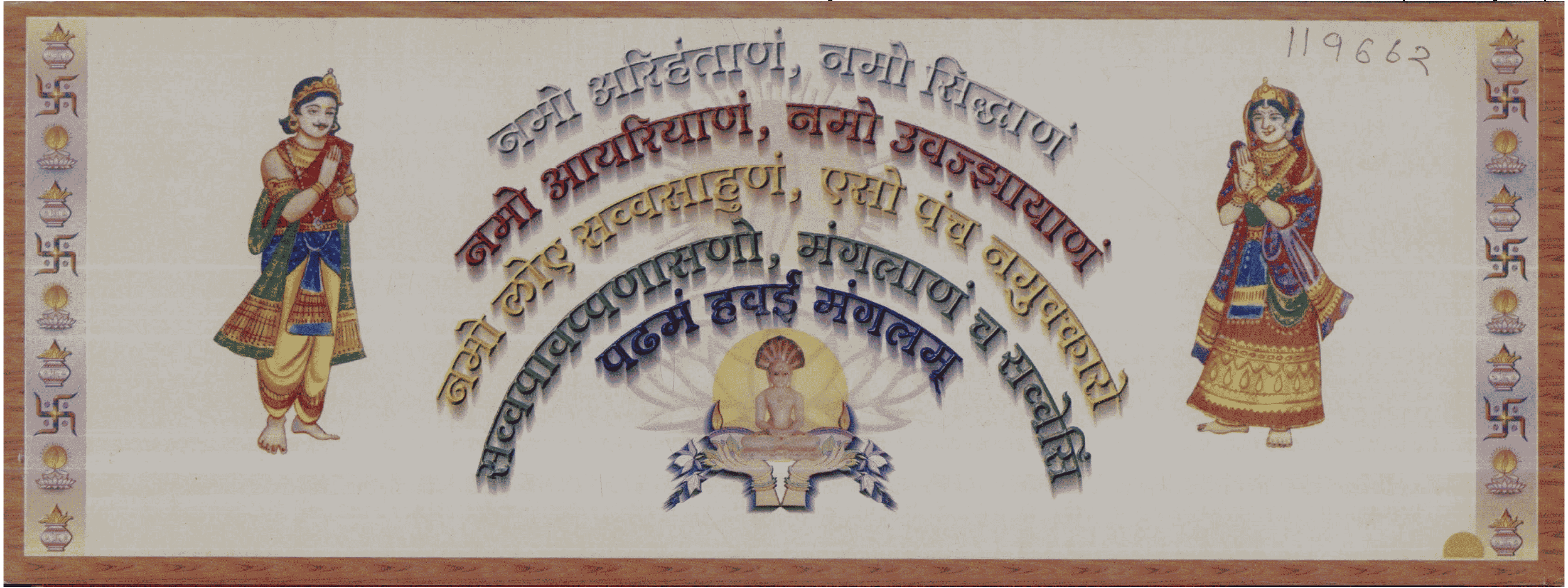

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private and Personal Use Only

हम उन सभी गुरु भगवंतो, साधु–साध्वीयो के हृदय से आभारी हैं जिन्होंने इन महान ग्रन्थों को लिखने एवं अनुवाद करने का भारी परिश्रम किया हैं जिन्होंने जैन धर्म के इन महान ग्रंथो को सभी संघो तक पहुचाने का बहुआयामी एवं कठोर कार्य किया हैं ।

प्रकाशक :
श्री दिपक ज्योति जैन संघ टॉवर,
परेल टेंक रोड, आंबावाडी, कालाचौकी, मुम्बई–400 033
संवत : 2058 सन् 2002
आवृत्ति : 1000
मूल्य : अमूल्य
मुद्रक : सुराणा ऑफसेट, फालना, फोन : 02938–33241, 33341

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

।। ऊँ परमेष्ठिने नमः ।।

श्री कल्पसूत्र का
हिन्दी अनुवाद

सुबोधिका टीका का हिन्दी भाषांतर

(श्री कल्पसूत्र जो सर्व शास्त्रों में शिरोमणि है और जिस के प्रति जैनों के बच्चे-बच्चे की श्रद्धा और भक्ति है उस पर अनेक महापुरूषों ने अनेक टीकायें रचीं हैं जिनमें टीका बहोत ही प्रख्यात और आदरणीय है उसका यह अक्षरशः हिन्दी भाषांतर किया गया है ।)

For Private and Personal Use Only

प्रथम व्याख्यान-

मंगलाचरण-

परम कल्याण के करने वाले श्री जगदीश्वर अरिहंत प्रभु को प्रणाम करके मैं बालबुद्धिवालों को उपकार करने वाली ऐसी सुबोधिका नाम की कल्पसूत्र की टीका करता हूं ।1। इस कल्पसूत्र पर निपुण बुद्धिवाले पुरूषों के लिए यद्यपि बहुतसी टीकायें हैं तथापि अल्पबुद्धिवाले मनुष्यों को बोध प्राप्त हो इस हेतु से यह टीका करने में मेरा प्रयत्न सफल है ।2। यद्यपि सूर्य की किरणें सब मनुष्यों को वस्तु का बोध करने वाली होती हैं तथापि भोंरे में रहे हुए मनुष्यों को तो तत्काल दीपिका ही उपकार करती है ।3। इस टीका में विशेष अर्थ नहीं किया, युक्तियां नहीं बतलाई और पद्य पाण्डित्य भी नहीं दिखलाया गया है परन्तु सिर्फ बालबुद्धि अभ्यासियों को बोध करने वाली अर्थ व्याख्या ही की है ।4। यद्यपि मैं अल्प बुद्धि वाला होकर यह टीका रचता हूं तथापि सत्पुरूषों का उपहासपात्र नहीं बनूंगा क्योंकि उन्हीं सत्पुरूषों का यह उपदेश है कि सब मनुष्यों को शुभ कार्य में यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये ।5।

पूर्व काल में नवकल्प विहार करने के क्रम से प्राप्त हुए योग्य क्षेत्र में और आजकल परम्परा से गुरू की आज्ञा वाले क्षेत्र में चातुर्मास रहे हुए साधु कल्याण के निमित्त आनन्दपुर में सभा समक्ष वांचे बाद संघ के समक्ष

For Private and Personal Use Only

पाँच दिन और नव वांचनाओं से श्री कल्पसूत्र को पढ़ते हैं । इस कल्पसूत्र में (कल्प) शब्द से साधुओं का आचार कहा जाता है । उस आचार के दश भेद हैं, जो इस प्रकार हैं 1 आचेलक्य, 2 औद्देशिक, 3 शय्यातर, 4 राजपिण्ड, 5 कृतिकर्म, 6 व्रत, 7 ज्येष्ठ, 8 प्रतिक्रमण, 9 मासकल्प और 10 पर्युषणा, इन दश कल्पों की व्याख्या इस प्रकार हैः–

1 आचेलक्य–

जिस के पास चेल याने वस्त्र न हो वह अचेलक कहा जाता है, उस अचेलक का भाव सो 'आचेलक्य' अर्थात वस्त्र का न होना । वह तीर्थंकरों को आश्रित कर के रहा हुआ है । उस में पहले और अन्तिम तीर्थंकर को शकेन्द्र द्वारा मिले हुए देवदूष्य वस्त्र के दूर होने पर उन्हें सर्वदा अचेलक अर्थातु वस्त्र रहित होना माना गया है और दूसरे बाईस तीर्थंकरों को सदा सचेलक कहा है । साधुओं की अपेक्षा से श्री अजितनाथ आदि बाईस तीर्थंकरों के तीर्थ के साधु, जो सरल और प्राज्ञ कहलाते है उन्हें अधिक मूल्यवान विविधरंगी वस्त्रों के उपभोग की आज्ञा होने से सचेलपणा अर्थात् वस्त्र सहितपणा है और कितने एक श्वेतरंगी बहु परिमाण वाले वस्त्र को धारण करने वाले होने के कारण उन्हें अचेलकत्व ही है । इस प्रकार उनके लिए यह कल्प अनियमित रूप से है । जो श्री ऋषभ और श्री वीर प्रभु अचेलक पणा के तीर्थ के साधु हैं वे सब श्वेत और परिमाणवाले जीर्ण पुराने वस्त्र धारण करने वाले होने के कारण अचेलक ही हैं । यहां पर शंका होतीं है कि वस्त्र का सद्भाव होने पर भी

उन्हें अचेलक कैसे कहा जा सकता है ? इस का समाधान यह है कि जो जीर्ण होता है वह कम होने के कारण वस्त्र रहित ही कहा जाता है । यह सब लोगों में प्रसिद्ध ही है । जैसे कोई मनुष्य एक लंगोटी पहन कर नदी उतरा हो तो वह कहता है कि मैं नग्न होकर नदी उतरा हूँ । ऐसे ही वस्त्र होने पर भी लोग दर्जी और धोबी को कहते है कि भाई ! हमें जल्दी वस्त्र दो, हम नग्न फिरते हैं । इसी प्रकार साधुओं को वस्त्र होने पर भी अचेलक समझ लेना योग्य है । यह प्रथम आचार हुआ।

2 औद्देशिक कल्प–

उद्देसिअ–औद्देशिक कल्प अर्थात् आधाकर्मी । साधु के निमित्त अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र और उपाश्रय आदि को बनाया हो वह प्रथम और अन्तिम तीर्थकर के तीर्थ में एक साधु को, एक साधु के समुदाय को, अथवा एक उपाश्रय को आश्रित कर के बनाया गया हो वह सब साधुओं को नहीं कल्पता । परन्तु बाईस तीर्थंकरों के तीर्थ में जिस साधु को उदेश कर के बनाया गया हो उसको हीं नहीं कल्पता दूसरों को कल्पता है । यह दूसरा औद्देशिक आचार है ।

3 शय्यातर कल्प–

तीसरा कल्प शय्यातर–जो उपाश्रय का स्वामी हो सो शय्यातर, उसका पिण्ड अर्थात् 1 अशन, 2 पान

For Private and Personal Use Only

3 खादिम, 4 स्वादिम, 5 वस्त्र, 6 पात्र, 7 कंबल, 8 रजोहरण, 9 सूई, 10 उस्तरा, 11 नाखून तथा दाँत सुधारने का अस्त्र और 12 कान साफ करने का साधन, यह बारह प्रकार का पिण्ड है । यह सब तीर्थकरों के तीर्थ में सब साधुओं को नहीं कल्पता । क्योंकि इस से अनेषणीय वस्तु का प्रसंग और उपाश्रय मिलना दुर्लभ हो जाय, इत्यादि बहुत दोष लगने का संभव है । यदि साधु सारी रात जागे और प्रातःकाल का प्रतिक्रमण दूसरे मकान में जा कर करे तो वह मूल उपाश्रय का स्वामी शय्यातर नहीं होता और यदि साधु वहां निद्रा लेवे और प्रतिक्रमण दूसरे स्थान पर करे तो उन दोनों स्थानों का स्वामी शय्यातर होता है । एवं चारित्र की इच्छावाला उपधिसहित शिष्य तथा तृण, मट्टी के डले, भस्म (राख), मल्लक (कूंडी–प्याला) काष्टपट्टक, चौकी, संथारा और लेप आदि वस्तुयें शय्यातर की भी कल्पती हैं । यह तीसरा शय्यातर आचार है ।

3 राजपिण्ड–

राजपिण्ड–सेनापति, पुरोहित, नगरशेठ, मंत्री और सार्थवाह–इन पांचों सहित राज्यपालन करनेवाला और जिसको राज्याभिषेक मूर्धाभिषिक्त हुआ हो अर्थात् जिसके मस्तक पर अभिषेक हुआ हो उसका पिण्ड राजपिण्ड कहलाता है । वह अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कंबल और रजोहरण 8 प्रकार का कहलाता है सो पहले और अन्तिम तीर्थकरों के साधुओं को राजकुल में आने जाने में सामन्त आदि से स्वाध याय का विनाश होने का संभव है, तथा साधुओं को देख कर अपशकुन बुद्धि से शरीर को व्याघात

होने का संभव है तथा खाद्यलोभ, लघुता और निन्दा होने का संभव होने के कारण राजपिण्ड का निषेध किया है । बाईस्स तीर्थकरों के साधु सरल और प्राज्ञ होते हैं इसलिए उनको उपरोक्त दोष का अभाव होने से उन्हें राजपिण्ड कल्पता है । यह चौथा राजपिण्ड आचार है ।

5 कृतिकर्म –

कृतिकर्म–वन्दना, वह दो प्रकार की है । अभ्युत्थान और द्वादशावर्त्त । वन्दना सब तीर्थकरों के तीर्थ में साधुओं को परस्पर दीक्षा पर्याय से करनी चाहिये । साध्वी यदि चिरकाल की दीक्षित हो तथापि उसके लिए नवीन दीक्षित साधु वन्दनीय है, क्योंकि धर्म में पुरूष की प्रधानता है । यह पांचवां कृतिकर्म आचार है ।

6 व्रतकल्प –

व्रत–महाव्रत उनमें से बाईस तीर्थकरों के साधुओं को चार होते हैं, क्योंकि वे यह समझते हैं कि अपरिग्रहीत स्त्री के साथ भोग होना असंभव है, इसलिए स्त्री भी परिग्रह ही है, अर्थात् परिग्रह का परित्याग करने से स्त्री का भी परित्याग हो जाता है । पहले और अन्तिम तीर्थकरों के साधुओं को तो ऐसा ज्ञान नहीं होता । इसी कारण उनके पांच महाव्रत है यह छठ्ठा व्रत आचार है ।

7 ज्येष्ठकल्प –

ज्येष्ठ–बडे का कल्प । अर्थात् बडे छोटे का व्यवहार । उस में पहले और अन्तिम तीर्थकरों के साधुओं

For Private and Personal Use Only

में उपस्थापना–बड़ी दीक्षा से लेकर दीक्षा–पर्याय गिना जाता है और बाईस तीर्थकरों के साधुओं में निरतिचार चारित्र होने से प्रथम दीक्षा के दिन से ही दीक्षापर्याय गिना जाता है । अब पिता और पुत्र, माता और पुत्री, राजा तथा मंत्री, सेठ और मुनीम आदि यदि साथ ही दीक्षा लेवें तो उन्हें गुरू लघुत्वका बर्ताव कैसा करना चाहिये सो कहते हैं :– यदि पिता आदि गुरू जनों और पुत्रादि लघु जनों ने साथ ही दशवैकालिक सूत्र का चतुर्थ अध्ययन तक पठन और योगोद्वहन कर लिया हो तो उन्हें अनुक्रम से ही स्थापित करना उचित है । यदि उसमें कुछ थोडा अन्तर हो, तो भी पुत्रादि को विलंब कराकर पितादि को ही बड़ा रखना योग्य है । ऐसा न किया जाय तो पिता आदि को छोटे होने के कारण पुत्रादि पर अप्रीति होने की सम्भावना है । यदि पुत्रादि बुद्धिमान हों और पितादि स्थूल बुद्धि हों और उन दोनों में अधिक अन्तर हो तो उन्हें इस प्रकार समझना चाहिये–''हे महानुभाव ! तुम्हारा पुत्र बुद्धिमान होते हुए भी दूसरे बहुत से साधुओं से छोटा हो जायगा । यदि आपका पुत्र बडा गिना जाय तो इसमें आप का ही गौरव है'' इस प्रकार समझाने पर यदि वह समझ जाय और अनुज्ञा देवे तो पुत्रादि को बड़ा स्थापन करना चाहिए । यदि न स्वीकार करे तो जैसे हैं वैसे ही क्रम से स्थापन करना संगत है । यह सातमा ज्येष्ठ आचार है।

8 प्रतिक्रमण कल्प–

अतिचार लगे या न लगे तथापि श्री ऋषभदेव और श्री वीर प्रभु के मुनियों को दोनों समय अवश्यमेव

प्रतिक्रमण करना चाहिये । शेष तीर्थकरों के साधुओं को दोष लगे तो प्रतिक्रमण करना चाहिये, अन्यथा नहीं । उसमें भी मध्यम तीर्थकरों के साधुओं को कारण होने पर ही देवसिक और रात्रिक (राई) प्रतिक्रमण करना चाहिये । इसके अतिरिक्त पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करने की उन्हें आवश्यकता नहीं । यह आठवां प्रतिक्रमण कल्प जानना

9 मासकल्प–

पहले तथा अन्तिम तीर्थकरों के मुनियों को, मासकल्प की मर्यादा नियम से उन्हें दुष्काल, अशक्ति और रोगादि कारणों में शहर के पुरे में, दूसरे महल्ले मे और उस वसति के कौने में परावर्तन कर के भी इस मर्यादा को बनाये रखना व पालना शास्त्र का आदेश है । परन्तु शेष काल में एक मास से अधिक एक स्थान पर न रहना चाहिये, क्योंकि ऐसा न करने से प्रतिबन्ध, लघुता आदि बहुत से दोष प्राप्त हो सकते हैं । परन्तु मध्यम तीर्थकरों के मुनि सरल और प्राज्ञ होने के कारण उपरोक्त दोषों से वर्जित हैं अतः उनको मासकल्प की मर्यादा नियम से नहीं हैं । वे मुनि एक स्थान पर पूर्वकोटि तक भी रह सकते हैं और दोष लगने की संभावना होने पर महिने के अन्दर भी विहार कर जा सकते है । यह नवमा मासकल्प जानना ।

10 पर्युषण कल्प–

पर्युषणा–एक स्थान पर निवास तथा वार्षिक पर्व ये दोनों का नाम पर्युषणा है । वार्षिक पर्व भाद्रपद

मासकी शुक्ल पंचमी को और कालकसूरि के बाद शुक्ल चतुर्थी को ही होता है । समस्ततया निवास रूप जो पर्युषणा कल्प है वह दो प्रकार का है । सालंबन और निरालंबन । उसमें जो निरालंबन कारण के अभाववाला पर्युषणा कल्प है उसके जघन्य और उत्कृष्ट ऐसे दो भेद हैं । उसमें जघन्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमण से लेकर कार्तिक चातुर्मास के प्रतिक्रमण तक सित्तर दिन के परिमाणवाला है । उत्कृष्ट पर्युषणाकाल चार मास का माना जाता है । मतलब पहले जमाने में ऐसा रिवाज था कि जहां साधुओं को चातुर्मास करना होता वहां सिर्फ पांच दिन ठहरते और जब पांच दिन पूरे हो जाते तो फिर मकान मालिक से और पांच दिन की आज्ञा लेकर रहते । इस तरह से क्षेत्र की अनुकूलता देखकर अगर पचास दिन वहां पूरे हो जाते तो पिछले सित्तर दिन वहां पर ही रहकर चातुर्मास पूर्ण करते, मगर आज कल यह प्रथा नहीं हैं । आज कल तो चार मास की ही आज्ञा लेकर रहा जाता है । यह दो प्रकार का निरालंबन–पर्युषणा काल स्थविरकल्पियों का है । जिनकल्पियों के लिए तो एक निरालंबन चातुर्मासिक की कल्प है, जिस क्षेत्र में मासकल्प किया हो उसी क्षेत्र में चातुर्मास करने से और चातुर्मास किये बाद मासकल्प करने से 6 मास का कल्प होता है वह भी स्थविर कल्पियों के लिए ही उचित है । यह पर्युषणा कल्प प्रथम और अन्तिम तीर्थकरों के तीर्थ में नियत है और शेष बाईस तीर्थकरों के तीर्थ में अनियत है, क्योंकि उनके साधु तो दोष के न होने पर एक ही स्थान में देश ऊणा–कुछ कम पूर्वकोटि तक रहते हैं और यदि दोष मालूम दे तो एक मास भी नहीं रहते । इसी प्रकार महाविदेह क्षेत्र में भी

बाईस तीर्थकरों के साधुओं के जैसी ही वहां के तीर्थकरों के साधुओं की कल्पव्यवस्था जान लेनी चाहिए । इति दशमः पर्युषणा कल्पः । इस तरह यह दशवां पर्युषणा कल्प समझना ।

ये उपरोक्त दशकल्प श्री ऋषभदेव और श्री महावीर प्रभु के तीर्थ में नियत हैं और अन्य बाईस तीर्थकरों के तीर्थ में अचेलक, औद्देशिक, प्रतिक्रमण, राजपिण्ड, मासकल्प और पर्युषणा ये 6 कल्प अनियत हैं और शेष 4 चार शय्यातर, कृतिकर्म, व्रत और ज्येष्ठ कल्प नियत हैं । यहां पर यदि कोई शंका करे कि सबके लिए एक समान साध्य मोक्षमार्ग में पहले, अन्तिम और बाईस तीर्थकरों के साधुओं के आचार में भेद क्यों ? इस के समाधान में कहते हैं कि इस में जीव विशेष ही कारण है । श्री ऋषभदेव प्रभु के तीर्थ के जीव सरल स्वभाव वाले और जड़बुद्धि होते हैं । अतः उन्हें धर्म का बोध होना दुर्लभ है, क्योंकि उन में जड़त्व है । श्री वीर प्रभु के तीर्थ के जीव चक्र और जड़ हैं इसलिए उन्हें धर्म का पालन दुष्कर है । श्री अजितनाथ आदि बाईस तीर्थकरों के साधुओं को धर्म का बोध और पालन-ये दोनों ही सुकर हैं, क्योंकि वे सरलस्वभावी और प्राज्ञ होते हैं । इसी कारण उनके आचार में भेद पड़ा है । यहां पर उन के दृष्टांत बतलाते हैं-

ऋजु-जड़ पर दृष्टांत (पहिला)

प्रथम तीर्थकर के कई-एक साधु शौच आदि से निवृत होकर कुछ देर में आये । उनसे गुरू ने पुछा कि आज इतनी देर कहां हुई ? साधु बोले-स्वामिन् ! मार्ग में एक नट नाच रहा था उसे देखने में देर हो गई । गुरू ने

For Private and Personal Use Only

कहा कि-हे महानुभावों ! नट का नाच देखना साधु को नहीं कल्पता । साधुओं ने सादर गुरू का वचन अंगीकार कर लिया । एक दिन फिर वे हीं साधु बाहर से कुछ देर कर के आये पूर्ववत् गुरू के पूछने पर वे बोले-स्वामिन् ! आज हम रास्ते में नाच करती हुई एक नटनी को देखने खडे हो गए थे । गुरू बोले-हे महानुभावों ! उस दिन हमने तुम्हे नटका नाच देखना मना किया था । जब नट का नाच देखना मना है तब नटनी के नाच का तो स्वयं ही निषेध हो गया क्योंकि वह अधिक राग का कारण है । वे हाथ जोड़ कर बोले-महाराज ! हमें यह मालूम नहीं था । अब से हम ऐसा न करेंगे । यहां पर वे प्रथम तीर्थकर के साधु जड़ बुद्धि होने से नट का नाच निषेध करने पर नटनी का नाच निषेध नहीं समझ सके, परन्तु स्वभाववाले होने के कारण गुरू को सरल उत्तर दे दिया ।

(दूसरा दृष्टांत)

इसी प्रकार का एक दूसरा भी दृष्टांत दिया है-कुंकृण के किसी एक बणिक ने वृद्धावस्था में दीक्षा ली थी । एक दिन उस नये मुनि ने ईर्यावहीं के कार्योत्सर्ग में अधिक देर लगा दी । जब उसने कुछ देर के बाद कार्योत्सर्ग पारा तब गुरू महाराज ने पूछा कि-इतनी देर ध्यान कर के तुमने क्या चिन्तवन किया ? वह बोला-स्वामिन् ! जीवदया का चिन्तवन किया । गुरू ने पूछा-जीवदया का चिन्तवन किस प्रकार का ? वह बोला-भगवन् ! पहले गृहस्थावस्था में खेत में उगे हुए वृक्ष झाड़ी आदि को उखेड़ कर मैं खेत बोता था तब

अच्छे धान्य पैदा होते थे । अब यदि मेरे लड़के निश्चिन्त रह कर खेत में से घास, तृण आदि न उखाडेंगे तो धान्य पैदा न होने से उन विचारों का क्या हाल होगा ? इस प्रकार सरलता से अपना यथार्थ अभिप्राय गुरू के समक्ष कह दिया। गुरू ने कहा कि- हे महानुभाव ! तुमने यह दुर्ध्यान किया है, मुनियों को ऐसा ध्यान चिन्तवन नहीं करना चाहिये । गुरू के निषेध करने पर उसने तहत्ति कह कर मिच्छामि दुक्कडं दिया । ये दो दृष्टांन्त प्रथम तीर्थकर के समय के प्राणियों की जड़ता और बतलाते हैं । अब श्रीवीर प्रभु के शासन के साधुओं के लिए भी दो दृष्टांन्त देते हैं-

वक्र-जड़ पर दृष्टांत (पहिला)

(1) एक दिन श्रीवीर प्रभु के शासन के साधु मार्ग में एक नट का नाच देख बाहर से देर में आये । मालूम होने से गुरू ने नटके नाच देखने का निषेध किया । फिर एक दिन वे रास्ते में नाचती हुई नटनी को देख कर आये । गुरूने देरी का कारण पूछा तब सत्य छिपा कर और हीं उत्तर देने लगे । जब गुरूने तर्जना कर पूछा, तब उन्हों ने यथार्थ बात बतला दीं । गुरू ने धमकाया और कहा कि-उस दिन निषेध किया था फिर भी तुम नटनी का नाच देखने क्यों खड़े रहे ? ऐसी शिक्षा देने पर उल्टा गुरू को हीं वे ओलंभा देने लगे कि जब आपने नट का नाच निषेध किया था तभी नटनी के नाच का भी निषेध करना चाहिए था । इसमें हमारा क्या दोष है ? यह तो आपका हीं दोष है जो उस वक्त आपने नटी का नाच देखना भी निषेध न किया ।

For Private and Personal Use Only

(2) एक व्यापारी अपने पुत्र को हमेशा यह शिक्षा दिया करता था कि बेटा ! पिता आदि अपने गुरूजनों के सामने बोलना न चाहिये । पिता की इस प्रशस्त शिक्षा को पुत्र ने वक्रतया मन में धारण कर रक्खा । एक दिन घर के सब मनुष्य बाहर गये थे । उसने अवसर देख कर विचारा कि सदेव शिक्षा देनेवाले पिता को आज मैं भी शिक्षा दूँ ! यह सोच कर वह मकान के भीतर की सांकल लगा कर घर में बैठ गया । पितादि के घर आने पर बहुत सी आवाजें देने से भी उसने अन्दर से सांकल न खोली । तंग हो कर दीवार पर से कूद कर पिता ने अन्दर जाके देखा तो लड़का खिड़ खिड़ा कर हँस रहा है । धमकाने पर वह पिता से बोला—आपने ही तो मुझे शिक्षा दी हुई है कि बड़ों के सामने न बोलना ? फिर मैं कैसे आपकी आज्ञा भंग करता ? इन दोनों दृष्टांन्तों से श्रीवीर प्रभु के तीर्थवर्ती प्राणियों की वक्रता और जड़ता झलक आती है । अब श्री अजितनाथादि बाईस तीर्थकरों के ऋजु प्राज्ञ मुनियों के दृष्टांन्त देते हैं:—

ऋजु—प्राज्ञ पर दृष्टांन्त

एक दिन किनतेक श्री अजितनाथ प्रभु के साधु मार्ग में नट का नाच देखकर देर से आये । देरी का कारण पूछने पर उन्होंने गुरू के सामने यथार्थ बात कह दी । गुरू ने नट नाच देखना निषेध किया । एक दिन वे दिशा जाकर वापिस उपाश्रय को लौट रहे थे । रास्ते मे एक नटनी नाच रही थीं । उसे देख कर प्राज्ञ होने के कारण वे विचार करने लगे कि उस दिन गुरूजी ने राग पैदा होने में कारणभूत होने से नट का नाच

देखना मना किया था तो नटनी का नाच तो विशेष रागजनक होने से वह तो स्वतः ही निषिद्ध है । इस तरह विचार कर नटी का नृत्य देखे बिना ही उपाश्रय चले आये । यहां पर शिष्य की ओर से कहा जाता है कि तब तो बाईस तीर्थकरों के ऋजु और प्राज्ञ मुनियों को ही धर्म हो सकता है, परन्तु ऋजुजड़ प्रथम तीर्थकर के मुनियों को कैसे धर्म हो सकता है ? क्योंकि उन में बोध नहीं होता । तथा श्रीवीर प्रभु के वक्र और जड़ मुनियों को तो सर्वथा धर्म का अभाव ही होना चाहिये । गुरू कहते हैं कि-ऐसी शंका न करना, क्योंकि यद्यपि प्रथम तीर्थकर के मुनियों को जड़ता के कारण स्खलना पाने का संभव है तथापि उनका भाव शुद्ध होने से उनमें धर्म होता है । एवं वीरप्रभु के मुनि वक्र और जड़ होने से उनका मनोभाव ऋजु प्राज्ञ की अपेक्षा शुद्ध न होवे तथापि सर्वथा धर्म ही उनमें नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता । ऐसा कहने में महान् दोष लगता है । इस विषय में कहा है कि -जो यह कहे कि आज धर्म नहीं है, सामायिक नहीं है ओर व्रत नहीं है उसे समस्त संघ को मिलकर संघ से बाहर कर देना उचित है ।

कारणसर विहार और क्षेत्रगुण

जो पर्युषणाकल्प सत्तर दिनमान नियततया कथन किया है सो भी कारण के अभाव में ही समझना योग्य है । यदि कुछ कारण हो तो चातुर्मास में विहार करना कल्पता है; जैसे कि ''उपद्रव हो, आहार न मिलता हो और राजादि से अपमान होता हो या रोगादि कारण हो तो चातुर्मास में भी अन्यत्र विहार करना

For Private and Personal Use Only

कल्पता है । शौच जाने की जगह अच्छी न हो, उपाश्रय में जीवोत्पति हो, कुंथुवे हुए हों, अथवा आग लग गयी हो, सर्पादि का भय हो तो वहां से अन्यत्र विहार कर सकते हैं । यदि निम्न कारण हों तो चातुर्मास के बाद भी रहना कल्पता है । वृष्टि बन्ध न होती हो, और मार्ग कीचड वाला हो तो कार्तिक पूर्णिमा के बीतने पर भी उत्तम मुनि वहां रह सकते हैं । ऊपर कथन किये उपद्रवादि दोष न हों यथापि संयम निर्वाह के लिए क्षेत्र के गुणों की गवेषणा करना युक्ति संगत है । क्षेत्र जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम एवं तीन प्रकार का कहा है । उसमें जो चार गुणयुक्त हो वह जघन्य कहा जाता है । वे चार गुण इस प्रकार हैं– जहां पर जिनमंदिर हो, जहां पर स्थंडिल–शौच जाने की शुद्ध और निर्जीव एवं परदेवाली जगह हो, जहां स्वाध्याय करने की भूमि सुलभ हो और जहां पर मुनियों को आहार पानी सुलभता से मिल सकता हो । जो तेरह गुणों से युक्त हो वह क्षेत्र उत्कृष्ट कहा जाता है । वे तेरह गुण ये हैं–(1) जहां पर विशेष कीचड़ न होता हो, (2) जहां पर अधिक संमूर्च्छिम जीव उत्पन्न न होते हो, (3) शौच जाने का स्थान निर्दोष हो, (4) रहने का उपाश्रय स्त्रीसंसर्गादि से रहित हो, (5) गोरस अधिक मिल सकता हो, (6) लोकसमूह विशाल और भद्रिक हो, (7) वैद्य भद्रिक हो, (8) औषधि सुलभ हो, (9) गृहस्थों के घर सकुटुम्ब और धन धान्यादि से पूर्ण हों, (10) राजा भद्रिक हो, (11) ब्राह्मणादिकों से मुनियों का अपमान न होता हो, (12) भिक्षा सुलभ हो और (13) जहां पर स्वाध्याय शुद्ध होता हो । इन तेरह गुणों युक्त उत्कृष्ट क्षेत्र जानना चाहिये । पहले कथन किये चार गुणों से अधिक अर्थात्

पांचवे गुण से लेकर बाहरवें गुण पर्यन्त मध्यम क्षेत्र समझना चाहिये । प्रथम उत्कृष्ट क्षेत्र की गवेषणा करना । वैसा न मिलने पर मध्यम क्षेत्र खोजना और यदि वह भी न मिले तो जघन्य क्षेत्र में चातुर्मास करना; परन्तु वर्तमानकाल में तो गुरू महाराजने आज्ञा की हो उस क्षेत्र में मुनियों को चातुर्मास करना चाहिये ।

दश प्रकार के कल्प (आचार) पर वैद्य की कथा

ऊपर बतलाया हुआ यह दश प्रकार का कल्प यदि दोष के अभाव में किया हो तो तीसरे वैद्य की औषधि के समान गुणकारी होता है । किसी एक राजा ने अपने पुत्र को भविष्य में रोग न हो ऐसी चिकित्सा करने के लिए तीन वैद्य बुलवाये । उनमें से प्रथम वैद्य बोला कि मेरी औषधि यदि रोग हो तो उसका नाश करती है और रोग न हो तो दोष प्रकट करती है । राजा बोला-सोते हुए सर्प के जगाने के समान ऐसी औषधि से मुझे प्रयोजन नहीं । दूसरा वैद्य बोला कि मेरी औषधि यदि रोग हो तो उसे नष्ट करती है और रोग न हो तो न गुण न दोष करती है-राजा ने कहा यह भी राख में घी डालने के समान है, ऐसी औषधि की कोई जरूरत नहीं । तीसरे वैद्य ने कहा कि मेरी औषधि यदि शरीर में रोग होतो उसे नष्ट करती है और रोग न हो तो बल, वीर्य सौन्दर्य आदि की पुष्टि करती है। राजा ने कहा कि-यह औषधि सर्वश्रेष्ठ है । वैसे ही यह कल्प भी दोष हो तो उसका नाश करता है, दोष न हो तो धर्म का पोषण करता है । इसलिए प्राप्त हुए पर्युषणा पर्व में मंगल के निमित्त पांच दिन में नव वाचनाओं द्वारा कल्पसूत्र का वांचना श्रेयस्कर है ।

For Private and Personal Use Only

पर्युषण पर्व और कल्पसूत्र की महिमा तथा कल्पसूत्रश्रवण से अपूर्व लाभ

जैसे देवों में इंद्र, तारों में चंद्र, न्याय प्रवीण पुरूषों में राम, रूपवानों मे काम, रूपवती स्त्रियों में रंभा, बाजों में भंभा, हाथियों में ऐरावथ, साहसिकों में रावण, बुद्धिमानों में अभयकुमार, तीर्थों में शत्रुंजय, गुणों में विनय, धनुषधारियों में अर्जुन, मंत्रों में नवकार और वृक्षों में सहकार (आम्र) उत्तम हैं वैसे हीं सर्व शास्त्रों में यह कल्पसूत्र सिरमौर माना जाता है, कहा भी है कि जैसे मंत्रों में परमेष्ठि मंत्र की महिमा है, तीर्थों में शंत्रुंजय की महिमा, दानों में दयादान की महिमा, गुणों में निवयगुण की, व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत की, नियमों में संतोष, तप में शमता और तत्वों में सम्यग्दर्शन की महिमा है वैसे हीं श्री सर्वज्ञ प्रभु कथित सर्व पर्वो में श्री वार्षिक पर्व-पर्युषणा उत्कृष्ट है । जैसे कि अरिहंत से बढ़कर देव नहीं, मुक्ति से बढ़कर पद नहीं, शत्रुंजय से बढ़कर तीर्थ नहीं, वैसे ही कल्पसूत्र से बढ़कर अन्य कोई शास्त्र नहीं है । यह कल्पसूत्र साक्षात् कल्पवृक्ष है । यह पश्चानुपूर्वी से कथन किया होने के कारण श्री वीरचरित्र बीजरूप है, श्री पार्श्वनाथ चरित्र अंकुर है, श्री नेमिनाथ चरित्र स्कंध है, श्री ऋषभदेव चरित्र शाखासमूह है, स्थविरावलीरूप पुष्प हैं,समाचारी ज्ञानरूप परिमल-सुगन्ध है और मोक्षप्राप्ति यह इस कल्पसूत्ररूप कल्पवृक्ष का फल है । इसके वांचने से, वाचक का सहाय करने से और इसके सर्वाक्षर श्रवण करने से विधिपूर्वक आराधन किया हुआ यह कल्पसूत्र आठ भवों के अंदर मोक्षदायक होता है । जो मनुष्य जिनशासन की पूजा और प्रभावना में तत्पर होकर

एक चित्त से इस कल्पसूत्र को इक्कीस दफा सुनता है हे गौत ! वह इस संसार सागर से तर जाता है, इस प्रकार श्री कल्पसूत्र की महिमा सुनकर कष्ट और धन व्यय करने से साध्य तप, पूजा और प्रभावना आदि धर्मकृत्यों में आलस्य न करना चाहिये । क्योंकि उपरोक्त तपस्यादि सर्व सामग्री सहित ही कल्पसूत्र का सुनना वांछित फलदायक होता है । जैसे बोया हुआ बीज, वायु आदि सामग्री मिलने पर ही फल देने में समर्थ होता है वैसे ही यह कल्पसूत्र भी देव गुरु की पूजा प्रभावना और साधर्मिक की भक्ति आदि सर्व सामग्री के साथ सुनने से ही यथार्थ फल देनेवाला होता है । अन्यथा सर्व जिनवरों में श्रेष्ठ श्री वर्धमान स्वामी को किया हुआ एक भी नमस्कार पुरुष या स्त्री को इस संसार सागर से पार उतार देता है, ऐसा वचन सुनकर प्रयास से साध्य इस कल्पसूत्र के सुनने में भी आलस्य आ जायेगा ।

यह एक नियम है कि पुरुष के विश्वास से ही उसके वचन पर विश्वास जमता है इस लिए यहां पर कल्पसूत्र के कर्ता को बतलाते हैं । इसकी रचना करने वाले चौदह पूर्वधारी युगप्रधान श्री भद्रबाहुस्वामी हैं । उन्होंने प्रत्याख्यानप्रवाद नामक नवमे पूर्व में से उध्धृत कर के जो दशाश्रुतस्कंध शास्त्र बनाया उसका यह आठवां अध्ययन है । इसलिए महापुरुष प्रणीत होने से यह प्रमाणभूत है ।

पूर्वो का प्रमाण

पहला पूर्व एक हाथी प्रमाण स्याही के पुंज से लिखा जा सकता है, दूसरा पूर्व दो हाथी प्रमाण स्याही,

For Private and Personal Use Only

तीसरा पूर्व चार हाथी प्रमाण स्याही, चौथा पूर्व आठ हाथी प्रमाण स्याही, पांचवां पूर्व सोलह हाथी प्रमाण, छट्ठा पूर्व बत्तीस हाथी प्रमाण, सांतवां पूर्व चौसठ हाथी प्रमाण, आठवां पूर्व एक सौ अट्ठाईस हाथी प्रमाण, नवमा पूर्व दो सौ छप्पन हाथी प्रमाण, दशवां पूर्व बारह हाथी प्रमाण, ग्यारहवां एक हजार चौबीस हाथी प्रमाण, बारहवां दो हजार अड़तालींस हाथी प्रमाण स्याही पुंज से तथा सब मिला कर चौदह पूर्व सोलह हजार तीन सौ तिरासी हाथी प्रमाण स्याही पुंज से लिखे जा सकते हैं । अतः महापुरूष का रचा हुआ होने से मान्य है और इसमें गंभीर अर्थ भरा है ।

कहा है कि 'यदि सर्व नदियों की रेती एकत्रित करें और सब समुद्रों का पानी एकत्रित करें तथापि उससे अनन्तगुणा एक-एक सूत्र का अर्थ होता है । मुख में हजार जींभ हों और हृदय में केवल ज्ञान हो तो भी कल्पसूत्र की महिमा मनुष्यों से नहीं कही जा सकतीं । इस कल्पसूत्र को पढ़ने में और सुनने मे मुख्यतया तो साधु-साध्वीं ही अधिकारी हैं । उसमें भी काल से रात्रि के समय कालग्रहणादि विधि का करनेवाले साधु ही वांच सकते हैं और साध्वियों को निशीथचूर्णि में कथन किये विधि के अनुसार साधुओं के उपाश्रय दिन में आकर सुनने का अधिकार है । श्रीवीरप्रभु के निर्वाण बाद नवसौ अस्सी वर्ष बीतने पर और मतान्तर से नवसौ तिराणवें वर्ष जाने पर आनन्दपुर नगर में पुत्र की मृत्यु से दुःखित हुए ध्रुवसेन राजा के मन को धैर्य देने के

लिए यह कल्पसूत्र बड़े समारोह पूर्वक सभा के समक्ष वांचना प्रारंभ किया था, तब से चतुर्विध संघ भी इसे सुनने का अधिकारी हुआ है । परन्तु वांचने का अधिकारी तो योगोद्वहन किया हुआ साधु ही है ।

पर्वाधिराज में करने योग्य धर्मकार्य

इस वार्षिक पर्व में कल्पसूत्र सुनने के समान ही यह पांच कार्य भी अवश्य करने योग्य हैं–1. चैत्य परिपाटी हर एक जैन मन्दिर में दर्शनार्थ जाना, 2. समस्त साधुओं को वन्दन करना, 3. सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना, 4. परस्पर खमाना और 5. अट्ठम तप करना । ये पांच कार्य भी कल्पसूत्र के श्रवण समान इच्छित पदार्थ को देनेवाले हैं एवं अवश्य करने योग्य हैं । जिन प्रभु ने उक्त विधियों की आज्ञा की है । उनमें जो अट्ठम तप है वह तीन उपवास करने से होता है । यह तप महाफल का कारण, ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप तीन रत्नों को देनेवाला, तीन शल्य को उखेड़ फेंकनेवाला, तीन जन्म को पवित्र बनानेवाला, मन वचन, शारीरिक दोषों को शोषण करनेवाला और तीन जगत में श्रेष्ठ पद देनेवाला है । इसलिए मोक्षपद के अभिलाषी भवि प्राणियों को यह अट्ठमतप अवश्य करने योग्य है । इस पर नागकेतु का दृष्टान्त कहते हैं ।

अट्ठम तप पर नागकेतु की कथा

चन्द्रकांता नगरी में विजयसेन नामक राजा रहता था, उसी नगरी में श्रीकान्त नामक एक व्यापार रहता था । उसके श्री सखीनामा स्त्री थी । उसको बहुत सी मानतायें माने पर एक पुत्र पैदा हुआ, वह

For Private and Personal Use Only

पर्युषण पर्व और कल्पसूत्र की महिमा तथा कल्पसूत्रश्रवण से अपूर्व लाभ

जैसे देवों में इंद्र, तारों में चंद्र, न्याय प्रवींण पुरूषों में राम, रूपवानों मे काम, रूपवती स्त्रियों में रंभा, बाजों में भंभा, हाथियों में ऐरावथ, साहसिकों में रावण, बुद्धिमानों में अभयकुमार, तीर्थो में शत्रुंजय, गुणों में विनय, धनुषधारियों में अर्जुन, मंत्रों में नवकार और वृक्षों में सहकार (आम्र) उत्तम हैं वैसे ही सर्व शास्त्रों में यह कल्पसूत्र सिरमौर माना जाता है, कहा भी है कि जैसे मंत्रों में परमेष्ठि मंत्र की महिमा है, तीर्थो में शत्रुंजय की महिमा, दानों में दयादान की महिमा, गुणों में निवयगुण की, व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत की, नियमों में संतोष, तप में शमता और तत्वों में सम्यग्दर्शन की महिमा है वैसे ही श्री सर्वज्ञ प्रभु कथित सर्व पर्वो में श्री वार्षिक पर्व–पर्युषणा उत्कृष्ट है । जैसे कि अरिहंत से बढ़कर देव नहीं, मुक्ति से बढ़कर पद नहीं, शत्रुंजय से बढ़कर तीर्थ नहीं, वैसे ही कल्पसूत्र से बढ़कर अन्य कोई शास्त्र नहीं है । यह कल्पसूत्र साक्षात् कल्पवृक्ष है । यह पश्चानुपूर्वी से कथन किया होने के कारण श्री वीरचरित्र बीजरूप है, श्री पार्श्वनाथ चरित्र अंकुर है, श्री नेमिनाथ चरित्र स्कंध है, श्री ऋषभदेव चरित्र शाखासमूह है, स्थविरावलीरूप पुष्प हैं,समाचारी ज्ञानरूप परिमल–सुगन्ध है और मोक्षप्राप्ति यह इस कल्पसूत्ररूप कल्पवृक्ष का फल है । इसके वांचने से, वाचक का`सहाय करने से और इसके सर्वाक्षर श्रवण करने से विधिपूर्वक आराधन किया हुआ यह कल्पसूत्र आठ भवों के अंदर मोक्षदायक होता है । जो मनुष्य जिनशासन की पूजा और प्रभावना में तत्पर होकर

एक चित्त से इस कल्पसूत्र को इक्कीस दफा सुनता है हे गौत ! वह इस संसार सागर से तर जाता है, इस प्रकार श्री कल्पसूत्र की महिमा सुनकर कष्ट और धन व्यय करने से साध्य तप, पूजा और प्रभावना आदि धर्मकृत्यों में आलस्य न करना चाहिये । क्योंकि उपरोक्त तपस्यादि सर्व सामग्री सहित ही कल्पसूत्र का सुनना वांछित फलदायक होता है । जैसे बोया हुआ बीज, वायु आदि सामग्री मिलने पर ही फल देने में समर्थ होता है वैसे ही यह कल्पसूत्र भी देव गुरू की पूजा प्रभावना और साधर्मिक की भक्ति आदि सर्व सामग्री के साथ सुनने से ही यथार्थ फल देनेवाला होता है । अन्यथा सर्व जिनवरों में श्रेष्ठ श्री वर्धमान स्वामी को किया हुआ एक भी नमस्कार पुरूष या स्त्री को इस संसार सागर से पार उतार देता है, ऐसा वचन सुनकर प्रयास से साध्य इस कल्पसूत्र के सुनने में भी आलस्य आ जायेगा ।

यह एक नियम है कि पुरूष के विश्वास से ही उसके वचन पर विश्वास जमता है इस लिए यहां पर कल्पसूत्र के कर्ता को बतलाते हैं । इसकी रचना करने वाले चौदह पूर्वधारी युगप्रधान श्री भद्रबाहुस्वामी हैं । उन्होंने प्रत्याख्यानप्रवाद नामक नवमे पूर्व में से उध्धृत कर के जो दशाश्रुतस्कंध शास्त्र बनाया उसका यह आठवां अध्ययन है । इसलिए महापुरूष प्रणीत होने से यह प्रमाणभूत है ।

पूर्वो का प्रमाण

पहला पूर्व एक हाथी प्रमाण स्याही के पुंज से लिखा जा सकता है, दूसरा पूर्व दो हाथी प्रमाण स्याही,

For Private and Personal Use Only

पुत्र अभी बालक ही था इतने में पर्युषण पर्व आया । उस वक्त उसके कुटुंब में अट्ठम तप की बात चल रही थीं । वह सुनकर जातिस्मरण होने से स्तनपान त्याग कर उस बालक ने भी अट्ठम तप किया । स्तनपान न करता देख और अट्ठम तप करने के कारण मालती के वासी पुष्प कुमलाया देखकर माता–पिता ने अनेक उपाय किये, परन्तु सचेत न होकर वह बालक मुर्च्छित हो गया । उसे मरा समझ कर उसके पिता भी उसके दुःख से मृत्यु को प्राप्त हो गये । उस वक्त विजयसेन राजा ने उस पुत्र और उसके बाप को मरा जानकर उसका धन ग्रहण करने के लिए सुभटों को भेजा । इधर उस बालक के अट्ठम तप के प्रभाव से धरणेद्र का आसन कंपित हुआ । अवधिज्ञान से सर्व वृत्तान्त जानकर तत्काल ही भूमि पर पडे हुए उस बालक को अमृत के सिंचन से सावधान कर ब्राह्मण का रूप धारण कर उसका ध न ग्रहण करते हुए उसने राजा के सुभटों को रोका । यह सुनकर राजा भी वहां आकर कहने लगा कि हे ब्राह्मण ! जिसका वारस न रहे उस धन को हम ग्रहण करते हैं यह हमारा परंपरागत नियम है, अतः तुम क्यों रोकते हो ? धरणेंद्र बोला–राजन् ! इस धन का वारस जिन्दा है । यह सुन राजादि कहने लगे कि कैसे जीवित है ? बतलाइये कहां हैं ? फिर धरणेंद्रने भूमि से साक्षात् निधि के समान बालक को जीवित दिखलाया । इससे सबके सब आश्चर्य में पड़कर पूछने लगे महाराज ! आप कौन हैं ? और यह क्या घटना बनीं ? धरणेंद्र नामक नागराज हूं । इस बालक ने अट्ठम तप किया था इसी कारण मैं इसको सहाय करने आया हूं ।लोग बोले स्वामिन् ! पैदा होते ही

ऐसे छोटे बालक ने अट्ठमतप किस तरह किया ? धरणेंद्र बोला–राजन् ! पूर्वभव में यह बालक एक बनिये का पुत्र था बालकपन में हीं इसकी माता की मृत्यु हो गई थीं, इससे इसकीं सौतेली माता इसे अत्यन्त सताया करतीं थीं । इसने दुःखित हो अपनी सौतेली माता का दुःख अपने मित्र के सामने कहा । मित्र बोला कि भाई ! तुमने पूर्वभव में कुछ तप नहीं किया इसी कारण तुम्हारा पराभव होता है । उस दिन से वह कुछ तप करने लगा । अब के मैं आगामी पर्युषणा में अट्ठम तप करूंगा ऐसा निश्चय करके वह एक दिन घास कीं कुटिया में सो गया । अवसर देख कर उसकी सौतेली माता ने उस कुटिया में एक अग्नि की चिनगारी डाल दी, जरासीं देर में कुटिया जल कर राख हो गई; वह भी मरा और उस अट्ठम तप के ध्यान से वह इस श्रीकांत शेठ का पुत्र हुआ है । इस कारण इसने पूर्वभव में चिन्तन किया अट्ठम तप अभी बाल्यावस्था में पूर्ण किया है । यह महापुरूष लघुकर्मी होने से इसीं भव में मोक्ष प्राप्त करेगा इसे यत्नपूर्वक पालने करने योग्य है । इससे तुम्हें भी बड़ा लाभ होगा । यों कह कर धरणेन्द्र उसके गले में हार डाल कर स्वस्थान पर चला गया ।

फिर उसके स्वजनों ने श्रीकांत सेठ का मृतकार्य किया और उसके पुत्र का नाम 'नागकेतु' रक्खा । अनुक्रम से वह बाल्यावस्था से हीं जितेंद्रिय परम श्रावक बना । एक दिन विजयसेन राजा ने किसीं एक मनुष्य को चोर न होने पर भीं चोरी के कलंक से मार डाला था । वह मरकर व्यन्तर देव हुआ और पूर्व वैर से उसने सारे नगर को नष्ट कर डालने के लिए आकाश में एक बड़ी विशाल शिला रचीं । राजा को लात मार

For Private and Personal Use Only

कर रूधिर का चमन कराकर सिंहासन से नीचे गिरा दिया । यह देख नागकेतुने विचारा कि मैं जीते हुए संघ का और इन गगनस्पर्शी जिनमंदिरों का विनाश कैसे देख सकता हूं ? यों विचार कर के उसने एक हाथ ऊँचा कर लिया । इससे उसके तपतेज की शक्ति को सहन न करने के कारण शिला को संहरित कर वह व्यन्तर उसके चरणों में नमा, और उसके वचन से उसने राजा को भी निरूपद्रय किया । एक दिन नागकेतु जिनेन्द्र पूजा कर रहा था उस वक्त पुष्प में रहे हुए एक तंदुलिक सर्प ने उसको डंक मारा, तथापि वह व्याकुल न होकर भावना में आरूढ हो गया । शुद्ध भावना में तल्लीन होने से उसने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । फिर शासन देवता ने उसे मुनिवेश अर्पण किया । इस प्रकार नागकेतु की कथा सुनकर दूसरों को भी अट्टम तप करने में उद्यम करना चाहिये ।

इस कल्पसूत्र में मुख्यतया तीन बातें वांचने की हैं, उसके विषय में पुरिमचरिमाण कप्पो. यह गाथा है । इसकी व्याख्या यह है कि श्रीऋषभदेव और श्री वीरप्रभु के शासन में मंगलरूप है । यदि कोई शंका करे कि श्री वीरप्रभु के शासन में क्यों कहा ? इसके लिए कहते हैं कि इसमें श्री जिनेश्वरों के चरित्र कथन किये हैं एवं

---

(1) ''पुरिमचरिमाण कप्पो, मंगलं बद्धमाणतित्थंमि । इह परिकहिआ जिणगम –हराइथेरावली चरितं ''

गणधरादि स्थविरावली के चरित्र भी कथन किये हैं । तथा सामाचारी भी कही है । उसमें भी प्रथम अधिकार में सर्व जिनचरित्रों में निकट उपकारी होने के कारण पहले श्रीवीरप्रभु का चरित्र वर्णन करते हुए श्री भद्रबाहुस्वामी जघन्य तथा मध्यम वांचनारूप प्रथम सूत्र रचने हैं ।

श्री महावीर प्रभु के पांच कल्याणक

उस समय और उस काल में श्रमण भगवान श्री महावीर प्रभु, श्रमण अर्थात् तपस्या करने में तत्पर और भगवान अर्थात् सूर्य और योनि अर्थ सिवाय शेष बारह अर्थवाले । भग शब्द के निम्न लिखे चौदह अर्थ होते हैं – ''सूर्य, ज्ञान, महात्म्य, यश, वैराग्य, मुक्ति, रूप, वीर्य, प्रयत्न, इच्छा, लक्ष्मी, धर्म, ऐश्वर्य और योनि ।'' इनमें से प्रथम सूर्य और अन्तिम योनि अर्थ वर्ज कर बाकी के तमाम अर्थवाले । महावीर, अर्थात् कामरूप बैरी को पराजित करने में समर्थ–ऐसे श्री श्रमण भगवान् महावीर प्रभु के पांच स्थानों में हस्तोत्तरा नक्षत्र अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र आया है । सो इस प्रकार है–मध्यम वाचना से दर्शाते हैं कि उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में प्रभु प्राणत नामक दशवे देवलोक से च्यव कर माता के गर्भ के आये, उत्तराफाल्गुनी में ही दीक्षित हुए और उत्तराफाल्गुनी में हीं प्रभु ने अनन्त वस्तु विषयक अनुपम केवलज्ञानदर्शन प्राप्त किया है । और स्वाति नक्षत्र में प्रभु निर्वाण हुए । अब विस्तारवाली वाचना से श्री वीरप्रभु का चरित्र कहते हैं ।

श्री महावीर प्रभु का जीवन चरित्र

ग्रीष्मऋतु का चौथा मास था, आठवां पक्ष था, अर्थात् आषाढ़ मास का शुक्लपक्ष । उस आषाढ़ मास की शुक्ला छठ के दिन अर्धरात्रि के समय बीस सागरोपम की लंबी स्थितिवाले, महान् विजयवाले पुष्पोत्तर नामक पुंडरीक अर्थात् श्वेत कमल के समान श्रेष्ठ महाविमान से देव संबन्धी आयु, भव, गतिनाम कर्म, स्थिति को पूर्ण कर के अन्तर रहित च्यव् कर इसी जंबूद्वीप में, जिसमें रूप, रस, गंधादि समस्त पदार्थो की हानि होती है ऐसे अवसर्पिणी काल में, सुषमसुष्मा नामक चार कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण वाला पहला आरा बीत जाने पर, सुषमा नामक तीन सागरोपम प्रमाणबाला दूसरा आरा बीत जाने पर, और सुषमादुःपमा नामक दो कोटाकोटी सागरोपम प्रमाणवाला तीसरा आरा बीत जाने पर और दुःषमसुषमा नामक चौथा आरा बहुतसा व्यतीत हो जाने पर अर्थात् कुछ शेष रहेन पर, तात्पर्य कि बैतालिस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण चौथे आरे की स्थिति है, उसमें चौथे आरे के 75 वर्ष और साढे आठ महिने शेष रहने पर श्री वीरप्रभु का अवतार हुआ है । बहत्तर वर्ष की श्री वीरप्रभु की आयु थी अतः श्री वीरप्रभु के निर्वाण बाद तीन वर्ष और साढ़े आठ महिने व्यतीत होने पर चौथे आरे की समाप्ति होती है । इस से प्रथम जो बेयालिस 42000 हजार वर्ष कहे हैं वे इक्कीस हजार वर्ष प्रमाणवाले पांचवे और छठवें आरे सम्बन्धी समझना चाहिये।

प्रभु का देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षी में आना और चौदह स्वप्नों का देखना ।

काश्यप गौत्रीय इक्कीस तीर्थंकर इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए तथा गौतम गौत्रीय बीसवें श्री मुनिसुव्रत और बावीसवें श्री नेमिनाथ ये दो तीर्थंकर हरिवंश कुल में उत्पन्न हुए । इस प्रकार तेईस तीर्थंकरों के हो जाने के पश्चात् श्रमण भगवान् श्री महावीर प्रभु हुए हैं । पूर्व के तीर्थंकरों द्वारा कथन किये हुए अन्तिम तीर्थंकर श्री वीरप्रभु ने ब्राह्मणकुंड नामा ग्राम में कोड़ाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की देवानन्दा नाम की जालंधर गोत्रीया स्त्री की कुक्षि में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र को चंद्र योग प्राप्त होने पर गर्भरूप से अवतरे । जिस समय भगवंत गर्भ में अवतरे उस वक्त वे तीन ज्ञानयुक्त थे । स्वर्ग से अपने चवने का समय जानते थे, परन्तु च्यवमान अर्थात् च्यवनकाल को नहीं जानते थे, क्यों कि वह एक समय मात्र सूक्ष्म काल होता है । ''आंख मीच कर खोलने में असंख्य समय काल बीत जाता हैं '' उनमें से वह एक समय काल समझना चाहिए । मैं च्यव कर यहां आ गया हूं यह प्रभु जानते हैं ।

जिस रात्रि को श्रमण भगवान् महावीर प्रभु जालंधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भतया उत्पन्न हुए उस रात्रि में वह देवानन्दा ब्राह्मणी अपनी शय्या में अति निद्रा और अति जागरण अवस्था में नहीं थी अर्थात् वह अल्प निद्रावाली अवस्था में (जिन का आगे चल कर वर्णन करेंगे) ऐसे श्रेष्ठ कल्याणकारी, उपद्रव को हरने वाले, धन धान्य को करनेवाले, मंगलमय शोभायुक्त चौदह स्वप्नों को देखकर जाग उठी । उन स्वप्नों का 'गय वसह' इत्यादि गाथा से आगे विस्तार पूर्वक वर्णन किया जायगा । यहां पर इतना

विशेष समझ लेना चाहिये कि जिस तीर्थंकर का जीव स्वर्ग से आता है उसकी माता उसके गर्भ में आने पर विमान देखती है और जो जीव नरक में से निकल कर तीर्थंकर होता है उसकी माता उसके गर्भ में आने पर स्वप्न में भवन यानि सुन्दर मकान देखती हैं ।

चौदह स्वप्न देख कर देवानन्दा को बड़ा संतोष हुआ । वह चित्त में आनन्द को धारण करती हुई हृदय में प्रीतिवाली, मन में तुष्टिवाली, हर्ष से विस्तृत हृदय वाली, मेघ की जलधारा से सींचिंत कदंब पुष्प के समान विकसित रोमराय वाली होकर उन प्रशिष्त स्वप्नों का अच्छीं तरह स्मरण करने लगा स्वप्नों को अच्छीं तरह स्मरण करने लगी । स्मरण कर अपनी शय्या में से उठ कर मानसिक उत्कंठा सहित और चापल्य रहित गति से, स्खलना अर्थात् विलम्ब को छोड़ कर और राजहंस के समान गति से जहां पर ऋषभदत ब्राह्मण सो रहा था वहां आकर ऋषभदत्त ब्राह्मण को जय विजय कर मीठी वाणी से जगाती है और स्वयं एक भद्रासन पर बैठ जाती है । फिर वह देवानन्दा ब्राह्मणी स्वस्थ होकर मस्तक पर अंजलि कर अर्थात् हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक कहने लगी कि 'हे देवानुप्रिय–देवताओं के प्यारे ! आज जब मैं अल्प निद्रा में थी तब गज, वृषभ आदि उत्तम चौदह स्वप्नों को देखकर जाग उठी । इन कल्याणकारी स्वप्नों का मुझे क्या वृत्तिविशेष फल होगा ? (यहां पर फल से पुत्रादिं और वृत्ति से जीवनोपाय समझना) देवानन्दा के मुख से उक्त वचन को सुन कर मन में अवधारण करता हुआ ऋषभदत्त ब्राह्मण हर्षित हो कर मेघ की जलधारा से सिंचित हुए कदंब पुष्प के समान विकसित रोमराजीवाला हो कर

उन स्वप्नों के अर्थ का विचार करता है । विचार कर अपने स्वभाविक मतिज्ञान बुद्धि विज्ञान से अर्थ निश्चय करता है।

फिर वह स्वप्नों के अर्थ का निश्चय कर के देवानन्दा ब्राह्मणी से बोला कि हे देवानुप्रिये ! तुमने उदार, कल्याणकारी, धनदायक, मांगल्यरूप और शोभायुक्त स्वप्न देखे हैं । वे आरोग्य, दीर्घायु, संतोष, कल्याण उपद्रव का न होना और मनोवांछित फलप्राप्ति कराने वाले हैं । हे देवानुप्रिये ! इस से तुम्हें अर्थ का लाभ, भोग का लाभ, पुत्र का लाभ और यावत् सुख का लाभ प्राप्त होगा । तुम्हें नव मास और साढ़े सात दिन बीतने पर एक उत्तम पुत्र का जन्म देओगे ।

लक्षण, व्यंजन और हस्तरेखा आदि का स्वरूप वर्णन ।

वह पुत्र कोमल हाथ पैरों वाला, पंचेद्रिय परिपूर्ण सुन्दर शरीरवाला और व्यंजन लक्षणादि शारीरिक प्रशस्त लक्षणों से युक्त होगा । छत्र चामरादि शारीरिक प्रशस्त लक्षण चक्रचर्ती और तीर्थंकरों के एक हजार और आठ लक्षण होते हैं । बलदेव और वासुदेव के एक सौ आठ लक्षण होते हैं और दूसरे भाग्यवान् मनुष्यों के बत्तीस लक्षण होते हैं । वे बत्तीस लक्षण निम्न प्रकार के होते हैं –

छत्र, कमल, रथ, वज्र, कछुवा, अंकुश, वापिका, धनुष्य, स्वस्तिक, चंदरवाल, सरोवर, केशरीसिंह, रूद्र, शंख, चक्र, हस्ती, समुद्र, कलश, महल–मकान, मत्स्य, यव, यज्ञस्तंभ, स्तूप, कमंडल, पर्वत, चामर,

For Private and Personal Use Only

दर्पण, बेल, पताका, लक्ष्मी का अभिषेक, उत्तम माला और मयूर–मोर–ये बत्तीस चिह्न जिस पुण्यवान के शरीर में होते हैं वह बत्तीस लक्षणा पुरूष कहलाता है । इन लक्षणवाले मनुष्य के सात लक्षण लाल हों तो श्रेष्ठ होते है,–नाखून, हाथ, पैर, जीभ, होठ, तालुवा, और नेत्रों के कोण, ये लाल अच्छे होते हैं । कक्षा, हृदय, गर्दन, नासिका, नाखून और मुख–उन्नत अच्छे होते हैं । दांत, चमडी, केश, अंगुलियों के पर्व और नाखून ये पांच सूक्ष्म अर्थात् बारीक अच्छे होते हैं । नेत्र, हृदय, नासिका, हनु–ठोडी और भुजा, ये पांच लंबे श्रेष्ठ होते हैं । ललाट, छाती और मुख ये तीन विशाल अच्छे होते हैं । गरदन, जंघा और पुरूषचिह्न ये तीन लघु अच्छे होते हैं । सत्व, खर और नाभि ये तीन गंभीर अच्छे होते हैं । ये भी बत्तीस लक्षण कहलाते हैं । शरीर का अर्ध भाग मुख है या शरीर का सर्वस्व मुख गिना जाता है, उससे भी नासिका श्रेष्ठ है नासिका से नेत्र श्रेष्ठ हैं । जैसे नेत्र होते हैं वैसा ही उस मनुष्य का शील होता है । जैसी नासिका होती है वैसी ही उसके हृदय की सरलता होती है । जैसी रूपाकृति होती है वैसा ही उसके पास द्रव्य समझना और जैसा शील होता है वैसे ही गुण समझना । जो मनुष्य अति ठिंगना होता है, अति लंबा होता है, अति मोटा होता है, अति कृश, अति पतला होता है अति काला होता है और बहुत गोरा होता है, इन छः प्रकार के मनुष्यों में सत्व होता है । सद्धर्मी, रूपवान, निरोगी श्रेष्ठ स्वप्न देखनेवाला, श्रेष्ठ नीतिवान् और कविता रचनेवाला मनुष्य स्वर्ग से आया है और स्वर्ग में ही जायगा– यह सूचित करता है । दंभरहित, दयालु, दानी, इंद्रियों को दमन करनेवाला,

दक्ष और सदैव सरलता से वर्तने वाला मनुष्य मानव योनि में से आया है और फिर भी वह मनुष्य योनि में ही जायगा–यह समझना योग्य है । कपट, लोभ, अति भूख, आलस्य बहुत आहार करना–इत्यादि चेष्टाओं से मनुष्य सूचित करता है कि वह पशु योनि से आया है और पशु योनि में ही जायगा । जो मनुष्य अति कामी, स्वजनों का द्वेषी, सदैव दुर्वचन बोलने वाला और मूर्खजनों की संगत करनेवाला होता है वह अपने नरक के आगमन को और नरक में ही जाने को सूचित करता है । पुरूषों के शरीर में यदि दक्षिण भाग में आवर्त हो तो वह श्रेष्ठ फलदायक होता है, बांये हो तो निन्दनीय समझना चाहिए और यदि अन्य किसी भाग में हो तो वह मध्यम फल देता हैं । जिस मनुष्य के हाथ में बिलकुल कम रेखा हों या एकदम अधिक रेखायें हों तो वह निःसंदेह दुःखी होता है । जिस पुरूष की अनामिका अर्थात् अन्तिम अंगुली से पहली अंगुली की अन्तिम रेखा से कनिष्ठा अंगुली यदि कुछ अधिक हो तो उस पुरूष को धन की वृद्धि होती है और मौसाल पक्ष अधिक होता है । मणिबन्ध से जो रेखा चलती है वह पिता की रेखा कहलाती है और करभ से कनिष्ठा अंगुली के मूल की ओर से जो दो रेखाएं चलती हैं वे वैभव और आयु की होती हैं । वे तीनों ही रेखायें तर्जनी अंगुली और अंगूठे के बीच जा मिलती हैं । जिसके ये तीनों रेखायें सम्पूर्ण और दोषवर्जित हों वह मनुष्य गोत्र, कुल, धन धान्य और आयुष्य का सम्पूर्ण सुख भोगता है । आयु की रेखा जितनी अंगुलीओं को उल्लघंन कर आगे चली जाय, उतने ही पच्चीस–पच्चीस वर्ष की आयु अधिक समझना चाहिये । यदि दाहिने हाथ के अंगूठे में यव का चिन्ह हो तो विद्या, वैभव और ख्याति

For Private and Personal Use Only

प्राप्त होती है । एवं उस मनुष्य का जन्म शुक्लपक्ष में हुआ समझना । जिस पुरूष की आंखों में लाली होती है उसे स्त्री बहुत चाहती है । जिसकी आंखें सुवर्ण के समान पीली होतीं हैं उसके पास द्रव्य रहता है । जिसके हाथ लंबे होते हैं उसे ऐश्वर्य नहीं छोड़ता । जिसका शरीर मोटा ताजा होता हैं उसे सुख नहीं छोड़ता । यदि नेत्रों में विकास हो तो वह सौभाग्यशाली होता है । यदि दांतों में चिकास हो तो उसे श्रेष्ठ भोजन मिलता है । यदि शरीर चिकना हो तो सुख मिलता है । यदि पैर चिकने हो तो वाहन मिलता है । जिस की छाती विशाल होती है वह धन धान्य का भोगी होता है । जिस का मस्तक विशाल हो वह राजादि महान् पुरूष बने । जिस का कटिभाग विशाल हो वह बहुत स्त्रीपुत्रों वाला होता है और जिसका पैर विशाल हो वह भी सुखी होता है । इस प्रकार लक्षणों को जानना चाहिए ।

शरीर पर जो मस्से-तिल आदि होते है उन्हें व्यंजन कहते हैं । उपरोक्त लक्षण और व्यंजनों से युक्त, वह कुमार होगा । तथा वह मान और उन्मान के प्रमाण से युक्त होगा । एक जल से भरे कुंड में पुरूष को प्रवेश कराया जाय उस वक्त जो पानी बाहर निकल जाय वह पानी द्रोण प्रमाण हो तब वह पुरूष मान प्राप्त कहा जाता है । यदि तराजू पर अर्ध भार मानवाला हो तो वह उन्मान प्राप्त होता है । भारका प्रमाण नीचे की विधि से समझना चाहिए-6 सरसव के दानों का एक यव (जौं), तीन यव की एक रत्ती (चनोटी), तीन रत्ती का एक वाल, सोलह वाल का एक गद्याणा दश गद्याणों का एक पल और डेढ़ सौ गद्याणों का एक मण होता

है और दश मण की एक घटिका होती है ऐसा विद्वानों का मत है । अपने अंगुल से एक सौ आठ अंगुल की ऊँचाईवाला उत्तम पुरूष होता है । मध्यम और जघन्य पुरूष छाणवें तथा चौरासी अंगुल ऊँचा होता है । यहां उत्तम पुरूष भी अन्य ही समझना क्यों कि तीर्थंकर भगवंत तो बारह अंगुल की शिखा की ऊँचाई होने से एक सौ बीस अंगुल ऊँचे होते हैं । पूर्वोक्त प्रकार से मान, उन्मान प्रमाण से परिपूर्ण मस्तकादि सर्वांग सुन्दर शरीरवाले और चन्द्रमा के समान रमणीय, मनोहर, प्रियदर्शन एवं मनोज्ञ रूपवान् बालक को हे देवानु प्रिये ! तुम जन्म दोगी ।

जब वह बालक बाल्यवस्था को त्याग कर आठ वर्ष का होगा तब उसमें सर्व प्रकार का विज्ञान परिणत होगा । क्रम से जब वह युवावस्था को प्राप्त होगा तब वह ऋग्वेदादि का परिज्ञाता होगा । अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अर्थवेद, पुराण, निघंटु तथा वेदों के अंग उपांग सहित उन्हें जाननेवाला होगा । उसमें शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, ज्योतिष और निरूक्त ये 6 अंग कहलाते हैं तथा अंगों के अर्थ को विस्तार से कथन करने वाले ग्रंथ उपांग कहलाते हैं । इन अंग उपांग सहित वेदों को विस्मरण करने वालों को स्मरण करानेवाला, अशुद्ध पढ़ने वालों को रोकनेवाला, स्वयं वेदों को धारण करने वाला वह बालक होगा । हे देवानुप्रिये ! वह बालक छः ही अंगो का विस्तार करनेवाला, कपिल प्रणीत शास्त्र में एवं गणितशास्त्र में निपुण होगा । गणित विद्या में वह ऐसा निपुण होगा जैसे कि ''एक स्तंभ है जो आधा पानी में है, उसका बारहवां भाग कीचड में है, छठवां भाग

For Private and Personal Use Only

रेती में दबा हुआ है और सिर्फ डेढ़ हाथ बाहर दीखता है । विचार कर कहो कि उस स्तंभ की कितनी लंबाई होनी चाहिये ? वह गणित के हिसाब से 6 हाथ लंबा स्तंभ था । गणित के ऐसे हिसाबों को शीघ्र बतानेवाला होगा । शिक्षा कल्प याने आचार विधान के ग्रंथ, व्याकरण अर्थात् शब्दसिद्धि शास्त्र के वीस व्याकरण इस प्रकार हैं– ऐन्द्रेव्याकरण, जैनेंद्रंव्याकरण, सिद्धहेमचंद्र व्याकरण, चांद्र व्याकरण, पाणिनीय व्याकरण, सारस्वत, शाकटयन, वामन, विश्रान्त, बुद्धिसागर, सरस्वतींकंठाभरण, विद्याधर, कलापक, भींमसेन, शैव, गौड, नन्दी, ज्योत्पल, मुष्टि और जयदेव व्याकरण । इन बीस व्याकरणों में, छंदशास्त्र में, निरूक्त में, ज्योतिषशास्त्र में तथा अन्य भी ब्राह्मणों को हितकारी एवं परिव्राजक माने संन्यास संबन्धी आचार शास्त्रों में वह बहुत ही निपुण होगा इसलिए हे देवानुप्रिये ! तुमने श्रेष्ठ स्वप्न देखे हैं ।

पूर्वोक्त कह कर ऋषभदत्त ब्राह्मण उन स्वप्नों की बारंबार अनुमोदना करता है । फिर देवानन्दा ब्राह्मणी मस्तक पर अंजलि कर के कहती है कि – हे देवानुप्रिय ! जैसा आप कहते हैं वैसा ही है । यह बिलकुल यथार्थ और निःसंदेह है जो अर्थ आपने कहा है । मैं भी इसी अर्थ को चाहती हूं , बारम्बार चाहती हूं । यों कह कर देवानन्दा उन स्वप्नों को अच्छी तरह स्मरण करती है । फिर ऋषभदत्त ब्राह्मण के साथ मानवीय सुख भोगती हुई अपना सानन्द समय बिताती है ।

कार्तिक सेठ की कथा ।

उस समय शक्र नामक सिंहासन का अधिष्ठायक, देवताओं का स्वामी, कान्ति आदि गुणों से युक्त हाथ में वज्र धारण करनेवाला, पुरंदर अर्थात् दैत्यों के नगरों को विदारण करनेवाला, शतक्रतु-कार्तिक सेठ के भव में श्रावक की पांचवी प्रतिमा (अभिग्रह विशेष तप) सौ दफा धारण करने से इंद्र का शतक्रतु नाम पड़ा है । कार्तिक सेठ का वृत्तान्त इस प्रकार है- पृथ्वीभूषण नगर में प्रजापाल नामक राजा था और कार्तिक नामक सेठ था । उस सेठने श्रावक की सौ प्रतिमा धारण की थीं इस से वह शतक्रतु नाम से विख्यात हो गया था । एक दिन महिने महिने पारना करने वाला वहां पर एक गैरिक नामक संन्यासी आ गया । कार्तिक सेठ को वर्ज कर सब नगर निवासी उस के भक्त बन गये । यह जान कर गैरिक को कार्तिक पर रोष आया । एक दिन गैरिक को राजाने भोजन के लिए निमंत्रण दिया । गैरिक बोला-यदि कार्तिक सेठ भोजन परोसे तो मैं आप के वहां भोजन करूंगा । राजा बोला-ऐसा ही होगा। राजा ने बुलाकर कहा कि - तुम हमारे घर पर गैरिक को भोजन करा देना । कार्तिक बोला-राजन् ! आप की आज्ञा से कराऊंगा । भोजन के समय कार्तिक ने गैरिक तापस को भोजन परोसा । उस वक्त उसे लज्जित करने के लिए गैरिक ने अपनी नाक पर अंगुली रख कर घिसी । उस समय कार्तिक ने विचारा कि यदि मैंने प्रथम से दीक्षा ले ली होती तो मेरा यह अपमान क्यों होता ? इस प्रकार वैराग्य प्राप्त कर कार्तिक सेठ ने एक हजार और आठ वणिक पुत्रों के साथ श्री मुनिसुव्रतस्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की । तदनन्तर द्वादशांगी पढ़ कर बारह वर्ष तक चारित्र की आराधना

For Private and Personal Use Only

कर वह सौधर्म इंद्र बन गया । इधर गैरिक भी अपने धर्म में तत्पर रह कर मर के उसी देवलोक में इंद्र का ऐरावण नामक हाथी–वाहन हुआ । वह ऐरावण कार्तिक सेठ को इंद्र के रूप में देख कर भागने लगा । शकेंद्र उसे पकड़ कर उसके मस्तक पर बैठ गया । ऐरावण ने इंद्र को डराने के लिए दो रूप कर लिये । इंद्र ने भी दो रूप कर लिये । फिर उसने चार किये, इन्द्र ने भी चार रूप किये । फिर इंद्र ने अवधिज्ञान से उस का स्वरूप विचार कर उसका तिरस्कार किया तब वह अपने स्वाभाविक रूप में आ गया । इस प्रकार से कार्तिक सेठ की कथा है ।

इंद्र द्वारा किया हुआ शक्रस्तव ।

सहस्त्राक्ष इंद्र के जो पांच सौ देव मंत्री हैं उन के नेत्र इंद्र का कार्य करने के कारण वे नेत्र भी इंद्र के ही कहे जाते हैं, इसी कारण से इंद्र को हजार आंखोंवाला कहते हैं । मघवा–महामेघों को वश में रखनेवाला, पाकशासन–पाक नामक दैत्य को शिक्षा करने वाला, दक्षिणार्द्ध लोकपति–मेरू से दक्षिण ओर के लोकार्थ का अधिपति, ऐरावण वाहनवाला, बत्तीस लाख विमानों का स्वामी, रज रहित और स्वच्छता से आकाश के समान निर्मल वस्त्रों को धारण करनेवाला, माला और मुकुटादि आभूषणधारी, गालों पर सुवर्ण के मनोहर और लटकते हुए सुन्दर कुंडल से शोभायमान, छत्र चामरादि राजचिन्हों से बिराजित, पैरों तक लटकती हुई पंचवर्णीय पुष्पमाला से विभूषित शकेंद्र सुधर्म नामा सभा में शक्र नाम सिंहासन पर बैठ कर बत्तीस लाख

विमानों एवं चौरासी हजार सामानिक देवों-जिन की ऋद्धि इंद्र के समान है-का अधिपति, कर्म पालन करने वाले, जो पूज्य स्थानीय अथवा मंत्री तुल्य देव हैं तथा सोम, यम, वरूण और कुबेर जो चार लोकपाल हैं, एवं पद्मा, शिवा, शची, अंजू, अमला, अप्सरा, नमिका और रोहिणी नामवाली अपनी अग्रमहीषी-रानियां जिनका प्रत्येक का सोलह-सोलह हजार परिवार है उन सब के अधिपतिपन को पालन करता हुआ, तथा बाह्य, मध्यम और अभ्यन्तर पर्षदा के आधिपत्य, तथा सात सैन्य का आधिपत्य, चारों दिशाओं में चौरासी हजार आत्मरक्षक देवों के आधिपत्य कर्म को करता हुआ और अनेक प्रकार के दिव्य नाटकों को देखता हुआ इंद्र अपनी सभा में विराजमान है । उस समय वह अपने विशाल अवधिज्ञान से सम्पूर्ण जंबूद्वीप को देख रहा था । भगवंत महावीर प्रभु को गर्भ में अवतरे देख इंद्र को अत्यन्त हर्ष हुआ । अति हर्ष के आवेश से मेघधाराहत विकसित कदंब पुष्प के समान रोमराई जिसकी विकस्वर हो गई हैं, ऐसा हो कर सिंहासन से उठ कर पादपीठ पर पैर रख कर नीचे उतरता है, नीचे उतर कर पादुका छोडकर प्रभु के सन्मुख उस दिशा में सात-आठ कदम चल कर एक उत्तरासन कर हाथ जोड कर घुटने को ऊपर रख कर और दाहिने को पृथ्वी पर टेक कर तीन दफा मस्तक झुका कर अंजलि करके नाथ को नमस्कार करता है याने शक्रस्तव पढ़ता है ।

नमुत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं, आइगराणं, तित्थयराणं, सयं संबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुंडरीआणं, पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोगणाहाणं, लोगहिआणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोअगराणं,

For Private and Personal Use Only

अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मणायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं, दीवोत्ताणं, सरणंगईपईट्टां अपपडिहयवरणाणं दंसणधराणं, वियट्टछउमाणं, जिणाणं, जावयाणं, तिण्णाणं, तारयाणं, बुद्धाणं, बोहयाणं, मुत्ताणं, मोअगाणं, सव्वण्णूणं, सव्वदरिसीणं, सिवमयल मरूअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणराविति सिद्धिगइणामधेयं, ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं, जिअभयाणं ।।

तींन भुवन में पूजने योग्य या कर्मरूप शत्रु को नाश करने वाले अथवा कर्मरूप बीज का अभाव करनेवाले श्री अरिहंत प्रभु को नमस्कार हो । ज्ञानादि गुण युक्त अपने अपने तीर्थ की अपेक्षा आदि के करने वाले, तीर्थ अर्थात् श्री चतुर्विध संघ या आद्य गणधर उसे करने वाले, स्वयं बोध पानेवाले, अनन्त गुणसमूह के धारक होने से सर्व पुरूषों में उत्तमता धारण करनेवाले, कर्मरूप शत्रुओं को नष्ट करने में सिंह के समान, पुरूषों में पुंडरीककमल के समान प्रधान अर्थात् जैसे कमल कीचड़ में ऊगता है, जल में बढ़ता है और कीचड़ एवं जल को छोड़ कर ऊपर रहता है वैसे ही भगवान भी कर्मरूप कीचड़ से पैदा हुए, भोगरूप जल से बड़े और कर्म एवं भोग का त्याग कर पृथक रहते हैं । पुरूषों में गंधहस्ती के समान-जैसे गंध हाथी की सुगंध से अन्य हाथी भाग जाते हैं वैसे ही जहां भगवंत विचरते हैं वहां से दुर्भिक्षादिरूप हाथी भाग जाते हैं । अंर्थात् प्रभु के प्रभाव से उस देश में उपद्रव नहीं होते । 'मध्य प्राणियों के समूह में चौतीस अतिशयों से युक्त होने के कारण उत्तम' लोक के नाथ-योग क्षेम करने वाले अर्थात् अप्राप्त ज्ञानादि गुण प्राप्त करानेवाले । लोगहियाणं सर्व प्राणियों के हितकारी । लोक में रहे अज्ञानान्धकार या मिथ्यात्वांधकार को नाश करने में दीपक के समान । सूर्य

के समान सर्व वस्तुसमूह के प्रकाशक होने से लोक में उद्योत करनेवाले । भय से रहित–निडर करनेवाले । वे भय सात प्रकार के हैं यथा–

1–मनुष्य को मनुष्य से भय वह इस लोक संबन्धी भय । 2–मनुष्य को देवादिक का भय से परलोक भय । 3–धनादि के हर लेने का भय सो आदान भय । 4–किसी निमित्त बिना ही जो बाह्य भय सो अकस्माद्भय । 5–आजीविका का भय । 6–मरण भय और 7–अपयश भय । उक्त सात प्रकार के भय से विमुक्त करने वाले । नेत्रों के समान श्रुतज्ञान के देनेवाले, सम्यग् दर्शनादि मोक्षमार्ग के देनेवाले । जैसे कि कई एक मनुष्य कहीं मुसाफरी में जा रहे थे, रास्ते में चोरों ने उनका धन लूट कर आंखों पर पट्टी बांध कर उन्हें उलटे रास्ते चढ़ा दिया, इतने में किसी बलवान हितकारी मनुष्य ने वहां आकर चोरों से उनका धन वापिस दिला कर और आंखों से पट्टी खोल कर उन्हें सीधे रास्ते पर चढ़ा दिया । वैसे ही प्रभु भी काम–क्रोधादिरूप चोरों से धर्मधन लुटे हुए और मिथ्यात्व पट्टी से आच्छादित विवेकरूप नेत्रोंवाले मनुष्यों को श्रुतज्ञान, धर्मधन दे मुक्तिमार्ग पर चढ़ा कर उनके उपकारी होते हैं । संसार में भयभीत मनुष्यों को शरण देनेवाले । मृत्यु का अभावरूप जीवन देनेवाले, बोधि अर्थात् सम्यक्त्व का प्रकाश करने वाले, चारित्ररूप धर्म की ज्योति दिखानेवाले । धर्म का उपदेश देनेवाले । धर्म के नायक स्वामी, धर्म के सारथी । जैसे–सारथी उन्मार्ग में जाते हुए रथ को सन्मार्ग में लाता है वैसे ही प्रभु भी उन्मार्ग में गये मनुष्य को धर्ममार्ग में लाकर स्थिर करते हैं । अब इस पर मेघकुमार का दृष्टान्त कहते हैं ।

मेघकुमार का दृष्टांत

एक समय प्रभु राजगृह नगर में पधारे थे । उनकी देशना सुनकर श्रेणिक राजा और धारणी रानी का पुत्र मेघकुमार प्रतिबोध को प्राप्त हुआ । उसने बड़ी कठिनाई से माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर अपनी स्त्रीयों को त्याग कर दीक्षा ग्रहण की । शिक्षा देने के लिए प्रभु ने उसे स्थविर मुनियों को सौंपा । एक दिन उपाश्रय में क्रम से मुनियों का संथारा करने पर मेघकुमार का संथारा सबके बाद, द्वार के निकट आया । रात को मात्रा-लघुनीति के लिए आते-जाते मुनियों की चरणरज से उसका संथारा भर गया । अतः उसे सारी रात निंद नहीं आई । उस वक्त उसने विचारा कि 'कहां वह सुखशय्या और कहां यह धूल से भरा संथारा । इस तरह जमीन पर लेटने का दुःख मुझ से कब तक सहन होगा ? मैं तो सुबह भगवान को पुछकर अपने घर चला जाऊंगा ।' ऐसा विचार कर प्रातःकाल प्रभु के पास आया । प्रभु ने उसे मीठे वचनों से बुलाया और कहा वत्स ! तूंने रात को ऐसा दुर्ध्यान किया है । वह उचित नहीं है । नरकादि के दुःखों के सामने यह दुःख क्या शक्ति रखता है ? वैसा दुःख भी प्राणियों ने अनेक सागरोपम तक बहुत दफा सहन किया है । कहा भी है कि-अग्नि में प्रवेश कर मर जाना अच्छा हैं, शुद्ध कर्म से मृत्यु पाना श्रेष्ठ है पर ग्रहण किया व्रत और शील भंग करना अच्छा नहीं है । इस चारित्रादि कष्ट का आचरण तो महान फल के देनेवाला होता है । तूंने स्वयं ही धर्मभाव से पूर्वभव में कष्ट सहन किया था उसी से तुझे यह अवसर मिला है । तूं अपने पूर्वभवों का वृत्तान्त सुन ? इस से तीसरे भव पहले

तूं वैताढय पर्वत पर सुमेरूप्रभ नामक हाथी था । वह 6 दांतवाला श्वेतवर्णीय और एक हजार हथनियों का स्वामी था । एक बार दावानल से भयभीत हो भागते हुए को प्यास लगने से बहुत कीचड़वाला सरोवर देखने में आया । मार्ग न जानने से पानी पीने जाते हुए वह वहां दलदल मे न फंस गया । अब जल और थल दोनों से लाचार हो गया । फिर उसने पूर्वशत्रु हाथियों ने वहां आकर उस पर दांतों के प्रहार किये । उनकी वेदना सात दिन तक सहकर एक सौ बीस वर्ष का आयु पूर्ण कर विन्ध्याचल पर फिर तूं लाल रंग का चार दांतवाला और सात सौ हाथनियों का स्वामी हाथी हुआ । वहां पर भी एक बार दावानल लगा, उसे देख तुझे जातिस्मरण ज्ञान पैदा हुआ । पूर्वभव का स्मरण होने से दावानल से बचने के लिए तूंने एक योजन प्रमाणवाला एक मंडल बनाया । वर्षाकाल से पहले, मध्य में और वर्षा के अन्त में उस मंडल में जमे हुए घास तृण आदि को तूं उखाड कर फेंक देता था । एक दिन दावानल लगने पर भयभीत हो उस जंगल के तमाम प्राणी अपनी जान बचाने के लिए उस मंडल में आ बैठे । तूं भी बाहर से शीघ्र ही आ गया । शरीर में खुजली करने की इच्छा से तूंने अपना पैर उठाया । उस वक्त दूसरी जगह पर भीड के कारण अत्यन्त तंग हुआ एक खरगोश उस जगह आराम से आ बैठा । खुजली कर पैर नीचे रखते समय तेरी नजर उस खरगोश पर पड गई । उस पर दया आने से तूं दो दिन तक पैर अधर किये खड़ा रहा । जब दावानल शांत हो गया और सब प्राणी अपने अपने स्थान पर चले गये तब पैर नीचे रखते समय खून जमजाने के कारण तूं जमीन पर गिर पड़ा । फिर तीन दिन तक भूख प्यास की पीडा

For Private and Personal Use Only

सहकर दयाभाव के कारण सौ वर्ष की आयु पूर्ण होने पर मर कर तूं यहां श्रेणिक राजा और धारणी रानी का पुत्र हुआ है । हे मेघकुमार ! उस समय पशु के भव में भी तूंने धर्म के लिए वैसा कष्ट सहन किया था तो अब जगत के वन्दनीय मुनियों की चरणरज से तूं क्यों दुखित होता है ? ऐसा उपदेश दे कर प्रभु ने उसे धर्म में स्थिर किया । अपना पूर्वभव का वृत्तान्त सुनते समय मेघकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हो जाने से उसने केवल नेत्र वर्ज कर अपना सारा शरीर मुनियों की सेवा में समर्पण कर दिया । क्रम से निरतिचार चारित्र पालन कर मेघकुमार अन्त में महीने की संलेखना कर विजय नामक विमान में देव हुआ । वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म कर वह मोक्ष पद को प्राप्त करेगा ।

दूसरा व्याख्यान

तीन समुद्र और चौथा हिमालय इन चारों के अन्ततक स्वामिभाव से धर्म के श्रेष्ठ चक्रवर्ती, अर्थात् धर्म के स्थापक। समुद्र में डूबते हुए प्राणियों को द्वीप के समान आधाररूप । अनर्थ का नाश करने वाले । कर्मों के उपद्रव से भयभीत प्राणियों को शरणरूप । दुःखित मनुष्यों को आश्रयरूप, संसाररूप कुवे में पड़ते हुए प्राणियों को अवलंबनरूप । अप्रतिहत-जिसको संसार की कोई भी वस्तु रूकावट न कर सके ऐसे अस्खलित उत्तम प्रधान ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले । घाति कर्मो को नष्ट करने वाले । राग द्वेष के विजेता । उपदेशादि का दान दे कर भव्य प्राणियों को जींवनदान द्वारा जिलानेवाले । संसाररूप समुद्र को तैर कर सेवकों को तैरानेवाले । स्वयं तत्व को जानकर और दूसरों को तत्वबोध करने वाले । स्वयं कर्मपिंजरे से मुक्त हुए और दूसरों को मुक्ति दाता, स्वयं सर्व पदार्थों को जानने और देखनेवाले, तथा कल्याणकारी, अचल, रोग रहित, अनन्त वस्तु विषयक ज्ञानस्वरूप, अन्त के अभाव से क्षय रहित, बाधा तथा पुनरागमन से रहित, सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए, भयको जीतनेवाले ऐसे श्री जिन भगवंत को नमस्कार हो । इस प्रकार सर्व जिनेश्वरों को नमस्कार कर शक्रेंद्र श्री वीरप्रभु को नमस्कार करता है ।

श्रमण भगवंत श्री महावीर जो पूर्व के तीर्थंकरों द्वारा कथन किये हुए और जो सिद्धिगति नामक स्थान

For Private and Personal Use Only

को प्राप्त करने की इच्छावाले हैं उन्हें नमस्कार हो ! इंद्र कहता है कि उस देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षी में रहे हुए उन वीर प्रभु को मैं वन्दन करता हुं । मैं यहां हूं और प्रभु वहां हैं । वे मुझे यहां पर हीं देखें यह समझ इंद्र प्रभु को वन्दन नमस्कार करता है ।

इंद्र के मन मे संकल्प

प्रभु को नमस्कार कर इंद्र अपने सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख कर के बैठ जाता है । उस वक्त देवराज इंद्र को इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ । अर्थात् इंद्र को अभिलाषरूप मनोगत विचार पैदा हुआ ।

वह क्या संकल्प था सो नीचे बतलाते हैं–

आज तक कभी भूतकाल में ऐसा बनाव नहीं बना, वर्तमानकाल में ऐसा नहीं बनता और भविष्यकाल में ऐसा न बनेगा कि जो अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव या वासुदेव शूद्र, अधर्म, तुच्छ, अल्प, निर्धन, कृपण, भिक्षुक या ब्राह्मणकुल में आये हों या आते हों अथवा भविष्य में आवें । वे निश्चय से उग्रकुल–श्री ऋषभदेव प्रभुद्वारा स्थापित रक्षक पुरूषों के कुल में, भोगकुल–गुरूतया स्थापित किये पुरूषों के कुल में, राजन्यकुल–आदिनाथ प्रभुद्वारा स्थापित मित्र स्थानीय पुरूषों के कुल में, इक्ष्वाकु कुल–श्री ऋषभदेव प्रभु के वंश में पैदा हुए मनुष्यों के कुल में, क्षत्रियकुल – श्री आदिनाथ प्रभुद्वारा स्थापित प्रधान प्रकृतिवाले मनुष्यों के कुल मे , हरिवंशकुल – पूर्वभव वैर के कारण हरिवर्ष क्षेत्र से देवता द्वारा भरत में लाये हुए युगलिक के वंशजों के कुल में ,

इसके अतिरिक्त अन्य विशुद्ध जाति कुल में आये है, आते हैं और आयेंगे । परन्तु वे पहले किये नीचादि कुल में अवतार नहीं लेते । फिर यह बनाव क्यों बना सो बतलाते हैं-संसार में एक भवितव्यता नामक आश्चर्यकारी भाव-बनाव है जो अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के व्यतीत होने पर बनता है । जिसमें इस वर्तमान अवसर्पिणी काल में ऐसे दश बनाव-आश्चर्य उत्पन्न हुए हैं । वे दश इस प्रकार हैं –

दस आश्चर्य

उपसर्ग 1, गर्भहरण 2, स्त्री तीर्थंकर 3, अभावित पर्षदा 4, कृष्ण का अपरकंका गमन 5, मूल विमान से सूर्य चंद्र का अवतरण 6, हरिवंश कुल की उत्पत्ति 7, चमरेंद्र का ऊर्ध्वगमन 8, एक समय में एक सौ आठ का सिद्धिगमन 9, तथा असंयतिपूजा 10 इन दश आश्चर्यों की व्याख्या क्रम से निम्न प्रकार है-

(1) उपसर्ग- उपद्रव, वे श्री वीरप्रभु का छद्मस्थ अवस्था में बहुत हैं, जिन का आगे चल कर वर्णन करेंगे परन्तु जिस अवस्था के प्रभाव से समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं, उस केवल ज्ञानावस्था मे भी जो इन्हीं प्रभु को अपने ही शिष्य गोशालक से उपद्रव हुआ वह आश्चर्य इस प्रकार है- एक समय श्री वीरप्रभु विचरते हुए श्रावस्ती नगरी में समवसरे । तब गोशालक भी उस नगरी में आ निकला और अपने आप को जिनेश्वर प्रकट करने लगा । आज श्रावस्ती नगरी में दो जिनेश्वर पधारे हैं, यह बात जनता में फैल गई । यह सुनकर गौतमस्वामी ने प्रभु महावीर से पूछा कि भगवन् ! अपने आपको जिनेश्वर प्रसिद्ध करने वाला यह दूसरा कौन मानव (मनुष्य)

For Private and Personal Use Only

हैं ? भगवान ने कहा–यह जिन नहीं है, परन्तु शाखण ग्रामनिवासी मंखली और सुभद्रा से अधिक गायोंवाली एक ब्राह्मणी की गोशाल में पैदा होने के कारण 'गोशाल' नामधारी एक हमारा ही शिष्य है । वह हमारे ही पास कुछ ज्ञान प्राप्त कर के मिथ्या मान बडाई के लिए व्यर्थ हीं अपने आप को जिनेश्वर प्रसिद्ध करता है । सर्वज्ञ देव का यह वचन सर्वत्र फैल गया। गोशाला इस बात को सुन कर बड़ा कुपित हुआ । उस समय गोचरी के लिये शहर में गये हुए आनन्द नामक भगवान के शिष्य को देख कर गोशाला बोला कि हे–आनन्द ! एक दृष्टांन्त सुनता जा । कितने एक व्यापारी अनेक प्रकार के करियाण गाड़ियों में भरकर धन कमाने के लिए परदेश जाने को घर से निकले । मार्ग में उन्होंने एक अटवी में प्रवेश किया । वहां उन्हें प्यास लगीं, परन्तु खोज करने पर भी उन्हें वहां पर कहीं जलाशय न मिला । पानी की खोज करते हुए उन्होंने चार बांबी शिखर देखीं । एक बांबी को फोडने पर उसमें से खूब पानी निकला । उन सबने अपनी प्यास बुझाई और मार्ग के लिए जलपात्र भर लिए । उनमें से एक वृद्ध वणिक बोला कि–भाईयों ! अपना काम हो गया चलो, अब दूसरी बांबी (शिखर) फोडने की आवश्यकता नहीं हैं । निषेध करने पर भी उन्होंने दूसरी बांबी (शिखर) फोड़ डालीं । उसमें से उन्हें बहुत सा सुवर्ण प्राप्त हुआ । वृद्ध के मना करने पर फिर उन्होंने तीसरा शिखर फोड़ा, उसमें से बहुत सारे रत्न निकले । उस वृद्ध वणिक के रोकने पर ध्यान न देकर उन्होंने चौथे शिखर को भी फोड़ डाला । उसमें से एक दृष्टिविष सर्प निकला । उसने अपनी क्रूर दृष्टिद्वारा सब को मौत के घाट उतार दिया । जो उनमें हितोपदेशक वृद्ध था ।

वह न्यायवान होने से किसी समीपवर्ति देवताने उसे ले जाकर उसके स्थान पर रख दिया । अतः हे आनन्द । तेरा धर्माचार्य ऋद्धि प्राप्त होने पर भी संतोष न पाकर ज्यों त्यों बोल कर मुझे कुपित करता है, मैं अपने तप तेज से उसे भस्म कर डालूंगा, इसलिए तूं शीघ्र ही जाकर उसे यह बात कह दे । उस वृद्ध वणिक के समान हितोपदेशक समझ कर मैं तेरी रक्षा करूंगा । यह बात सुन कर आनन्द ने सर्व वृत्तान्त प्रभु से आ कहा । भगवान बोले–हे आनन्द ! तूं शीघ्र ही गौतमादि मुनियों से जाकर कहा कि– यह गोशाला यहां रहा है अतः उसके साथ किसी को भी संभाषण न करना चाहिये और तुम सब यहां से इधर–उधर चले जाओ । उन सभी ने वैसा ही किया । इतने में गोशाला वहां पर पहुंचा और भगवान से बोला कि–हे काश्यप ! तूं ऐसा क्यों बोलता है ? कि यह मंखली का पुत्र गोशाला है । वह तेरा शिष्य मंखलीपुत्र तो मर गया, मैं तो और ही हूं । उसका शरीर परीषहों को सहन करने में समर्थ समझ कर मैंने उसमें प्रवेश किया हुआ है । इस प्रकार गोशाला द्वारा प्रभु का तिरस्कार न सहते हुए वहां पर रहे हुए सुनक्षत्र और सर्वानुभूति नामक दो मुनियों को बीच में उत्तर देते हुए गोशाला ने तेजोलेश्या से भस्म कर दिया । वे मर कर स्वर्ग को प्राप्त हो गये । भगवान बोले–हे गोशालक ! तूं वही गोशाला है, अन्य नहीं । किस लिए वृथा ही अपने आपको छिपाता है ? इस प्रकार तूं अपने आपको छिपा नहीं सकता । जिस प्रकार कोई चोर कोतवाल की नजर में आजाने पर भी अपने आपको एक तिनके या अंगुली के पीछे छिपाने का प्रयत्न करे तो क्या वह छिप नहीं सकता । भगवान के सत्य वचन

For Private and Personal Use Only

सुनकर उस दुरात्माने प्रभु पर तेजोलेश्या छोड़ी । वह लेश्या भगवान को तीन प्रदक्षिणा दे कर वापिस गोशाले के हीं शरीर में जा घुसी । उससे उसका शरीर दुग्ध हो गया और अनेकविध वेदनायें भोग कर सातवीं रात को मर गया । उस तेजोलेश्या के आताप से भगवान को 6 मास तक शौच में खून पड़ने की पीड़ा सहन करनी पड़ी । इस प्रकार जिसका नाम स्मरण करने मात्र से सर्व दुःख उपशान्त हो जाते हैं ऐसे सर्वज्ञ वीरप्रभु को यह उपसर्ग हुआ वह प्रथम आश्चर्य हुआ।

(2) गर्भहरण– एक उदर से दूसरे उदर में रखना, यह आज तक किसी भी जिनेश्वर को न हुआ था, किन्तु श्री वीरप्रभु को हुआ यह दूसरा आश्चर्य हुआ ।

(3) स्त्री तीर्थकर– सदैव पुरूष हीं तीर्थकर होते हैं परन्तु इस अवसर्पिणी काल में मिथिला नगरी के स्वामी राजा कुंभ की पुत्री मल्लि नामक उन्नीसवें तीर्थंकर हो कर तीर्थ की प्रवृत्ति कराई । यह तीसरा आश्चर्य हुआ ।

(4) अभावित पर्षदा– सर्वज्ञ देव की देशना कदापि ऐसी नहीं होती कि जिससे किसी भी प्राणी को बोध न हो, परन्तु श्री वीरप्रभु को केवलज्ञान होने पर जो प्रथम पर्षदा में उन्होंने देशना दी उससे किसी के भी मन में कुछ व्रत धारण करने का भाव पैदा न हुआ । यह चौथा आश्चर्य हुआ ।

(5) अंपरकंकागमन– एक समय पाण्डव पत्नी द्रोपदी ने वहां आये हुए नारद को असंयत समझ कर सन्मुख उठने का सन्मान न दिया । इससे नारद ने कुपित हो द्रोपदी को कष्ट में डालने के लिए धात की खण्ड के

भरतक्षेत्र में अपरकंका नामक राजधानी के स्वामी राजा पद्मोत्तर के सामने जा कर, जो स्त्री लंपट था, द्रोपदी के रूप की प्रशंसा की । उसने अपने किसी मित्र देव के द्वारा द्रोपदी को अपने अन्त:पुर में मंगवा लिया । द्रोपदी के गुम होने पर पांडव माता कुन्ती ने कृष्ण को यह समाचार कहा । कृष्ण द्रोपदी की खोज में व्यय थे । उस समय वहां पर आये हुए उसी नारद से द्रोपदी का समाचार सुन कृष्ण ने सुस्थित देव की आराधना की । उस देव की सहाय से दो लाख योजन प्रमाणवाले लवणसमुद्र को उल्लंघन कर कृष्ण पाण्डवों सहित धात की खण्ड की अपरकंका नगरी में पहुंचा । वहां पर पाण्डवों का तिरस्कार करनेवाले पद्मोत्तर राजा को नरसिंहरूप से जीतकर और द्रोपदी के वचन से उसे जिन्दा छोड़कर द्रोपदी को साथ ले कृष्ण वापिस लौटे । लौटते समय कृष्ण ने अपने पांचजन्य शंख को बजाया । शंख - शब्द सुन कर वहां विचरते हुए मुनिसुव्रतस्वामी तीर्थपति के वचन से कृष्ण का वहां आगमन जान कर मिलने की उत्सुकता से वहां के कपिल नामक वासुदेव ने समुद्र तट पर शंखनाद किया । परस्पर दोनों के शंखनाद मिल गये । इस प्रकार कृष्ण का अपरकंका नगरी में जाना इस अवसरर्पिणी में पांचवां आश्चर्य हुआ है ।

(6) मूल विमान से सूर्य चंद्र का अवतरण- कोशांबी नगरी में भगवान श्री वीरप्रभु को वन्दनार्थ सूर्य और चंद्रमा अपने मूल विमान से आये थे, यह छट्ठा आश्चर्य हुआ ।

(7) हरिवंश कुल की उत्पत्ति - कौशांबी नगरी में सुमुख नामक राजा राज्य करता था । उसने शाला-

For Private and Personal Use Only

पति वीरक की वनमाला नाम की स्त्री को विशेष रूपवती होने से अपने अन्तःपुर में रखली । वह शाला पति उसके वियोग से पागल हो गया । जिसको देखता है उसे ही वनमाला वनमाला कह कर पुकारता है । इस दशा में अनेक तमाशवीनों सहित वह नगर में भटकता फिर रहा था । उस समय राजा और वनमाला राजमहल में एक बारी में बैठे हुए क्रीडा कर रहे थे । अचानक ही उन दोनों की नजर उस वीरक शालापति पर पड़ी । उसकी दशा देख दोनों के मनमें अपने अनुचित कर्म को लिए पश्चाताप पैदा हुआ । उस वक्त आाकाश में बादलों का जोर था, अकस्मात् उपर से बिजली पड़ी और उस से उन दोनों की मृत्यु हो गई । शुभ परिणाम से मर कर दोनों ही हरिवर्ष क्षेत्र में युगलिकतया पैदा हुए । शालापति को उनकी मृत्यु का समाचार मालूम होने पर होश आ गया । उन पापियों को उनके पाप का दण्ड मिल गया, इस भावना से उसकी विकल्पता दूर हो गई । वह फिर वैराग्य प्राप्त कर तपस्या करने लगा । उस तप के प्रभाव से मर कर सौधर्म कल्प में किल्विबपिक देव हुआ । विभंग ज्ञान से उन दोनों के देख कर विचारने लगा कि –अहो ! ये मेरे शत्रु युगलिक सुख भोग कर देव बनेंगे; इन्हें तो दुर्गति में धकेलना चाहिये । ऐसे विचार से अपनी शक्ति से उनके शरीर संक्षिप्त कर के वह देव उन्हें यहां भरत क्षेत्र में ले आया । यहां पर राज्य देकर उन्हें सातों व्यसन सिखलाये । वे व्यसनों में आसक्त हो मर कर नरक में गये । उनका जो वंश चला वह हरिवंश कहलाता है । यहां पर युगलिकों को शरीर और आयु संक्षिप्त कर भरतक्षेत्र में लाना और उनका मर कर नरक में जाना यह सब कुछ आश्चर्य में समझना चाहिये । यह सातवां

आश्चर्य हुआ ।

(8) चमरेन्द्र का ऊर्ध्वगमन– कोई एक पूर्ण नामक तपस्वी काल करके चमरेन्द्र नाम का असुरकुमार देवों का इंद्र बना, वह नवीन हीं पैदा हुआ था अतः सौधर्मेंद्र को अपने ऊपर बैठा देख क्रोधित हो अपना परिष नामा शस्त्र ले और श्री वीरप्रभु का शरण स्वीकार कर सौधर्म के अंगरक्षक देवों को त्रासित करते हुए सौधर्म विमान की वेदिका में पैर रख कर उसने शर्क्रेंद्र पर आक्रोस किया । अकस्मात् क्रोधित हो शक्रेंद्र ने उस पर अपना जाज्वल्यमान वज्र छोड़ा । बिजली समान देदीप्यमान वज्र से भयभीत हो वह भगवंत के चरणों में जा छिपा । ज्ञान से व्यतिकर जान कर इंद्र ने शीघ्र आ कर प्रभु से सिर्फ चार अंगुल दूर रहे हुए अपने वज्र को पकड़ लिया । भगवान की कृपा से तुझे छोड़ता हूं, यों कह कर शक्रेंद्र अपने स्थान पर चला गया । यह चमरेंद्र का जो सौधर्म देवलोक का ऊर्ध्वगमन है सो आठवां आश्चर्य हुआ ।

(9) एक समय में एक सौ आठ का सिद्धिगमन – एक समय मे उत्कृष्ट अवगाहनावाले एकसौ आठ व्यक्ति मुक्ति को नहीं जाते, ऐसा कुदरती नियम होने पर भी इस अवसर्पिणी काल में श्री ऋषभदेव प्रभु, भरत के सिवा उनके निन्यानवें पुत्र और आठ भरत के पुत्र एवं एक सौ आठ ये एक समय में हीं सिद्धिगति को प्राप्त हुए हैं । यह नवमा आश्चर्य हुआ।

(10) असंयति पूजा– संसार में सदैव संयतों–संयमधारियों का हीं पूज़ा सत्कार होता है, परन्तु इस

For Private and Personal Use Only

अवसर्पिणी में नवमे और दसमे तीर्थंकर के बीच के समय में गृहस्थ ब्राह्मणादि की जो पूजा प्रवृत्ति हुई वह दसवां आश्चर्य हुआ । ये दश आश्चर्य अनन्त कालातिक्रमण के बाद इस अवसर्पिणी में हुए हैं । इसी प्रकार काल की समानता से शेष चार भरत और पांच ऐरावता में भी प्रकारान्तर से दश दश आश्चर्य समझ लेना चाहिये । इन दश आश्चर्यो में से एक सौ आठ का एक समय सिद्धिगमन, श्री ऋषभदेव प्रभु के तीर्थ में हुआ । हरिवंश की उत्पत्ति का आश्चर्य श्री शीतलनाथ प्रभु के तीर्थ में हुआ । अपरकंका गमन श्रीनेमिनाथ प्रभु के तीर्थ में, स्त्री तीर्थंकर श्रीमल्लिनाथ के तीर्थ में और असंयतिपूजा का आश्चर्य श्री सुविधिनाथ प्रभु के तीर्थ में हुआ है । शेष पांच उपसर्ग, गर्भहरण, अभावित परषदा, चमरेन्द्र का ऊर्ध्वगमन और सूर्यचंद्र का मूलविमान से अवतरण वे श्री वीरप्रभु के तीर्थ में हुए हैं ।

यह भी एक आश्चर्य ही है कि जो अक्षीण हुए नाम गोत्र कर्म के उदय से अर्थात् पूर्व में बांधे हुए नीच गोत्र कर्म के शेष रहने के कारण और अब उसके उदय भाव में आने से भगवान श्री महावीर ब्राह्मणी की कुक्षि में अवतरे । यह नीच गोत्र प्रभु ने अपने सत्ताईस स्थूल भवों की अपेक्षा तीसरे भव में बांधा था । जिसका वृत्तान्त इस प्रकार है-

प्रभु के सत्ताईस भव

पहले भव में पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में प्रभु का जीव नयसार नामक एक ग्रामाधीश का नौकर था । एक

समय वह जंगल में काष्ठ लेने को गया था । मध्याह्न समय होने पर भोजन के वक्त उसके लिए भोजन आया । ठीक उसी समय दैवयोग से कितनेक साधु रास्ता भूल कर उस जंगल में भटक रहे थे । जब वे साधु उसके दृष्टिगोचर हुए तो उन्हें देख कर उसके मनमें बड़ी खुशी हुई. और मन ही मन विचार करने लगा कि मेरे अहोभाग्य हैं जो इस समय यहां महात्मा पधारे हैं । बडे हर्ष और आदर सत्कार से नयसारने उन मुनियों को आहार पानी का दान दिया । भोजन किये बाद वह मुनियों को नमस्कार कर बोला–चलो महाभाग ! आपको मार्ग बतलाऊं । मार्ग चलते समय मुनियों ने उसे योग्य समझकर धर्मोपदेश द्वारा समकित प्राप्त करा दिया । अन्त समय नवकार मंत्र स्मरण करने पूर्वक मृत्यु पाकर वह दूसरे भव में सौधर्म देवलोक में पल्योपम की आयुवाला देव पैदा हुआ । वहां से चल कर तीसरे भव में मरीचि नामक भरतचक्रवर्ती का पुत्र हुआ । वैराग्य प्राप्त कर उसने श्री ऋषभदेव प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण की और स्थविरों के पास एकादशांगी का अध्ययन किया । एक दिन ग्रीष्मकाल के ताप से पीड़ित हो विचारने लगा कि चिरकाल तक इस तरह संयम धारण करना अतिदुष्कर है । इस प्रकार कष्टमय जीवन बिताना मुझ से न बन सकेगा; परन्तु सर्वथा वेष परित्याग कर घर जाना भी अनुचित है । यह विचार कर उसने एक नूतन वेष निर्माण किया । यह समझकर कि साधु तो मन, वचन और काया के तीन दण्ड से रहित हैं किन्तु मैं वैसा नहीं हूं इसलिए मेरे पास त्रिदंडका चिह्न चाहिए, एक त्रिदंडक रख दिया । साधु द्रव्यभाव से मुण्डित हैं मैं वैसा नहीं हूं, यह समण्कर सिर पर चोटी

और क्षुर मुंडन स्वीकार किया । उसने निश्चय किया कि साधु सर्व प्राणातिपात की विरति रखते हैं परन्तु मैं स्थूल प्राणातिपात की विरति रक्खूंगा । साधु शील सुगंधित हैं, मैं वैसा न होने से चंदनादिका विलेपन रक्खूंगा । मुनिराज तो मोह रहित हैं, पर मैं वैसा न होने से एक छत्री भी रक्खूंगा । मुनि नंगे पैर रहते हैं, परन्तु मैं पैरों में जूते भी रक्खूंगा । मुनि कषाय रहित हैं, मैं वैसा नहीं इस लिए मैं अपने पास काषाय वस्त्र रक्खूंगा । मुनि स्नान से रहित हैं, परन्तु मैं तो परिमित जल से स्नान भी किया करूंगा । इस प्रकार अपनी बुद्धि से मरीचिने परिव्राजक का वेष कल्पित कर लिया । उसे नया वेषधारी देख कर अनेक मनुष्य उसके पास जाकर उससे धर्म पूछने लगे । मरीचि लोगों के समक्ष साधु धर्म की व्याख्या करता है । उपदेशशक्ति बलवती होने के कारण अनेक राजपुत्रों को प्रतिबोधित कर भगवान को शिष्यतया प्रदान करता है और प्रभु आदिनाथ स्वामी के साथ ही विचरता है । एक समय प्रभु अयोध्या में समवसरे, तब वंदन करने के लिए आये हुए भरत ने प्रभु से पूछा कि – स्वामिन् ! इस सभा में कोई ऐसा मनुष्य है जो भरत क्षेत्र में इस चौबीसी में तीर्थंकर होने वाला हो ? भगवान बोले–हे भरत ! तेरा पुत्र मरीचि इस वर्तमान अवसर्पिणी में वीर नामक चौबीसवां तीर्थंकर, विदेह क्षेत्र की मूका राजधानी में प्रियमित्र नामा चक्रवर्ती और इस भरत क्षेत्र में प्रथम वासुदेव होगा । यह सुन कर हर्षित हुआ भरत मरीचि के पास जाकर उसे तीन प्रदक्षिणा और नमस्कार कर बोला – हे मरीचे ! संसार में जितने श्रेष्ठ

1 गेरू से रंगा हुआ वस्त्र

पद हैं वे सब तूने ही प्राप्त किये हैं, क्योंकि तू अन्तिम तीर्थंकर, प्रथम वासुदेव और चक्रवर्ती होगा । मैं तेरे इस परिव्राजक वेष को वन्दन नहीं करता, किन्तु तू भावीकाल में अन्तिम तीर्थंकर होनेवाला है इस अपेक्षा से मैं तुझे नमस्कार करता हूं । इस तरह मरीचि की स्तुति करता हुआ भरत अपने स्थान पर चला गया । इधर मरीचि अपने भावी उत्कर्ष की बातें सुन कर हर्ष के आवेश में आकर त्रिपदी पछाड़ कर नृत्य करते हुए इस प्रकार गाने लगा–

प्रथमों वासुदेवोऽहं, मूकायां चक्रवर्त्यहं । चरमस्तीर्थराजोऽहं, ममाहो ! उत्तमं कुलम् ॥1॥

आद्योऽहं वासुदेवानां, पिता मे चक्रवर्तिनाम् । पितामहो जिनेन्द्राणां ममाहो ! उत्तमं कुलम् ॥2॥

अर्थ– मैं पहला वासुदेव बनूंगा, मूका नगरी में चक्रवर्ती बनूंगा और अन्तिम तीर्थंकर बनूंगा इसलिए मेरा कुल सर्वोत्तम है । वासुदेवों में पहला मैं हूं, चक्रवर्तियों में मेरे पिता पहले हैं और तीर्थंकरों में मेरे दादा पहले हैं; इसलिए मेरा कुल सर्वोत्तम है । इस प्रकार कुल का मद करने से मरीचि ने नीच गोत्र कर्म बांध लिया । जो मनुष्य जाति, लाभ, कुल, ऐश्वर्य, बल, रूप, तप और विद्या इनका अभिमान करता है उसे भवान्तर में ये वस्तु हीन प्राप्त होती हैं । अब भगवान के निर्वाण होने पर भी मरीचि साधुओं के साथ ही विचरता है और उपदेश से अनेक मनुष्यों को प्रतिबोध कर मुनियों को शिष्यतया समर्पण करता है । अर्थात् वैराग्य प्राप्त कर जो दीक्षा ग्रहण करना चाहता है उसे साधुओं के पास भेज देता है ।

For Private and Personal Use Only

एक दिन मरीचि बीमार पड गया, उस समय कोई भी उसे पानी तक देने को न आया, तब उसने सोचा कि–देखो इतने परिचित होने पर भी ये साधु बड़े बे परवाह हैं । यदि अब के मैं निरोगी हो जाऊं तो ऐसे प्रसंग पर सेवा करनेवाला एक शिष्य अवश्य बनाऊंगा । कुछ दिन बाद मरीचि निरोगी हो गया । एक दिन एक कपिल नामक राजकुमार मरीचि की देशना सुन कर वैराग्य को प्राप्त हुआ । मरीचि ने कहा– कपिल ! जाओ, साधुओं के पास जाकर दीक्षा धारण करो । कपिल बोला– स्वामिन् ! मैं तो आपके दर्शन में व्रत ग्रहण करूंगा । मरीचि बोला–कपिल ! साधु–मन, वचन, काया के दण्ड से रहित हैं, मैं वैसा नहीं हूं, इत्यादि मरीचि ने अपनी समस्त त्रुटियां बतलादी, तथापि वह भारी कर्मी कपिल चारित्र से पराडमुख होकर बोला–क्या आपके दर्शन में सर्वथा धर्म नहीं है ? यह सुनकर मरीचि ने विचारा कि–यह मेरे योग्य ही शिष्य है जो सब बातें कहने पर भी नहीं मानता । उसके प्रश्न के उत्तर में मरीचि ने कहा कि–कपिल ! जैन दर्शन में भी धर्म है और मेरे दर्शन में भी, क्या आपके दर्शन में सर्वथा धर्म नहीं है यह सुनकर मरिचीं ने विचारा कि यह मेरे योग्य ही शिष्य है जो सब बात कहने पर भी नहीं मानता. कपिल ने मरिचीं के पास दीक्षा ले ली, मरिचीं ने जो यह कहकि जैन दर्शन में भी धर्म है औश्र मेरे दर्शन में भी इस उत्सूत्र प्ररूपणा से उसने कोटाकोटी सागर प्रमाण संसार उपार्जन कर लिया । इस कर्म की आलोचना किये बिना हीं चौरासी लाख पूर्व की आयु पूर्ण कर वह मर कर चौथे भव में ब्रह्मलोक नामा स्वर्ग में दश सागरोपम की स्थितिवाला देव बना । वहां से च्यव कर पांचवें भव में कोल्लाक नामक ग्राम में अस्सी लाख पूर्व की आयु वाला ब्राह्मण हुआ । अति विषयासक्त हुआ, अन्त में त्रिदंडी होकर मरा । बीच में बहुत काल तक

वह अनेक भवोंद्वारा संसार परिभ्रमण करता रहा, वे भव इन स्थूल सत्ताईस भवों में नहीं गिने हैं । वहां से छट्ठे भव में स्थूणा नगरी में बहोत्तर लाख पूर्व की आयुवाला पुष्य नामक ब्राह्मण हुआ और त्रिदंडी होकर मरा । सातवें भवमें सौधर्म देवलोक में मध्यम स्थिति का देव हुआ । वहां से आठवें भव में चैत्य ग्राम में साठ लाख पूर्व की आयुवाला अग्निद्योत नामा ब्राह्मण हुआ और अन्त में त्रिदंडी होकर मरा । वहां से नव में भव में ईशान देवलोक में मध्यम स्थितिवाला देव हुआ । वहां से च्यव कर दशवें भव में मंदर ग्राम में छप्पन लाख पूर्व की आयुवाला अग्निभूति नामक ब्राह्मण हुआ और अन्त में त्रिदंडी होकर मरा । ग्यारहवें भव में तीसरे कल्प में मध्यम स्थितिवाला देव हुआ । बारहवें भव में श्वेतांबी नगरी में चवालिस लाख पूर्व की आयुवाला भारद्वाज नामक ब्राह्मण हुआ और अन्त में त्रिदंडी होकर मरा । तेरहवें भव में महेन्द्र कल्प में मध्यम स्थितिवाला देव हुआ । वहां से फिर कितने एक काल तक संसार में परिभ्रमण कर चौदहवें भवमें राजगृह नगर में चौतीस लाख पूर्व की आयुवाला स्थावर नामक ब्राह्मण हुआ । अन्त में त्रिदंडी होकर पंद्रहवें भव में ब्रह्मलोक नामा स्वर्ग में मध्यम स्थितिवाला देव हुआ । सोलहवें भव में कोटी वर्ष आयुवाला विश्वभूति युवराज पुत्र हुआ । संभूति मुनि के पास चारित्र ले कर एक हजार वर्ष तक घोर तप किया । एक समय मासोपवास के पारणे के लिए मथुरानगरी में गोचरी जा रहा था, मार्ग में एक गाय का सींग लगने से तपस्या से कृश होने के कारण जमीन पर गिर पड़ा । यह देख कर वहां पर शादी करने के लिए आये हुए विशाखानन्दी नामक उसके चाचा के पुत्र ने उसका उपहास्य

For Private and Personal Use Only

किया । इससे कुपित हो उस गाय को दोनों सींग पकड कर आकाश में घुमाई और यह निदान कर लिया कि मेरे इस तप के प्रभाव से मैं भवान्तर में सबसे अधिक बलवान बनूं । वहां से मृत्यु पाकर सत्तरवें भव में महाशुक्र विमान में उत्कृष्ट स्थितिवाला देव हुआ । अठारहवें भव में पोतनपुर के राजा प्रजापति कि जो अपनी पुत्री का ही कामी बना था उसकी पत्निरूप मृगावती पुत्री की कुक्षि से चौरासी लाख वर्ष की आयुवाला त्रिपुष्ट नामक वासुदेव हुआ । वहां बालवय में ही प्रतिवासुदेव के चावलों के खेतों में उपद्रव करने वाले सिंह को शस्त्र छोड़ कर चीर डाला । क्रम से वासुदेव का पद पाया । एक समय उस वासुदेव ने अपने शय्यापालक को आज्ञा दी कि जब मुझे निद्रा आजावे तब इन गाना गानेवालों को बन्द कर देना । यह आज्ञा होते हुए भी संगीत रस में आसक्त होने से वासुदेव को निद्रा आजाने पर शय्यापालकने गवैयों को गाने से न रोका । क्षणान्तर में निद्रा भंग हो जाने से कुपित हो वासुदेव बोला–अरे दुष्ट ! हमारी आज्ञा से भी तुझे संगीत अधिक प्रिय लगा ? ले इसका फल चखाऊँ । यों कह कर उसके दोनों कानों में सीसा गरम कर के डलवा दिया । इस कृत्य से उसने अपने कानों में सलाखायें डलवाने का कर्म उपार्जन कर लिया । इस प्रकार अनेक दुष्ट कर्म कर के वहां से मृत्यु पाकर उन्नीसवें भवमें सातवीं नरक में नारक तया उत्पन्न हुआ । वहां से निकल कर बीसवें भव में सिंह हुआ । वहां से मर कर इक्कीसवें भव में चौथी नरक में नारक हुआ । वहां से निकल कर संसार में बहुत से सूक्ष्म भव भ्रमण कर बाईसवें भव में मनुष्य गति में आकर कुछ शुभ कर्म उपार्जन किया । तेईसवें भव में मूका राजधानी में धनंजय राजा की

धारिणी देवी की कुक्षि में चौरासी लाख पूर्व की आयुवाला प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती हुआ । पोट्टिलाचार्य के पास दीक्षा लेकर एक करोड वर्ष तक दीक्षा पर्याय पाल चौबीसवें भव में महाशुक्र देवलोक में देव हुआ । वहां से पच्चीसवें भव में इस भरत क्षेत्र की छत्रिका नगरी में जितशत्रु राजा की भद्रा नामा रानी की कुक्षि से पच्चीस लाख वर्ष की आयुवाला नन्दन नामक पुत्र हुआ । पोट्टिलाचार्य के पास दीक्षा ग्रहण कर जीवन पर्यन्त मासक्षमण की तपस्या कर के वीस स्थानक की आराधना द्वारा तीर्थंकर नामकर्म निकाचित कर और एक लाख वर्ष तक चारित्र पर्याय पाल कर मासिक संलेखना से मृत्यु पाकर छब्बीसवें भव में प्राणत कल्प में पुष्पोत्तरावतंसक नामा विमान में बीस सागरोपम की स्थितिवाला देव हुआ । वहां से चलकर पूर्व में मरीचि के भव में उपार्जन किये और भोगने में कुछ शेष रहे हुए नीच गोत्र कर्म के प्रभाव से सताईसवें भव में ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण की देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षी में प्रभु अवतरे हैं । इसी कारण इंद्र यह विचार करता है कि इस प्रकार नीच गोत्र कर्म के उदय से अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेवादि का अवतरण तो तुच्छादि नीच गोत्र में हुआ है, होता है, और होगा अर्थात् उन हलके कुलों में पूर्वोक्त उत्तम पुरुष भूत, वर्तमान और भविष्य काल में माता के गर्भ में आये और आयेंगे परन्तु उन कुलों में योनि द्वारा उनका जन्म न हुआ, न होता है और न कभी होगा । अब श्रमण भगवान महावीर प्रभु जंबूद्वीप में भरतक्षेत्र में, ब्राह्मण कुण्ड ग्राम नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण की स्त्री देवान्दा की कुक्षि में गर्भतया अवतरे हैं । इस लिए देवताओं के राजा शक्रेंद्र

For Private and Personal Use Only

का यह आचार है, अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य इंद्रों का यह कर्तव्य है कि उस प्रकार के स्वरूप वाले अन्त्य, तुच्छादि कुलों से अरिहन्तादि महान् पुरूषों के उस प्रकार के उग्र, भोग, राजन्य उत्तम कुल जातिवंश में लाकर रक्खें । इस लिए अपने कर्तव्य के अनुसार मुझे भी श्री ऋषभदेव स्वामी के वंश के क्षत्रियों में विख्यात काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थ राजा की वाशिष्ट गोत्रीया पत्नी त्रिशला की कुक्षि में प्रभु महावीर को रखना चाहिये और जो त्रिशला क्षत्रियाणी का पुत्रीरूप गर्भ है उसे वहां से लेकर जालंधर गोत्रीया देवानन्दा की कुक्षि में रखना चाहिये ।

गर्भपरावर्तन

इस प्रकार का विचार कर इंद्र अपने सेनापति हरिंणैगमषी देव को बुलवाता है और अपने मन में पैदा हुआ संकल्प आद्योपान्त उसके सामने कह सुनाता है । फिर कहता है कि हे देवानुप्रिय ! यह देवेन्द्रों का कर्तव्य है इसलिए तूं जा और देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से लेकर भगवन्त को त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में रख दे और जो त्रिशला का गर्भ है उसे देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में रख दे । इस प्रकार कार्य कर के शीघ्र ही मेरी आज्ञा को पालन करने का समाचार मुझे वापिस दे । पैदल सेना के स्वामी हरिंणैगमेषी देवने इन्द्र का आज्ञा बडी उत्कृष्ट और आज्ञा सुनकर हृदय में हर्षधारण के हरिंणैगमेषी देवसे हाथ जोड कर बोला जैसी देवाज्ञा, यों कहकर इंद्र के वचन को स्वीकार करता है । फिर ईशान कौन में जाकर वैक्रिय शरीर

बनाने के लिए प्रयत्न करता है । दिव्य प्रयत्न से असंख्य योजन प्रमाण दंन्डाकार में ऊपर और नीचे विशाल जीव प्रदेश के पुद्गल समूह को बाहर निकालता है और वैक्रिय शरीर बनाने के लिए हिरा, वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसार, गल्ल, हंसगर्भ, स्फटिकादि जो सोलह रत्नों की जातियां हैं उनके समान सार और उत्तम सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करता है । दूसरी वार भी इसी प्रकार वैक्रिय समुद्घात-प्रयत्न विशेष कर के, अर्थात् मनुष्य लोक में आने के लिए वैक्रिय शरीर बना कर अन्य गतियों से उत्कृष्ट मनोहर, चित्त की उत्सुकता से कायचापल्यवाली, प्रचंड, तीव्र, शीघ्र एवं दिव्यगति से अब वह हरिणैगमेषी देव तिरछे लोक के असंख्यात द्वीप समुद्रों के मध्य से जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में जहां पर ब्राह्मणकुंड ग्राम नगर है वहां आता है । वहां पर ऋषभदत्त ब्राह्मण के घर जाकर देवानन्दा ब्राह्मणी के पास जाता है । दर्शन होते हीं प्रभु महावीर को नमस्कार करता है । फिर परिवार सहित देवानन्दा ब्राह्मणी के पास जाता है । दर्शन होते हीं प्रभु महावीर को नमस्कार करता है । फिर परिवार सहित देवानन्दा ब्राह्मणी को अवस्वापिनी निंद्रा देता है । सारे परिवार को निद्रित कर वहां से अशुभ पुद्गलों को हरन करता है और शुभ पुद्गलों का प्रक्षेपन करता है । फिर प्रभो ! मुझे आज्ञा दें, यों कहकर हरिणैगमेषी पीडा रहित अपने दिव्य प्रभाव से भगवंत को करतल के संपुट में ग्रहण करता है । ग्रहण करते समय गर्भ या माता को जरा भी तकलीफ मालूम नहीं होती । भगवंत को संपुट में धारण कर वह देव क्षत्रियकुंडग्राम नगर में आकर सिद्धार्थ राजभवन में जाता है और त्रिशला क्षत्रियाणी के पास जाकर उसे सपरिवार को अवस्वापिनी निंद्रा दे देता है । फिर वहां से भी अशुभ पुद्गलों को दूर कर शुभ पुद्गलों को प्रक्षेप

For Private and Personal Use Only

कर भगवन्त महावीर प्रभु को बाधा पीडा रहित त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में रखता है और जो त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भ था उसे देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षी में जा रखता है । यह कार्य कर जिस दिशा से आया था उसी दिशा से असंख्य द्वीप समुद्रों के मध्य में होकर लाख योजन प्रमाण दिव्यगति से उड़ता हुआ जहां पर सौधर्मकल्प में सौधर्मावतंसक नामक विमान में शक्रनामा सिंहासन पर शक्रेंद्र बैठा है वहां आता है, वहां आकर देवेंद्र को उनकी आज्ञा पालन का समाचार सुनाता है ।

अब उसकाल और उस समय अर्थात् वर्षाकाल के तीसरे मास पांचवें पक्ष में आश्विन मास की कृष्ण त्रयोदशी के दिन अर्धरात्रि के समय ब्यासी अहोरात्र–रातदिन बीतने पर तिरासीवां अहोरात्र काल बर्तते हुए अपने और इंद्र के हितकारी हरिणैगमेषी देवने देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ से श्रमण भगवंत महावीर प्रभु को भक्ति और देवेन्द्र की आज्ञा से त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ में रक्खा । यहां पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि प्रभु जो ब्यासी रात्रिदिन तक देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में रहे वे सिद्धार्थ राजा के आप्तकुल में प्रवेश करने का शुभ मुहूर्त्त देख रहे थे, ऐसे तीर्थंकर प्रभु तुम्हें पावन करो । भगवान जब से गर्भ में आये तभी से तीन ज्ञानयुक्त थे, अतः वे अपने गर्भ परिवर्तन काल को जानते थे परन्तु अपने आपको स्थान परिवर्तन होते समय उन्होंने नहीं जाना । इस वाक्य से हरिणैगमेषी देव की कार्यकुशलता बतलाई है । रहस्य यह है कि उस देवने प्रभु का ऐसी दिव्य कुशलता से गर्भ

के लिए जैसे कोई कहे कि आपने मेरे पैर में से ऐसे कांटा निकाला कि मुझे मालूम भी न हुआ । अब जिस रात्रि को श्रमण भगवंत श्री महावीर देवानन्दा की कुक्षि से त्रिशला की कुक्षी में आये उसी रात्रि को देवानन्दाने यह स्वप्न देखा कि मेरे वे चौदह स्वप्न त्रिशला क्षत्रियाणीने हर लिए । जिस रात्रि में भगवन्त को त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भतया रक्खा गया उस रात को त्रिशला क्षत्रियाणी ऐसे सुन्दर वासगृह में थी कि जिसका वर्णन करना कठिन है । वह शयन घर भाग्यवान के योग्य था । वह अनेक प्रकार के चित्रों से सुशोभित था, बाहरी भाग कली चूने आदि से धवलित किया हुआ था । उसका तल भाग सुन्दर फर्स के कारण अतिरमणीय था, अतः सुकोमल और दीप्तिमान था । जिस में जड़े हुए पंचवर्णीय मणि रत्नों के प्रकाश से अन्धकार का सर्वथा प्रवेश न था । उसका समतल भूमिभाग विविध स्वस्तिकादि की रचना से अतीव मनोज्ञ था । उस शयनगृह में पंचवर्ण के पुष्प बिखरे हुए थे । दशांग धूप आदि अनेक प्रकार के सुगंधी द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न हुए सुवास से वह शयन घर अतिसुगन्धित हो रहा था, अर्थात् उसमें पुष्पों और सुगंधवाले द्रव्यों की सुगंध चारों और प्रसर रही थीं इस प्रकार के अति मनोहर शयनगृह में लंबाई के प्रमाण में दोनों तरफ लगे हुए तकियों वाले, शरीर के प्रमाण में बिछी हुई तलाईवाले, दोनों ओर से ऊंचाई और मध्यमें नमे हुए, जिस तरह गंगा की रेती में पैर रखने से वह नीचे को जाता है वैसे कोमल पलंग पर कि जो अपनी भोगावस्था में सुन्दर रजस्राव से आच्छादित रहता है और जिस पर मच्छरदानी लगी हुई है, कपास की रूंवाटी और

अर्कतूल के समान अति सुकोमल स्पर्शवाले पलंग पर अर्धनिंद्रित अवस्था में आधी रात के समय त्रिशला क्षत्रियाणी गज, वृषभ आदि चौदह महास्वप्न देखकर जाग उठती है । यद्यपि वीरप्रभु की माताने पहले स्वप्न में सिंह देखा है और ऋषभदेव की माता ने प्रथम बैल देखा है तथापि बहुत से जिनेश्वरों की माता जिस क्रम से स्वप्न देखती हैं वही क्रम रक्खा है ।

चौदह स्वप्नों का वर्णन

अब प्रथम स्वप्न में त्रिशला माता ने गज देखा । वह चार दांतवाला, तेजस्वी, बलवान, वृष्टि के बाद सफेद हुए बादल, मुक्ताहार, क्षीर, समुद्र, चंद्र, किरणों, जल बिन्दुओं, चांदी के पर्वत वैताढय के समान उज्ज्वल एवं जिसके गंडस्थल से मद झरने के कारण सुगंध के वश होकर जहां भ्रमर गुनगुनाहट कर रहे थे तथा इंद्र के हाथी समान शास्रोक्त देह प्रमाण और जलपूर्ण मेघ के समान गर्जना करते हुए सर्व लक्षण समूह से वह अति मनोहर हाथी था ।1।

इसके बाद त्रिशला माता उज्ज्वल कमल पत्र के समूह से भी अधिक रूपकान्तिवाले, जो अपने विसतृत कान्तिसमूह से दश ही दिशाओं को सुशोभित करता था, फूले हुए स्कंध भाग से स्वयं उल्लासित कान्तिद्वारा अति सुन्दर, सूक्ष्म, शुद्ध और सुकोमल रोमवाले, सुगठित अंग, मांसल शरीर, प्रधान, पुष्ट अवयव, वर्तुलाकार सुन्दर चिकने और तीक्ष्ण सींग, समान प्रमाणवाले, सौम्याकृति, मंगल मुख, सुशोभित श्वेतवर्णीय बैल को

देखती है ।2।

पूर्वोक्त बैल को देखे बाद आकाश से उतरते और अपने मुख में प्रवेश करते हुए त्रिशला माता एक सिंह को देखती है । वह सिंह-हारसमूह, क्षीरसागर, चंद्रकिरणों, रजत पर्वत और जलबिन्दुओं के समान उज्ज्वल था । मनोहर होने से दर्शनीय, दृढ़ एवं प्रधान पंजोयुक्त, पुष्ट, तीक्ष्ण दाढाओं से अलंकृत मुखवाला, सुसंस्कारित जातिमान कमल के तुल्य कोमल और प्रमाणोपेत प्रधान होठों से युक्त, लाल कमल पत्र के समान कोमल एवं प्रधान जिव्हा तथा तालु से सुशोभित मुखुवाला वह सिंह था । सुनार की कुठाली में तपे हुए आवर्तवान उत्तम सुवर्ण के समान गोल और निर्मल बिजली के तुल्य नेत्रवान्, विशाल, परिपुष्ट और प्रधान जंघायें धारण करने वाले, परिपूर्ण एवं निर्मल कंधे युक्त, कोमल, सूक्ष्म, उज्ज्वल श्रेष्ठ लक्षणवाली और दीर्घ केशराओं के धारण करनेवाले, उन्नत, कूण्डलाकार एवं शोभायमान पुच्छवाले, तीक्ष्ण नाखून युक्त और सौम्याकृतिवान्, सुन्दर तथा विलासवाली गति से उतरते हुए सिंह को माता देखती है ।3।

अब चौथे स्वप्न में पूर्ण चंद्रमा के समान मुखवाली त्रिशलादेवी ने कमल युक्त इंद्र के कमल में निवास करने वाली लक्ष्मीदेवी को देखा । लक्ष्मीदेवी के निवास स्थान का वर्णन निम्न प्रकार है-एक सौ योजन ऊंचा, बारह कला अधिक एक हजार और बावन योजन लम्बा सुवर्णमय एक हिमालय पर्वत स्थित है । उस पर दश योजन की गहराई वाला, पांच सौ योजन विशाल और एक हजार योजन लंबा वज्रमय तलभागवाला पद्महद्र नामक एक

For Private and Personal Use Only

विशाल जलाशय है । उसके मध्य में एक कमल है जो जल से दो कोस ऊंचा, एक योजन चौड़ा और एक योजन लम्बा है । उसकी नील रत्नमय दश योजन की नाल, वज्रमय मूल, रिष्ट रत्नमय कंद, लाल कनकमय बाह्य पत्रे, सुवर्णमय बींच के पत्रे, दो कोश चौड़ी, दो कोश लम्बीं और एक कोश ऊंचीं सुवर्णमय उसकी कर्णिका है । रक्त सुवर्णमय उसकी केशरा है । उसके मध्य में आधा कोस चौडा, एक कोस लम्बा और कुछ कम एक योजन ऊंचा लक्ष्मीदेवी का भवन है । उसके पांच सौ धनुष्य ऊंचाई और ढाईसौ धनुष्य चौडाई वाले पूर्व, दक्षिण एवं उत्तर दिशा में तीन द्वार हैं । उस भवन के मध्य में ढाई सौ धनुष्य के प्रमाणवाली रत्नमय वेदिका है जिस पर श्रीदेवी के योग्य सुन्दर शय्या है ।

पूर्वोक्त मुख्य कमल के चारों ओर श्रीदेवी के आभूषणरूप वलयाकार में मूल कमल से आधे 2 प्रमाणवाले एकसौ आठ कमल हैं । सर्व वलयो में इसी प्रकार क्रमसे अर्ध 2 प्रमाण समझना चाहिये । यह प्रथम वलय पूर्ण हुआ । दूसरे वलय में वायव्य, ईशान और उत्तर दिशा में चार हजार सामानिक देवों के चार हजार कमल हैं । पूर्व दिशा में चार महत्तराओं के चार कमल हैं । अग्नि दिशा में गुरू स्थानीय अभ्यन्तर पर्षदा के देवों के आठ हजार कमल हैं । दक्षिण दिशा में मित्र स्थानीय मध्यम पर्षदा के देवों के दश हजार कमल हैं । नैऋत दिशा में किंकर स्थानीय बाह्य पर्षदा के देवों के बारह हजार कमल हैं । पश्चिम दिशा में हाथीं, अश्व, रथ, पैदल, भैंसे, गन्धर्व और नाटयरूप सात सेनापतियों के सात कमल हैं । इस प्रकार यह दूसरा यह दूसरा वलय पूर्ण हुआ ।

तीसरे वलय में उतने ही अंगरक्षक देवों के सोलह हजार कमल हैं । यह तीसरा वलय । चौथे वलय में अभ्यन्तर आभियोगिक देवों के बत्तीस लाख कमल हैं । पांचवें वलय में मध्यम आभियोगिक देवों के चालीस लाख कमल हैं । यह पंचम वलय । छठे वलय में बाह्य आभियोगिक देवताओं के अड़तालीस लाख कमल हैं । छट्ठा वलय । मूल कमल के साथ सर्व कमलों की संख्या एक कोटी, बीस लाख, पचास हजार, एक सौ बीस होती है । इस प्रकार के कमल स्थान में रही हुई लक्ष्मीदेवी का दिग्गजेंद्रोंद्वारा अभिषेक होता देखती है । यहां पर कुछ श्रीदेवी के रूप का वर्णन लिखते हैं ।

अच्छे प्रकार से रक्खे हुए सुवर्ण कछुवे के समान बीच से कुछ उन्नत और इर्दगिर्द नीचे उसके चरण हैं । नख उन्नत, सुकुमार, स्निग्ध तथा लाल हैं । हाथ पैरों की अंगुलियां कमल पत्र के समान कोमल हैं । पैरों की पिंडलियां केले के सुदृश गोल अनुक्रम से नीचे पतली और ऊपर स्थूल होकर शोभायमान हैं । गोड़े गुप्त और हाथी की सूंढ के समान जंघाये हैं । कमर में सुवर्ण का कंदोरा है । नाभि से लेकर स्तनों तक सूक्ष्म रोमराजी शोभायमान है । उसका कटिप्रदेश मुष्टिग्राह्य और मध्य विभाग तीन बलियों सहित है । उसके अंगोपांग चंद्रकान्तादि मणिमाणिक्यादि रत्नों से जडित सुवर्णमय सर्व आभूषणों से भूषित हैं । स्वर्ण कलश सदृश हृदय स्थल पर उसके स्तनयुगल हारों तथा सुन्दर पुष्पों की मालाओं से शोभित हैं । हृदय में मोतीयों की माला, कंठ में मणिमय सूत्र और कानों में दो कुंडल हैं । इस प्रकार आभूषणों की शोभासमूह से श्रीदेवी का मुखमंडल अत्यधिक सुन्दर

For Private and Personal Use Only

मालुम होता है । उसके दोनों नेत्र निर्मल कमल पत्र के सदृश दीर्घ तथा विशाल हैं । उसने शोभा के लिए हाथ में कमल का पंखा लिया हुआ है उस से हिलते समय मकरंद झरता है । उसका केशपाश स्वच्छ, सघन, काला तथा कमर तक लम्बायमान है ।1।

। दूसरा व्याख्यान समाप्त हुआ ।

।। तीसरा व्याख्यान ।।

अब पंचम स्वप्न में त्रिशला क्षत्रियाणी आकाश से उतरती हुई दो पुष्पमालायें देखती है । उस मालायुग्म में कल्पवृक्ष के पुष्प, चंपा, नाग, पुन्नाग, प्रियंगु, सिरीष, मोगरा, मालती, जाई, जूई, अंकोल, कुटज, कोरंट, दमनक, बकुल, पाटल, तिलक, वासंतिक, नवमल्लिका, कुन्द, मुचकुन्द, सूर्य और चंद्राविकाशी कमल, उत्पल, पुण्डरीक आदि के पुष्प लगे हुए हैं । उन मालाओं में आम्र की मंजरियां भी लगी हुई हैं । छहीं ऋतुओं में पैदा होनेवाले पंचवर्णीय पुष्पों से वे मालायें गुंथी हुई हैं, श्वेत वर्ण के पुष्प उनमें अधिक हैं, अन्य विविध रंगवाले पुष्प भी उनमें यथायोग्य स्थान पर गूंथे हुए हैं जिस से वह मालायुग्म अत्यन्त शोभनीक मनोहर देख पडता है । उसके अनेक वर्णीय पुष्पों की सुगन्ध से आकर्षित हो अनेक भ्रमर गुनगनाहट शब्द कर रहे हैं ।5।

अब छट्ठे स्वप्न में त्रिशला माता पूर्णचंद्र को देखती है । वह चंद्र गोदुगध के सदृश, झाग, जलकण, चांदी के कलश समान सफेद है । तथा हृदय और नेत्रों को आनन्द देनेवाला, सर्व कला युक्त, अन्धकार नाशक, शुक्लपक्ष में वृद्धि पानेवाला, कुमुद वन को विकसित करनेवाला, रात्रि शोभाकारक, समुद्र जलवर्धक, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष द्वारा मासादि का प्रमाणकारक, सूर्य के प्रसरते हुए ताप से मुर्च्छित हुए चंद्रविकाशि कमलों को अपनी अमृतमय किरणों से सत्वर विकस्वर करनेवाला, शीत्रे के समान उज्ज्वल, ज्योतिष मुखमंडन, कामदेव के शरों को पूर्ण करनेवाला-अर्थात् जिस प्रकार कोई एक शिकारी इच्छित शर प्राप्त कर निःशंक होकर मृगादि पर प्रहार करता है वैसे ही कामदेव भी चंद्रोदय को प्राप्त कर विरही जनों को अधिक पीड़ित करता हैं । इसी कारण कविने चंद्र को निशाचर-राक्षस कह कर उपालंभ-उलहना दिया है-रजनिनाथ ! निशाचार ! दुर्मते ! विरहिणां रूधिरं पिवसि ध्रुवम् । उदयतोऽरूणता कथमन्यथा तव कथं च तके तनुताभृतः ।1।

अर्थ - हे निशाचर दुर्मते रजनिनाथ-चन्द्र ! निश्चय ही तू विरही जनों का खून पीता है, यदि ऐसा न हो तो उदय के समय तेरा लाल मुख और उनके शरीर में कृशता क्यों होतीं हैं ? तथा विशालाकाश का मानो चलत स्वभाववाला वह तिलक ही न हो एवं रोहिणी के ❖ हृदय को वल्लभ वह चंद्र है । इस प्रकार छट्ठे स्वप्न में त्रिशला क्षत्रियाणी ने सौम्य पूर्ण चंद्र को देखा ।6।

❖ रोहिणी एक नक्षत्र है और चंद्र के साथ उसका स्वामी सेवक भाव है तथापि लौकिक कहावत ऐसी है कि रोहिणी चंद्र की स्त्री है ।

For Private and Personal Use Only

सातवें स्वप्न में त्रिशलादेवी सूर्यमंडल को देखती है–वह सूर्य अंधकार समूह का विनाशक, जाज्वल्यमान तेजवान्, लाल अशोक, प्रफुल्लित केसूपुष्प, तोते के चोंच, तथा चणोठी के अर्ध भाग सदृश रक्त वर्णमाला और कमलों को विकसित कर–कमल वनों की शोभा बढानेवाला है । ज्योतिष–शास्त्र संबन्धी लक्षणों को बतलाने वाला, ज्योतिष चक्रग्रहों का राजा एवं आकाश में साक्षात दीपक के समान है । वह हिमपटल को गलानेवाला, रात्रिविनाशक, उदय और अस्त समय में ही दो दो घड़ी सुखपूर्वक और शेष समय दुःख से देखने योग्य है, उदय एवं अस्त समय ही जो एकसा लाल तथा संसार का नेत्ररूप है । तथा वह अंधकार में स्वेच्छा पूर्वक विचरने वाले अन्यायकारी मनुष्यों को रोकनेवाला, शीतवेग का विनाशक, मेरूपर्वत की प्रदक्षिणा करने वाला विशाल मंडल युक्त और अपनी हजारों किरणों द्वारा चंद्रादि समस्त ग्रहों के तेज को निस्तेज करने वाला है । सूर्य किरणें ऋतुभेद के कारण सदैव एक समान नहीं रहतीं । निम्न प्रकार होतीं हैं ।

सूर्य किरण	चैत्र	वैशाक	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्रपद	आश्विन	कार्तिक	मार्गशीर्ष	पोष	माघ	फाल्गुन
यंत्रकम्	1200	1300	1400	1500	1400	1400	1600	1100	1050	1000	1100	1050

अब आठमें स्वप्न में त्रिशला क्षत्रियाणी उत्तम सुवर्ण के दंडवाला और हजार योजन ऊंचा ध्वज देखती है

उसमें लाल, पीले, नीले, श्याम और श्वेत रंगवाले वस्त्रों की पताकायें लगी हुई हैं । उसके सिर पर अत्यन्त सुन्दर एवं विचित्र रंगोंवाले मयूर पिंच्छे लगे हुए हैं इस से वह ध्वज अत्याधिक शोभायमान है । उस ध्वजा मे स्फटिक रत्न, शंख, कुन्द के पुष्प, जलबिन्दु और चांदी के कलश समान श्वेत सिंह का रूप चित्रा हुआ है, जो सिंह पवन से ध्वजा के हिलने पर मानो आकाश को भेदन करता हो ऐसा मालूम होता है, अतः मंद 2 सुहावने वायु से कंपायमान वह ध्वज अतीव शोभनीक दिखता है ।8।

नौ में स्वप्न में त्रिशला देवी ने उत्तम सुवर्ण का अत्यन्त सूर्यमंडल के समान प्रकाशवान तथा सुगन्धी जल से भरा हुआ एक पूर्ण कलश देखा । वह कलश कमलों से घिरा हुआ, सर्व मंगलकारी रत्नों के कमल पर रक्खा हुआ, नेत्रों को आनन्ददायक, प्रभायुक्त, सर्व दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ साक्षात् लक्ष्मी के घर समान, पाप रहित, शुभ तथा भास्वर है और कंठ में सर्व ऋतुओं सम्बन्धी सरस सुगंधित पुष्पों की मालायें पहने हुए है ।9।

दशवें स्वप्न में पद्मसरोवर देखती है–जिसमें सूर्योदय से सहस्त्रदल कमल खिल रहे हैं, जिसका निर्मल जल विकसित कमलों के मकरंद से सुगन्धमय है तथा कमलों के पुष्प, पत्तों से पीले वर्ण का मालूम हो रहा है और जिसमें अनेक जलचर प्राणी सुखपूर्वक रहते हैं । कमलनी के पत्रों पर पड़े हुए जलबिन्दु ऐसे मालूम होते हैं मानो निलमणि–जड़ित आंगन में मोती जड़े हैं । उस विशाल पद्मसरोवर में पैदा हुए सूर्य विकाशी कमल, चंद्र

For Private and Personal Use Only

कुवलय, पद्म, उत्पल, तामरस, पुंडरीक, रक्तोत्पल–लाल कमल और पीत कमल, इत्यादि कमलों में प्रसन्न भ्रमरगण सुंगध से आकर्षित हो गुंजारव कर रहे हैं और उस सरोवर में कदंबक, कलहंस, चक्रवाक, बालहंस, सारस आदि पक्षी उत्तम जलाशय प्राप्त होने के कारण गर्व से निवास कर रहे हैं ।10।

ग्यारवें स्वप्न में चन्द्रकिरणों के समान शोभावाले क्षीरसमुद्र को देखा–जिसका जल चारों दिशाओं में बढ़ रहा हैं, तथा जिसमें चपल से भी अति चपल और अत्यन्त ऊंची उठनेवाली तरंगें तट प्रदेश से टकरा–टकरा कर उसे शोभित करती हुई जोर का शब्द कर रहीं हैं । वे तरंगे प्रारम्भ में छोटी फिर बड़ी इस प्रकार निर्मल उत्कट क्रम से दौड़ती हुई क्षीरसमुद्र के मध्यम भाग को अत्यन्त सुशोभित कर रहीं हैं । उस समुद्र में महा मगरमच्छ, तिमि मच्छ, तिमितिमिगल मच्छ (महाकाय मच्छ), तिलतिलक लघुमच्छ, ये सब प्रकार के जलचर प्राणी क्रींड़ा करते हुए जब–जब पानी पर अपनी पुच्छ का प्रहार करते हैं तब पानी पर झाग पैदा होते हैं जो किनारे पर आकर कर्पूर के ढेर समान दिखाई देते हैं । उसी समुद्र में गंगा, सिन्धु, सितादि महानदियां बड़े वेग से आकर मिलती हैं । यद्यपि ये नदियां क्षीरसमुद्र में नहीं किन्तु लवण समुद्र में मिलती हैं तथापि समुद्र की शोभा के रूप में इनका वर्णन किया गया है ।11।

बारहवें स्वप्न में शरद् रजनी पूर्णचंद्र के समान मुखवाली त्रिशला क्षत्रियाणी एक उत्तम देवविमान को देखती है–वह पुंडरिक नामक श्वेत और सर्व श्रेष्ठ कमल के समान श्रेष्ठ विमान है । तथा वह उत्तम प्रकार के

रत्नजड़ित सुवर्ण के 1008 स्थंभोंवाला आकाश में दीपक एवं उदय होते हुए सूर्य के सदृश देदीप्यमान है । उसमें अनेक प्रकार के रंगबिरंगे पंचवर्णीय सुगन्धित पुष्पों की मालायें लटक रहीं हैं । तथा मोतियों की मालाओं से उसकी कान्ति में अधिक शोभा बढ़ रही है । उस दिव्य विमान की दीवारों में मृग, वृक्ष, वृषभ, अश्व, गज, मगर मच्छ, भारंड, वरूड़, मयूर, सर्प, किन्नर, कस्तूरिया मृग, अष्टापद, शार्दूलसिंह, वनलता, पद्मलता इत्यादि के रंगबिरंगे सुन्दर चित्र लिखे हुए हैं । उस विमान में जो विविध प्रकार के नाटक हो रहे हैं उनमें बजनेवाले अनेक बाजों तथा महामेघ के शब्द सदृश गंभीर देवदुन्दुभी का मनोहर और सर्व लोकको पूर्ण करनेवाला शब्द हो रहा है । देवों के योग्य पुण्य कर्मफल सुखदायक वह विमान कृष्णागुरू, कुन्दरूक, सेलारस आदि दशांग धूप से सुगन्धमय तथा उत्तेजित है ।12।

तेरहवें स्वप्न में त्रिशलादेवी ने उत्तम रत्नों को राशिसमूह को देखा–उस रत्नों के समूह में पुलाक जाति के वज्र–हीरा की जाति के, नीलम, सस्यक, मरकत, इंद्रनील, करकेतन, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, प्रवाल, स्फटिक, सौगन्धिक, हंसगर्भ, अंजन, चंद्रकांतमणि, माणिक्य, सासक, पन्ना आदि अनेक जाति के रत्न संचित हैं । वह रत्नों का पुंज मेरू के समान ऊँचा और अपने देदीप्यमान तेज से आकाश को भी प्रकाशमान कर रहा है ।13।

चौदहवें स्वप्न में त्रिशला माता ने विस्तीर्ण, उज्ज्वल, निर्मल, पीतरक्तवर्णवाली तथा मधु घीसे सिंचित धग् धग् करती हुई जाज्वल्यमान् निर्धूम अग्निशिखा को देखा–वह अग्निशिखा अनेक छोटी बड़ी ज्वालाओं से

For Private and Personal Use Only

व्याप्त है । धूम्र रहित अनेक ज्वालायें आपस में स्पर्धा से बढ़ती हुई मानो आकाश को पकाने के लिए प्रयत्न करती हों ऐसी मालूम होती है ।14। इस प्रकार विकसित कमल के समान नेत्रवाली त्रिशला क्षत्रियाणीने पूर्वोक्त मंगलमय, कल्याणकारी, प्रियदर्शन इन चौदह महास्वप्नों को आकाश से उतरते और अपने मुख में प्रवेश करते हुए देखा । पूर्वोक्त सुभग सौम्य चतुर्दश स्वप्नों को देखकर त्रिशला रानी शय्या में जाग उठीं । उस समय हर्ष के कारण उसका सर्वांग उल्लसित हो गया, अरविन्द के समान लोचन विकस्वर हो गये और उसके सर्व शरीर की रोमराजी मारे हर्ष के विकाशमान हो गई ।

इन चौदह स्वप्नों को सर्व तीर्थकरों की मातायें जब तीर्थंकर का जीव उनके गर्भ में अवतरता है तब अवश्य देखती हैं । इस कारण त्रिशला रानी भी महावीर प्रभु के गर्भ में आने से इन चतुर्दश महास्वप्नों को देख कर शय्या में जागृत हो गई । अब हर्ष संतोष युक्त हृदयवाली, मेघधाराओं से सिंचित कदम्ब के पुष्प समान उठे हुए रोमवाली त्रिशला रानी उन स्वप्नों को क्रम से याद करती है । फिर शय्या से उठकर पादपीठ से उतर कर मन, वचन, काया सम्बन्धी चापल्य-स्खलनादि रहित, राजहंसी के समान गति से चल कर सेज पर सोए हुए सिद्धार्थ राजा के पास आती है और सिद्धार्थ राजा को वल्लभ, सदैव वांच्छनीय, प्रेमगर्भित, मनोज्ञ, उदार, मनोरम, वर्णस्वर के उच्चारण से प्रगट, कल्याणकारी, समृद्धिकारक, धन लाभ करानेवाली मंगलकारी, अलंकारादि शोभायुक्त, हृदय को प्रसन्न करने वाली, भरतार हृदय को आल्हाददायक, कोमल मधुर

रसवाली, संपूर्ण उच्चारवाली, मितपद-वर्णादिवाली, अल्प शब्द और अधिक अर्थवाली वाणी से जगाती है । सिद्धार्थ राजा की आज्ञा पाकर मणि, रत्न जड़ित सुवर्ण के सिंहासन पर बैठ गई । मार्ग का परिश्रम दूर हो जाने से अर्थात् सर्वथा स्वस्थ चित्त होने पर त्रिशला क्षत्रियाणी पूर्वोक्त मंजुल मधुर वचनों से बोली-हे स्वामिन् ! आज मैंने अर्ध जागृत अवस्था में गजादि चौदह महास्वप्न देखें हैं । हे स्वामिन् ! मुझे उन मनोहर मंगलकारी स्वप्नों का क्या शुभ फल होगा ? त्रिशला क्षत्रियाणी के मुख से उन महाप्रशस्त स्वप्नों को सुन कर और सम्यक् तथा हृदय में धारण कर सिद्धार्थ राजा हर्षित हो, सन्तुष्ट हो, आनन्दपूर्ण हृदय हो, मेघधारा से सिंचित कदम्ब पुष्प के समान विकसित रोमराजीवाला होकर अपने स्वाभाविक मतिपूर्वक बुद्धि विज्ञान से स्वप्नों के अर्थ को निश्चित करता है । अर्थ निश्चय करने पर उत्तम प्रकार की वाणीद्वारा राजा सिद्धार्थ त्रिशला क्षत्रियाणी से कहता है-हे देवानुप्रिये ! तुमने बड़े उदार, कल्याणकारी, मंगल, धन, लक्ष्मीयुक्त, दीर्घायु, आरोग्य, तुष्टि, शिव और यश प्राप्त करानेवाले स्वप्न देखे हैं । हे देवानुप्रिये ! इन महामंगलकारी स्वप्नों के दर्शन से अर्थ का लाभ होगा, भोग का, सुख का, पुत्र का, राज्य का, यश का और धन्य धान्य का लाभ होगा, हे देवानुप्रिये ! आज से नव मास और साढ़े आठ दिन रात व्यतीत होने पर तुम एक उत्तम लक्षणवाले पुत्र को जन्म दोगी । वह पुत्र हमारे कुल में ध्वज समान, दीपक समान मंगलकारी, पर्वत के समान अचल धैर्यवान्, कुलाधार, मुकुट मणी तुल्य, लोक में तिलक समान, कुलकीर्तिकारक, कुल को प्रकाशित करने में सूर्य समान, कुल की वृद्धि करने वाला, और कुल का यश

For Private and Personal Use Only

विस्तृत करनेवाला होगा । वह पुत्र हमारे कुल में वृक्ष के समान दूसरों को आश्रय देनेवाला होगा, उसके हाथ पैर सुकोमल होंगे, उसका शरीर यथायोग्य अवयवों से तथा संपूर्ण पंचेंद्रियों सहित, सर्व प्रकार के प्रशस्त लक्षणों एवं व्यंजनों से युक्त, मानोन्मान प्रमाण से सर्वांग सुन्दर होगा । पूर्ण चंद्र के समान उसकी सौम्याकृति होगी और वह सब को देखने में प्रिय लगेगा क्यों कि सब से अधिक उसका रूपसौन्दर्य होगा । वह पुत्र जब बाल्यावस्था को त्याग कर यौवनावस्था के सन्मुख होगा, अर्थात् जब वह परिपक्क विज्ञानवान् होगा तब बड़ा शूरवीर, अंगीकृत कार्य को निभाने में समर्थ, संग्राम करने में, परराष्ट्र पर आक्रमण करने में बड़ा पराक्रमी, विपुल बल वाहनवाला तथा राजाओं का भी राजा महान् सम्राट होगा । इसलिए हे देवानुप्रिये ! तुमने बड़े हीं उत्तम स्वप्न देखे हैं ।

त्रिशला क्षत्रियाणी सिद्धार्थ राजा से पूर्वोक्त स्वप्नों का अर्थ सुन कर संतुष्ट हो हर्ष से पूर्ण हृदयवाली होकर दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर अंजलि कर के विनयपूर्ण वचनों से बोली–हे स्वामिन् ! आप का वचन सत्य है, जो आपने फरमाया वह सर्व यथार्थ है, मैं आप के कथन किये अर्थ को संदेह रहित स्वीकारती हूं । इस प्रकार सिद्धार्थ राजा के कथन किये अर्थ को याद रखती हुई उन चतुर्दश महास्वप्नों को स्मरण करती हुई राजा की आज्ञा लेकर अनेक प्रकार के मणि रत्नजडित सुवर्ण के भद्रासन से उठकर त्रिशला रानी पूर्वोक्त राजहंसी के समान गति से अपने शयनागार में चली जाती है । वहां जाकर मेरे देखे हुए ये सर्वोत्कृष्ट प्रधान मंगलकारी चौदह महास्वप्न किसी खराब स्वप्न के देखने से निष्फल न हो इसलिए अब निंद्रा लेना

उचित नहीं, यह विचार कर देव गुरूजन सम्बन्धी प्रशस्त धर्मकथाओं से स्वप्न जागरिका करती है । स्वयं जागती हुई सेवक सखीजनों को जगाती हुई और धर्मकथाओं द्वारा रात्रि को व्यतीत करती है ।

अब प्रातःकाल होने पर सिद्धार्थ राजा अपने सेवकों को बुलाकर कहता है-हे महानुभावों ! आज उत्सव का दिन है इसलिए जाओ बाहर की उपस्थानशाला-बैठक को साफ कराओ, सुगंधवाले जल का छिड़काव कराओं, गोबर आदि से लिपाओ, पंचवर्णीय सुंगधवाले पुष्पों से सुगंधित कराओ तथा सुलगते हुए कृष्णागुरू, कुन्दरूष्क, तुरूष्क आदि उत्तम प्रकार के धूप से मघमघायमान् करो, यह सब कार्य तुम स्वयं करो और दूसरों से कराओ तथा शीघ्र ही वापिस आकर आज्ञापालन की खबर दो । उन आज्ञाकारी राजपुरूषों ने विनययुक्त हाथ जोड़कर राजा की आज्ञा सुनी और उसे स्वीकार कर वहां से चले गये । थोड़ी ही देर में उन्होंने राजाज्ञा के अनुसार सर्व कार्य कर के राजा के पास वापिस आकर निवेदन कर दिया।

सिद्धार्थ राजा का दैनिक कार्यक्रम

इधर सूर्योदय के समय सरोवरों में कमल विकसित होने लगे, रात्रि में कृष्ण मृगों के निद्रा से मिचे हुए नेत्र खुलने लगे, लाल अशोक वृक्ष की कान्तिसमूह, फले हुए केसू के पुष्प, तोते के मुख, चणोटी-गुंजा के अर्ध भाग, कबूतर के पैर, क्रोधित कोकिल के नेत्र, जासूद के पुष्प, जातिवान् हिंगुल के पुंज तुल्य, बन्धुक लाल पुष्प के समान रक्तवर्णवाला प्रभात समय हुआ । जगत्भर में कुंकुम समान लालिमा छा गई, दिशायें

प्रकाशमान् हो गई, जाज्वल्यमान् सूर्य की हजारों किरणों से अन्धकार दूर हुआ, उस वक्त सिद्धार्थ राजा अपनी शय्या से उठकर व्यायामशाला में गया। वहां पर अनेक प्रकार के मल्लयुद्धादि के व्यायाम कर के जब राजा परिश्रमित हो गया, अर्थात् जब वह अनेकविध व्यायाम के करने से थक गया। तब सौ औषधियों से बनाये हुए, या सौ द्रव्य खर्चने से पैदा हुए शतपक्क तेल से तथा हजार औषधियों या हजार मूल्य लगने से उत्पन्न हुए सहस्त्र पक्व तेल से अपने शरीर में मर्दन कराने लगा, जो मर्दन अत्यन्त गुणकारी, रस, रुधिर धातुओं की वृद्धि करनेवाला, क्षुधा अग्नि को दीप्त करनेवाला, बल, मांस, उन्माद को बढ़ानेवाला, कामोद्दीपक, पुष्टिकारक तथा सर्व इंद्रियों को सुखदायक था। वे मर्दन करनेवाले भी संपूर्ण अंगुलियों सहित सुकुमार हाथ पैर वाले, मर्दन करनेवाले भी सम्पूर्ण अंगुलियों सहित सुकुमार हाथ पैरवाले, मर्दन करने में प्रवीण और अन्य मर्दन करनेवालों से विशेषज्ञ, बुद्धिमान्, तथा परिश्रम को जीतनेवाले थे। उन मनुष्यों ने अस्थि, मांस, त्वचा, रोम इन चारों को सुखदायक हो ऐसा मर्दन किया। इसके बाद सिद्धार्थ राजा व्यायामशाला से निकल कर मोतियों से व्याप्त गवाक्षवाले, अनेक प्रकार के चंद्र कान्तादि, तथा वैडूर्यादि रत्नों से जड़े हुए आंगनवाले मन्जन घर में प्रवेश करता है। मन्जन घर में जाकर वहां पर नाना प्रकार के मणि रत्नजड़ित स्नानपीठ पर बैठता है और वहां पर उसने अनेक पुष्पों के रस सहित, चंदन, कर्पूर, कस्तूरीयुक्त पवित्र निर्मल कवोष्ण जल से कल्याणकारक स्नानविधि से स्नान किया। तदनन्तर उसने पद्मयुक्त सुकुमार, केशर, चंदन, कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों से वासित वस्त्र से शरीर को पोंच्छ कर, फिर प्रधान

वस्त्र धारण किये, गोशीर्षचंदन का विलेपन किया, पवित्र पुष्पमालायें पहनीं, केशर आदि का तिलक लगाया । मणि, रत्न और सुवर्ण के बने हुए आभूषण पहने, अठारह, नव, तीन और एक लड़ी के हार गले में धारण किये । कीमती हीरों और मणियों से जड़े हुए मोतियों के लम्बे-लम्बे फुंदों सहित कमर में कटिभूषण पहना । हीरे माणिक्यादि के कंठे पहने, अंगुलियों में अंगूठी आदि पहनीं, और अनेक प्रकार की मणियों से बने हुए बहुमूल्यवान जड़ाउ कड़े हाथों में तथा भुजाओं के आभूषण भुजाओं में पहने । इसी प्रकार कीमती कुंडलों से राजा का मुखमंडल शोभता है, मुकुट से मस्तक दीपता है, अंगूठियों से अंगुलियां पीली हो गई हैं, बहुमूल्य अत्यन्त उत्तम वस्त्र का उत्तरासन किया है, नाना प्रकार के रत्न और मणियों से जड़ा हुआ सुवर्ण का चतुर कारीगर द्वारा बना हुआ वीरतासूचक वीरवलय भुजा में धारण किया है जिस के धारण करने से वह वीर पुरूष सिद्धार्थ अन्य किसी से जीता न जा सकता था । अधिक क्या वर्णन किया जाय ? जिस प्रकार कल्पवृक्ष पुष्पपत्तों से अलंकृत और विभूषित होता है वैसे ही सिद्धार्थ राजा भी आभूषणों से अलंकृत और वस्त्रों से विभूषित था, कोरंट वृक्ष के श्वेत पुष्पों की माला से सुशोभित छत्र मस्तक पर धारण किये हुए था, अति उज्वल चमर ढुल रहे थे, चारों तरफ लोग राजा की जय जयकार कर रहे थे । इस प्रकार सब तरह से अलंकृत हो कर अनेक दंडनायक, गणनायक, राजेश्वर, सामन्त, महासामन्त, मंडलिक, मंत्री, महामंत्री, सेठ, सार्थवाह, अंगरक्षक, पुरोहित, दंडधर, धनुषधर खड्गधर, छत्रधारी, चंवरधारी, ताम्बूलधारी, शय्यापालक, गजपालक, अश्वपालक, अंगमर्दक,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आरक्षक और संधिपालक इत्यादि के साथ मन्जन घर से निकलता हुआ धवल महामेघ से निकलते हुए नक्षत्र तारागणों में चंद्र के समान लोकप्रिय, नरवृषभ, नरों में सिंह सदृश वह सिद्धार्थ राजा राज्यलक्ष्मी से सुशोभित होकर सभामंडप में आकर पूर्वदिशा के सन्मुख सिंहासन पर बैठता है । वहीं पर ईशान कौन में वस्त्र से ढके हुए सरसों के उपचार से मंगलिक किये हुए आठ भद्रासन रखवाये और रत्नजड़ित, बहुमूल्यवान्, दर्शनीय, प्रधान पत्तन में बना हुआ, अन्यन्त स्निग्ध, कोमल उत्तम वस्त्र का एक पर्दा ऐसे स्थान पर बंधवाया जो राजा के सिंहासन से अति दूर भी न था और न ही अति नजदीक था । वह पर्दा–जिसे पवनिका या कनात भी कहते हैं मृग, वृक, रोझ, वृषभ, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी, सर्प, किन्नर, कस्तूरिया मृग, अष्टापद, सिंह, चमरी गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता इत्यादि के चित्रों से सुशोभित था । उस पर्दे के अन्दर त्रिशला रानी के बैठने के लिए मणि रत्नजड़ित, कोमल, अंग को सुखकारी स्पर्शवाले मखमल के बने हुए और उपर के श्वेत वस्त्र से आच्छादित एक भद्रासन को रखवाया ।

स्वप्न पाठकों का राजसभा में आगमन

अब सिद्धार्थ राजाने कौटुंबिक अर्थात् अपने आज्ञाकारी राजपुरूषों को बुलवाया और उनसे कहा–हे देवानुप्रियों ! तुम शीघ्र जाकर अष्टांग निमित्तशास्त्र के सूत्रार्थ को जाननेवाले स्वप्नपाठकों को बुला कर लाओ । ज्योतिषशास्त्र के आठ अंग निम्न प्रकार हैं –

For Private and Personal Use Only

अंगं स्वप्नं स्वरं चैव, भौमं व्यंजनलक्षणे । उत्पातमंतरिक्षं च, निमित्तं स्मृतमष्टधा ।।1।।

अर्थः अंग के स्फुरण का परिज्ञान, उत्तम, मध्यम और जघन्य स्वप्नों के अर्थ का ज्ञान, दुर्गादि पशु–पक्षियों के स्वर का बोध, भूकंपादि पृथ्वी सम्बन्धी परिज्ञान, शरीर में जो मसे तिलादि व्यंजन होते हैं तत्सम्बन्धी ज्ञान, हाथ पैरों की रेखाओं सम्बन्धी सामुहिक लक्षण ज्ञान, सातवां उत्पात एवं उलकापात–अर्थात् तारादि टूटने का परिज्ञान और आठवां अंतरीक्ष–ग्रहों के उदय अस्त से शुभाशुभ घटनाओं का परिज्ञान । इन अष्टांग निमित्त के पारगामी, विविध शास्त्रों में निपुण स्वप्नलक्षण पाठकों को बुलाने की आज्ञा दी । इस आज्ञा को सुन कर वे कौटुम्बिक पुरूष हर्षित और संतोष को प्राप्त होकर विनीतभाव से राजाज्ञा को सिरोधार्य कर वहां से निकलकर क्षत्रियकुण्ड नगर के मध्यम में होकर स्वप्नलक्षण पाठकों के घर जाते हैं । वहां जाकर स्वप्नलक्षण पाठकों से कहते हैं–हे देवानुप्रियो ! आप को सिद्धार्थ राजा ने बुलवाया है । स्वप्न लक्षणपाठक भी राजपुरूषों के मुख से ऐसा सुनकर अत्यन्त हर्षित और संतोषित हुये । उन्होंने स्नान किया, देवपूजा की, निर्मल वस्त्र पहने, मस्तक पर तिलक, सर्षव, दूब और अक्षतादि मांगलिक वस्तुयें धारण की । दुःस्वप्नादि को निवारण करने के लिए अपने मंगल किये, राजसभा में प्रवेश करने योग्य स्वर्णादि के बहुमूल्यवान् आभूषण धारण किये और क्षत्रियकुण्ड नगर के मध्य में होकर सब के सब राजसभा के द्वार पर एकत्रित हुए । वहां पर सबने मिल कर अपने में से किसी एक को अग्रसर बनाया और सब उसके अनु–

यायी बने, क्यों कि कहा भी है–

सर्वेपि यत्र नेतारः, सर्वे पंडितमानिनः । सर्वे महत्वमिच्छन्ति तद्वृंदमवसीदति ।।1।।

अर्थात्– जहां पर सब ही अग्रेसर हों, सब हीं अपने आपको पंडित मानते हों, सब हीं महत्व चाहते हों तो वह समुदाय नष्ट हो जाता है । इस बात पर यहां एक दृष्टान्त देते हैं– एक समय परदेश से एक पांच सौ सुभटों का समुदाय नौकरी करने के लिये एक राजसभा में आया । वे पांच सौ हीं अभिमानी थे, बड़े छोटे का व्ययहार तक भी आपस में न करते थे। मंत्री की सलाह से उनकी परीक्षा करने के लिए राजा ने रात्रि के समय उनके पास एक शय्या भेजी, परन्तु वे तो सभी अपने आपको बड़ा समझते थे इसलिए आपस में कलेश करने लगे, अन्त में फैसला हुआ कि उस शय्या पर कोई भी न सोवे, अतः उसे बीच में रख कर वे चारों ओर उसकी तरफ पैर कर के सो गये । प्रातःकाल राजा ने उनकी चेष्टायें जानने के लिए छोड़े हुए गुप्त पुरूष के द्वारा समाचार सुन कर उन्हें यह समझ कर कि ये युद्धादि में किसी के आज्ञाकारी नहीं रह सकते अपमानित कर वहां से निकाल दिया । इसलिए स्वप्नपाठक राजद्वार पर एकमत होकर सभामंडप में सिद्धार्थ राजा के पास के पास आये । वहां आकर हाथ जोड़ कर–हे राजन् ! आपकी देश भर में जय हो, विदेश में विजय हो इस प्रकार जय और विजय से राजा को बधाया और आशीर्वाद दिया –

दीर्घायुर्भव, वृत्तवान् भव, भव श्रीमान्, यशस्वी भव, प्रज्ञावान् भव, भूरिसत्वकरूणादानैकशौण्डो भव,

भोगाढयो भव, भाग्यवान् भव, महासौभाग्यशाली भव, प्रौढश्रीर्भव, कीर्तिमान् भव, सदा विश्वोपजीवीभव ।1।

अर्थः- हे राजन् ! आप दीर्घायु होवें, वृत्तवान्-यमनियमादि व्रत धारण करनेवाले होवें, लक्ष्मीमान् होवें, यशस्वी, बुद्धिमान् होवें, बहुत से प्राणियों की रक्षा करने वाले, महादानी, भोगसंपदावाले, भाग्यवान् होवें, सौभाग्यशाली होवें, उत्कृष्ट लक्ष्मीवाले, कीर्तिमान और सदाकाल विश्व के समस्त प्राणियों का पालन पोषण करने वाले होवें । इसी प्रकार आशीर्वाद में एक श्लोक और कहा-

कल्याणमस्तु शिवमस्तु धनागमोऽस्तु, दीर्घायुरस्तु सुतजन्म समृद्धिरस्तु ।
वैरिक्षयोऽस्तु नरनाथ ! सदाजयोऽस्तु युष्मत्कुले च सततं जिनभक्तिरस्तु ।1।

अर्थ :- हे राजन् ! हे नरनाथ ! आप का कल्याण हो, आप का श्रेय हो, आप के घर धनागमन हो, आप दीर्घ आयुवाले हों, आपके घर पुत्र का जन्म हो, आप समुद्धिशाली हों, आपके दुश्मनों का नाश हो, आप सदाकाल जयवान् रहें, आप के कुल में निरन्तर जिनेश्वर देव की भक्ति कायम रहे ।

। तीसरा व्याख्यान समाप्त हुआ ।

।। चौथा व्याख्यान ।।

फिर सिद्धार्थ राजा ने उन स्वप्न पाठकों को उनके गुणों की स्तुति कर के नमस्कार किया । पुष्पादि से उन्हें पूजा, फल, वस्त्रादि के दान से उनका आदर किया और खड़ा होने आदि से उनका सम्मान किया । अब वे पहले से बिछाये हुए आसनों पर बैठ गये । फिर सिद्धार्थ राजा त्रिशला क्षत्रियाणी को पड़दे में रखकर पुष्प तथा नारियलादि फलों को हाथ में लेकर (क्योंकि खाली हाथ से देवगुरू राजा तथा विशेष कर के निमित्तियों के सन्मुख न जाना चाहिये, फल से ही फल की प्राप्ति होती है) स्वप्न पाठकों को विशेष विनय से यों कहने लगा–हे देवानुप्रियों ! आज त्रिशला क्षत्रियाणी वैसी शय्या में सोती जागती अर्थात् अल्प निद्रावस्था में इस प्रकार के गज, वृषभ आदि श्रेष्ठ चौदह स्वप्नों को देख कर जाग उठी । हे देवानुप्रियों ! इन श्रेष्ठ चौदह महास्वप्नों को मैं विचारता हूं कि वे कैसे कल्याणकारी और वृत्तिविशेष फल देनेवाले होंगे ? वे स्वप्नपाठक सिद्धार्थ राजा से उन स्वप्नों को अच्छी तरह मन में धारण किया । मन में धारण कर के वे उन स्वप्नों का अर्थ विचारने लगे । अर्थ का विचार कर के परस्पर विचार करने लगे और परस्पर विचार कर के अपनी बुद्धि से अर्थ को जान कर, परस्पर अर्थ को धारण कर के, शंकावाली बातों को आपस में पूछताछ कर, अर्थ को

निश्चित कर के सिद्धार्थ राजा के पास स्वप्नशास्त्रों को उच्चारण करते हुए यों कहने लगे :-

स्वप्नों का फलादेस ।

हे राजन् ! किया हुआ, सुना हुआ, देखा हुआ, प्रकृति के विकार से उत्पन्न हुआ, धर्मकार्य के प्रभाव से, पाप के उदय से, चिन्ता की परम्परा से, देवता के उपदेश से और स्वभाव से उत्पन्न हुआ, इस प्रकार मनुष्यों को नव तरह के स्वप्न आते हैं । पहेले 6 प्रकार के स्वप्नों में से देखा हुआ स्वप्न निरर्थक जाता है और बाद के तीन प्रकार के देखे हुए स्वप्न सार्थक होते हैं । रात्रि के चारों पहरों में देखा हुआ स्वप्न बारह, छः तीन तथा एक मास मे अनुक्रम से फलदायक होता है । रात्रि की अन्तिम दो घड़ियों में देखा हुआ स्वप्न दश दिन में ही फल देता है । तथा सूर्योदय के समय देखा हुआ स्वप्न निश्चय ही तुरन्त फलदायक होता है । दिन में देखी हुई स्वप्न की श्रेणी एवं आधि, व्याधि तथा मलमूत्र की हाजत से उत्पन्न हुआ स्वप्न व्यर्थ समझना चाहिये । धर्म में अनुरक्त, समधातुवाला, स्थिर चित्तवाला, जितेन्द्रिय और दयालु मनुष्य प्रायः स्वप्न से अपने अर्थ को सिद्ध करता है । यदि खराब स्वप्न देखा हो तो किसी को सुनाना नहीं चाहिये । अच्छा स्वप्न गुरू आदि को सुनाना और यदि गुरू आदि का योग न बने तो गाय के कान में ही सुनाना उचित है । उत्तम स्वप्न देख कर बुद्धिमान को चाहिये कि वह निद्रा न लेवे, सो जाने से उसका फल नष्ट होता है । यदि अधिक रात्रि हो तो प्रभु के गुनगान द्वारा जागृत रह कर शेष रात्रि व्यतीत करनी चाहिये।

For Private and Personal Use Only

खराब स्वप्न देखा हो तो फिर सोजाना चाहिये और उसे किसी के आगे न कहना चाहिये । ऐसा करने से उसका खराब फल नहीं होता । जो मनुष्य प्रथम खराब स्वप्न देख कर फिर अच्छा स्वप्न देखता है उसे पिछले अच्छे स्वप्न का फल होता है । ऐसे ही उल्टा समझना चाहिये । यदि स्वप्न में मनुष्य हाथी, घोड़ा, सिंह, वृषभ और सिंहनी से युक्त अपने आप को रथ में बैठे जाता देखे वह राजा होता है । स्वप्न में घोड़ा, हाथी, वाहन, आसन, घर और वस्त्र आदि का अपहरण देखता है वह राजा की ओर से शंकित-भयवाला, शोक करने वाला, बन्धुओं का विरोध करनेवाला और धन की हानि करनेवाला होता है । मनुष्य स्वप्न में सूर्य और चंद्रमा के बिम्बको सम्पूर्ण निगल जाये वह दरिद्री होते हुए भी सुवर्ण और समुद्र सहित पृथ्वी का मालिक बनता है । प्रहरण (शस्त्र), आभूषण, मणि, मोति, सोना, चांदी और धातुओं का हरण देखे तो वह धन एवं मान को नाशकारक होता है तथा भयंकर मृत्यु करने वाला होता है । सफेद हाथी पर बैठा हुआ नदी के किनारे चावलों का भोजन करता अपने को देखे तो वह जातिहीन होने पर भी धर्मधन को ग्रहण करता हुआ समस्त पृथ्वी को भोगता है । अपनी स्त्री का हरण देखने से धन नाश होता है । पराभव से क्लेश हो और गोत्रीय स्त्री का हरण या पराभव देखे तो बन्धुओं का वध बन्धन हो । सफेद सर्प से जो मनुष्य अपनी दाहिनी भुजा को डसा देखे वह पांच दिन में हजार सुवर्ण मुहरें प्राप्त करता है । जो अपनी शय्या या जूतों का हरण देखे उस की स्त्री मर जाती है, और उस के शरीर को पीड़ा होती है । जो मनुष्य स्वप्न में मनुष्य के

मस्तक तथा हाथ पैर का भक्षण करता है उसे अनुक्रम से राज्य, हजार सुवर्ण मुहरें तथा पांच सौ सुवर्ण मुहरें प्राप्त होतीं हैं। जो मनुष्य दरवाजे की अर्गला का, शय्या का, हिंडोले का, पादुका का तथा घर का भंग देखता है उसकी स्त्री का नाश होता है। जो मनुष्य तलाव, समुद्र, जल से भरी नदी तथा मित्र की मृत्यु देखता है उसको बिना निमित्त धन की प्राप्ति होती है। जो स्वप्न में गोबर मिश्रित गड्डुल तथा दवा सहित तपा हुआ पानी पीता है वह मनुष्य निश्चय ही अतिसार रोग से मृत्यु पाता है। जो मनुष्य स्वप्न में देवता की प्रतिमा की यात्रा, स्नान, भेंट तथा पूजा आदि करता है उसे सब तरफ से वृद्धि होती है। जो मनुष्य अपने हृदयरूप तलाव में कमल उत्पन्न हुए देखता है वह कुष्टी होकर तुरन्त मृत्यु प्राप्त करता है। जो मनुष्य स्वप्न में मनोहर घी प्राप्त करता है उसे निर्मल यश की प्राप्ति होती है। तथा क्षीरान्न के साथ घी का खाना देखे तो भी प्रशस्त है। स्वप्न में हसे तो शोक होता है। नाचने से बन्धन और पढ़ने से क्लश होता है। गाय, घोड़ा, राजा, हाथी और देव सिवाय सब ही काले रंग के स्वप्न खराब समझना चाहिये, तथा कपास और नमक के सिवा सफेद रंग के सब ही स्वप्न श्रेष्ठ समझना चाहिये। जो स्वप्न शुभ या अशुभ अपने लिए देखा हो उसका शुभाशुभ फल अपने लिए और जो दूसरों के लिए देखा हो उसका शुभाशुभ फल दूसरे के लिए होता है। यदि खराब स्वप्न देखा हो तो देव गुरू का पूजन करना उचित है तथा यथाशक्ति तप दान करना योग्य है कि जिससे धर्म के प्रभाव से कुस्वप्न भी सुस्वप्न का फल दे देता है। इस तरह हे देवानुप्रिय ! हे सिद्धार्थ राजन् ! हमारे

For Private and Personal Use Only

स्वप्नशास्त्रों में बैतालीस स्वप्न साधारण फल देनेवाले और तीस महास्वप्न उत्तम फल देनेवाले हैं । इस प्रकार सब मिलाकर बहत्तर स्वप्न कहें है । उन में भीं हे देवानुप्रिय ! अरिहंत की माता अथवा चक्रवर्ती की माता अरिहन्त या चक्रवर्ती के गर्भ में आने पर इन तीस महास्वप्नों में से ऐसे चौदह महास्वप्न देखकर जागृत होतीं है । वे चौदह महास्वप्न गज, वृषभादि । वासुदेव की माता वासुदेव के गर्भ में आने पर इन्हीं चौदह महास्वप्नों में से केवल सात स्वप्न देखतीं है । बलदेव की माता बलदेव के गर्भ में आने पर इन्हीं चौदह महास्वप्नों में से मात्र चार स्वप्न देखतीं है और मण्डलिक की माता मंडलिक के गर्भ में आने पर इन्हीं चौदह महास्वप्नों में से केवल एक स्वप्न देखतीं है । इसलिए हे देवानुप्रिय ! त्रिशला क्षत्रियाणीने तो वे चौदह हीं प्रशस्त महास्वप्न देखे हैं । हे देवानुप्रिय ! त्रिशला क्षत्रियाणी ने यावत् मंगलकारक स्वप्न देखे हैं । इससे हे देवानुप्रिय ! आप को अर्थ का लाभ, भोग का लाभ, पुत्र का लाभ, सुख का लाभ और राज्य का लाभ होगा । इस तरह हे देवानुप्रिय ! त्रिशला क्षत्रियाणी नव मास संपूर्ण होने पर साढ़े सात रात्रिदिन व्यतीत होने पर आपके कुल में ध्वज समान, दीपक समान, मुकुट समान, पर्वत समान, तिलक समान, कुल की कीर्ति करनेवाला, कुल का निर्वाह करनेवाला, कुल में सूर्य समान, कुल का आधाररूप, कुल का यश करनेवाला, कुल मे वृक्ष के समान, कुल की परम्परा को बढ़ानेवाला, सुकोमल हाथ पैर के तलियोंवाला, परिपूर्ण पंचेन्द्रिय युक्त शरीरवाला, लक्षण और व्यंजनों के गुणों से युक्त, मान उन्मान के प्रमाण से परिपूर्ण और अच्छी तरह प्रगट हुए अवयवों

से सुन्दर अंगवाला, चंद्र समान मनोहर आकृतिवाला, प्रिय, प्रियदर्शनी और सुन्दर रूपवाला; ऐसे पुत्र को जन्म देओगी। तथा वह पुत्र बाल्यावस्था को त्याग कर परिपक्व विज्ञानवाला होकर यौवनावस्था के प्राप्त होने पर दानादि देने में शूर, संग्राम में वीर, परराज्य पर आक्रमण करने में समर्थ, अधिक विस्तार युक्त सेना तथा वाहनवाला और चारों दिशाओं का स्वामी चक्रवर्ती राज्यवर्ती राज्यपति राजा होगा या तीन लोक का नायक धर्मश्रेष्ठ, चार गति का नाश करनेवाला धर्मचक्रवर्ती जिनेश्वर होगा ।

जिनत्व प्राप्त होने पर चौदह स्वप्नों का जुदा जुदा फल नीचे मुजब समझना चाहिये । चार दांतवाला हाथी देखने से वह चार प्रकार का धर्म कथन करेगा । वृषभ को देखने से वह इस भरतक्षेत्र में बोधिरूप बीज को बोवेगा । सिंह के देखने से वह कामदेवादिक जो उत्मत्त हाथी हैं, जिन से भव्यजनरूपी वन भंग होता है उन्हें मर्दन कर उसका रक्षण करेगा । लक्ष्मी देखने से वार्षिक दान देकर तीर्थंकर पद की लक्ष्मी को भोगेगा । माला देखने से तीन भवन को मस्तक में धारन करने योग्य होगा । चन्द्रमा देखने से भव्य समूह रूप चंद्रविकासी कमलों को विकसित करेगा । सूर्य देखने से कान्ति के मंडल से भूषित होगा । ध्वज को देखने से वह धर्मध्वज से विभूषित होगा । कलश देखने से धर्मरूपी महल के शिखर पर रहेगा । पद्म सरोवर देखने से देवताओं द्वारा संचारित किये हुए कमलों पर वह विचरेगा । समुद्र को देखने से वह केवलज्ञानरूप रत्नाकर के स्थान समान होगा । देव विमान देखने से वह वैमानिक देवताओं का पूजनीय होगा । रत्नराशि

For Private and Personal Use Only

देखने से वह रत्नों के गढ़ों से विभूषित होगा । निर्धूम देखने से वह भव्यजनरूप सुवर्ण को शुद्ध करने वाला होगा । चौदह स्वप्नों को एकत्रित फलरूप वह चौदह राजलोकात्मक लोक के अग्र भाग पर रहनेवाला होगा । इसलिए हे देवानुप्रिय ! त्रिशला क्षत्रियाणी ने अत्यन्त उदार और मंगलकारक स्वप्न देखे हैं ।

सिद्धार्थ राजा ने स्वप्न पाठकों से यह अर्थ सुन कर और धारण कर के हर्षित हो, संतोषित हो, यावत् हर्ष से पूर्ण हृदयवाला हो कर दोनों हाथों से अंजलि कर के स्वप्नपाठकों से यों कहा –हे देवानुप्रिय पाठकों ! ऐसा हीं है, हे पाठको ! यह यथार्थ है, वांछित है । हे पाठकों ! तुम्हारे मुख से निकलते हीं मैंने इन वचनों को ग्रहण कर लिया है । हे पाठको ! यह वांछित होने से मैने बारंबार अंगीकार किया है । यह अर्थ सच्चा है । जिस प्रकार आप कहते हैं वैसे हीं है । योंह कह कर सिद्धार्थ राजा उस अर्थ को भली प्रकार धारण करता है, और धारण कर के उन स्वप्नपाठकों को उसने विपुल शाली आदि उत्तम भोजन की वस्तुओं से, श्रेष्ठ पुष्पों से, सुंगधित द्रव्यों से, पुष्पों की गुंथन की हुई मालाओं से और मुकुटादि आभूषणों से सत्कारित और विनययुक्त वचनों से सन्मानित किया एवं जीवन पर्यन्त निर्वाह चल सके इतना प्रीतिदान देकर उन्हें विदाय किया ।

अब सिद्धार्थ राजा सिंहासन पर से उठकर जहां पर त्रिशला क्षत्रियाणी कनात के अंदर बैठी थी वहां पर आया और आकर उससे कहने लगा कि–हे प्रिये ! इस प्रकार स्वप्नशास्त्र में बैंतालीस साधारण स्वप्न और तीस महास्वप्न कहे हैं उन तीस महास्वप्नों में से तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती की माता तीर्थंकर अथवा चक्र–

वर्ती के गर्भ में आने पर 14 स्वप्न देखकर जागती है और मंडलिक की माता मंडलिक के गर्भ में आने पर 14 स्वप्नों में से कोई भी एक स्वप्न देखकर जागती है परन्तु हे त्रिशला ! तूने तो चौदह ही महास्वप्न और उदार स्वप्न देखे हैं; इसलिए तीन लोक का नायक और धर्म में श्रेष्ठ ऐसा चार गति विनाशक चक्रवर्ती जिनेश्वर तेरा पुत्र होगा । त्रिशला क्षत्रियाणी इस अर्थ को सुन कर धारण करती है और हर्षित होती है । संतुष्ट होकर यावत् हर्ष से पूर्ण हृदयवाली होकर दोनों हाथ जोड़कर अंजलि कर के उन स्वप्नों को मन में धारण कर रखती हैं । अब वह सिद्धार्थ राजा की आज्ञा पाकर अनेक प्रकार के मणि और रत्नों से जड़े हुए उस भद्रासन से उठती है और उठकर शीघ्रता रहित, चपलता रहित यावत् राजहंसी के समान गति से जहां पर उसका निवास मंदिर है वहां चली जाती है और वहां ही आनन्द से रहती है ।

प्रभु का अतुल प्रभाव ।

जिस दिन से श्रमण भगवान् महावीर प्रभु उस राजकुल में आये उस दिन से लेकर धनद की आज्ञा में रहनेवाले तिर्यग् लोक में बसनेवाले तिर्यग्जृंभक देवता वैश्रमण अर्थात् कुबेरद्वारा इंद्र की आज्ञा पाकर जिस का आगे चल कर स्वरूप वर्णन करेंगे उस प्रकार का निधानरूप से दबाया हुआ अतुल द्रव्य लाकर राजकुल मे भरने लगे । वे कैसे निधान थे सो नीचे बतलाते हैं । जिस के स्वामी नष्ट हो गये हैं, जिस धन को इकट्ठा करने वाले मर चुके हैं, जिन निधानों के मालिक मर जाने पर उनके गोत्रिय तक भी मर चुके हैं, जिन की

For Private and Personal Use Only

मालकीयत करने का हकदार अब कोई भी नहीं रहा है, जिन को जमीन में दबानेवाले सर्वथा नष्ट हो गये हैं, जिन के मालिकों के घरबार तक भी नाश हो चुके हैं ऐस निधान देवता लोग लालाकर राजकुल में भरते हैं । अब वे निधान किन–किन स्थानों से देवता लाते थे सो कहते है–ग्रामों से, आकरों से अर्थात् लोहादि की खानों में से, नगरों से, जिसके इर्दगिर्द धूली का कोट हो ऐसे खेट से, कुनगरों से, दूर प्रदेश के ग्रामों से, जिस जगह जल और स्थल के मार्ग मिलते हों ऐसे स्थानों से, आश्रमों से, संवाहस्थानों से अर्थात् खेडुतों की धान्यसंग्रह करने की भूमि में से, संन्निवेशों से, त्रिकोण स्थानों से, चौराहों से, अनेक मार्ग संमेलक स्थानों से, चतुर्मुख स्थानों से, देवकुलों–देवालयों से, मठों से, राजमार्गो से, ग्रामों के ऊँचे स्थानों से, नगरों के ऊँचे स्थानों से, ग्रामों का जल निकलने के स्थानों से, इसी तरह से नगर का परनी निकलने के स्थानों से, पुरानी दुकानों से, जीर्ण सभाओं से, जीर्ण प्रपाओं से, आराम–बगीचों से, उद्यान अर्थात् पुष्पित बगीचों से, स्मशानों से, शून्यागार जिन घरों में कोई भी मनुष्य न रहता हो ऐसे घरों से, पर्वतों की गुफाओं से, शान्ति गृहों से, शैल–पर्वत गृहों से इत्यादि स्थानों में जो कृपण मनुष्यों द्वारा पूर्वकाल में दबाया हुआ निधान–धन और अब उन निधानों को कोई भी मालिक न रहने के कारण इंद्र की आज्ञा कुबेर के द्वारा मिलने का जृंभक जाति के देवता उन्हें सिद्धार्थ राजकुल में ला रखते हैं ।

जिस रात्रि को श्रमण भगवन्त महावीरस्वामी ज्ञातकुल में संहरित हुए उस रात्रि से लेकर ज्ञातकुल हिरण्य

और सुवर्ण से बुद्धि को प्राप्त होने लगा । हिरण्य-चांदी या बिना घड़ा हुआ सुवर्ण, धन चार प्रकार का होता है, एक तो गिना जासके, दूसरा धारण किया जा सके अर्थात् तराजू से तोला जा सके, तीसरा मापा जा सके और चौथा परिच्छेद्य अर्थात् परीक्षा की जासके ऐसा । धान्य चौबीस प्रकार का जानना चाहियें, जिस के नाम निम्न प्रकार हैं-जौं, गेहूं, शाली, व्रीही, सट्टीय, कुद्दव, अणुवा, कंगु, रालय, तिल, मूंग, उड़द, अलसी, हरिमंथ, तिउडा, निष्फाव, सिलिंद, रायमासा, उच्छू, मसूर, तुबरी, कलथी, धन्नय और कलाया यह चौबीस प्रकार का धान्य समझना चाहिये । राज्य के सात अंग ये हैं-राष्ट्र, दूसरा बल-चतुरंगी सेना, तीसरा वाहन-खच्चर आदि वाहन, चौथा कोश-भंडार, पांचवां कोष्टागार-धान्य भर रखने के वखार, छट्ठा पुर-नगर और सातवां अन्तपुर-रानियों के रहने का स्थान । तथा जनपद-देशवासी लोग और यशोवाद-कीर्ति, इन सब वस्तुओं से वह ज्ञातकुल वृद्धि पाता था । विस्तार वाला गोकुल, सुवर्ण, रत्न, मणि, प्रवाल, मोति, दक्षिणावर्त शंखादि तथा प्रीति सत्कारादि से सिद्धार्थ राजकुल अत्यन्त बढ़ता गया ।

श्रमण भगवन्त महावीर प्रभु के मातापिता के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय पैदा हुआ कि जब से हमारा यह पुत्र कुक्षी में गर्भ तया उत्पन्न हुआ है तब से लेकर हम चांदी से, सुवर्ण से और धन धान्य से तथा पूर्वोक्त प्रीति सत्कारादि से अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होते हैं इसलिए जब हमारे इस बालक का जन्म होगा तब हम भी इस धनादिक की वृद्धि के अनुरूप गुणनिष्पन्न नाम रक्खेंगे । अर्थात् 'वर्धमान' नाम रक्खेंगे ।

For Private and Personal Use Only

प्रभु की मातृभक्ति और मोह का नाटक

एक दिन भगवन्त महावीर प्रभु ने गर्भ में यह विचार किया कि मेरे हलनचलन से माताजी को कष्ट न होना चाहिये। इस तरह माता की अनुकंपा–भक्ति से तथा दूसरे भी इस प्रकार माता की भक्ति करूं इस लिए माता की कुक्षी में स्वयं निश्चल अर्थात अंगोपांग हलन चलन किये बिना निष्कंप हो गये । यहां पर कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि क्या एकान्त में माता के गर्भ में निश्चल रह कर प्रभु मोह सुभट को जीतने का विचार करते हैं ? या परब्रह्म के लिए कोई अगोचर ध्यान करते हैं ? या कल्याण रस–स्वर्णसिद्धि की साधना करते हैं ? या कामदेव का नाश करने के लिए अपने रूप को उन्होंने लोप कर लिया है ? ऐसे श्रीवीर प्रभु आप को लक्ष्मी के लिए हों ।

माता की भक्ति से भगवान् के गर्भ में निश्चल रहे बाद त्रिशला क्षत्रियाणी के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय पैदा हुआ क्या मेरा वह गर्भ किसी देवाण्दिकने हरण कर लिया या मेरा गर्भ मर गया या च्युन हो गया, क्या मेरा गर्भ गल गया ? क्यों कि वह पहले तो हलताचलता था और अब तो बिल्कुल हलता नहीं है।

इस तरह के विचारों से कलुषित मनवाली तथा गर्भहरण के संकल्पविकल्पों से उत्पन्न पींड़ा द्वारा शोक समुद्र में डूबी हुई और हथेली पर मुख रख कर आर्तध्यान द्वारा भूमि पर दृष्टि लगाये हुए त्रिशला क्षत्रियाणी मन में विचारने लगी । यदि सचमुच ही मेरे गर्भ को नुकशान हुआ हो तो पुण्य रहित जीवों में मैं ही मुख्य हूं । अथवा चिन्तामणि रत्न भाग्यहीन मनुष्य के घर वृद्धि नहीं पाता, भूमि के भाग्य से मारवाड़ देश में कल्प–

वृक्ष नहीं ऊगता, त्यों पुण्य रहित प्यासे मनुष्य को अमृत की सामग्री प्राप्त नहीं हो सकती । अरे ! सदैव प्रतिकूल रहनेवाले दैव को भी धिक्कार है । हे वक्र दुर्दैव ! तूने यह क्या किया ? मेरे मनोरथरूपी वृक्ष को जड़ से ही उखाड़ फैंका? कलंक रहित मुझे नेत्रयुग्म दे कर छीन लिया ! इस पापी दैव ने निधि रत्न दे कर मुझ से छीन लिया ? इस दुर्दैव ने मुझे मेरू पर्वत के शिखर पर चढ़ा कर नीच` पटक दिया ! तथा इस निर्लज्जने भोजन का भाजन परोस कर वापिस खैंच लिया । हे विधाता ! मैंने भवान्तर में या भव में ऐसा क्या अपराध किया है ? जिस से तू ऐसा करते हुए उचित अनुचित का विचार नहीं करता ! अब मैं क्या करूं ! कहां जाउं ? किस से कहूं ! हां इस दुर्दैवने मुझे भस्म कर दी, मूर्च्छित कर दी । अब मुझे इस राज्य की क्या जरूरत है ? अब विषयजन्य कृत्रिम सुखों से मुझे क्या लाभ ? अब इन गगनस्पर्शीमहलों और दुकूल शय्या के सुखों में क्या रक्खा हैं ? हाथी, वृषभादि स्वप्नों से सूचित हुए पवित्र, तीन जगत के पूजनीक पुत्र के बिना अब मुझे किसी भी चीज की क्या जरूरत है ? इस असार संसार को धिक्कार है और दुःख से सने हुए इन विषय सुख के कलशों को भी धिक्कार है ! तथा सहत से लिप्त हुई खड़ग (तलवार) की धारा को चाटने के समान संसार के लाडों को भी धिक्कार है । ऋषियों ने जो धर्मशास्त्रों में कथन किया है वैसा कुछ भी पूर्व भव में मैंने दुष्कर्म किया होगा । पशु पक्षियों या मनुष्य के बालकों का उनकी माताओं से वियोग कराया होगा । अथवा मैंने अधर्म बुद्धिवाली ने छोटे-छोटे बछड़ों को उनकी माता से वियोग कराया होगा ! या उन्हें दूध पीने का अन्तराय किया या कराया

For Private and Personal Use Only

होगा ! या बच्चों सहित चूहों के बिल पानी से भर दिये होंगे ! क्या मैंने अण्डे और बच्चों सहित पक्षियों के घौंसले जमीन पर गिरा दिये होंगे ? या कोयल, तोता, मुरगे आदि के बच्चों को मैंने क्या वियोग कराया है ? अथवा क्या मैने बाल हत्या की है ? अथवा क्या मैने शौकन के बालकों पर दुष्ट विचार किया है ? या मैंने किसी बच्चों पर टुन मुन टोना किया-कराया है ? अथवा मैंने किसी के गर्भो को नष्ट या स्थंभन आदि कराया है ? या इसके सम्बन्ध में मैंने मंत्र या औषधि आदि कुछ कराया है ? अथवा क्या मैने भवान्तर में बहुत दफा शील खण्डन किया है ? क्यों कि ऐसा किये बिना प्राणियों को ऐसा दुःख उपस्थित नहीं होता । इस प्रकार चिन्तातुर हुई अतः कुमलाये हुये कमल के समान मुखवाली त्रिशला रानी को देखकर सखियों ने उसका कारण पूछा, तब वह त्रिशला क्षत्रियाणी आंखों में अश्रु भर कर निःश्वास सहित वचनों से कहने लगी-सखियो ! मैं मंद भाग्यवाली क्या कहूं ? मेरा तो जीवन ही चला गया ! सखियां बोली कि हे सखी ! आपके सभी अमंगल शान्त हों परन्तु आप यह बतलाओं कि आप के गर्भ को तो कुशल है न ? त्रिशला क्षत्रियाणी बोली-सखियो ! मेरे गर्भ को कुशल हो तो मेरे लिए अकुशल ही क्या है ? ऐसा कह कर त्रिशला मूर्च्छा खाकर जमीन पर गिर पड़ी । तुरन्त ही सखियों के शीतल उपचार करने पर त्रिशला को चैतन्य प्राप्त हुआ । फिर वह दैव को ओलंभा देतीं हुई रूदन करने लगीं । अथाग जलवाले रत्नाकर - समुद्र में छिद्रवाला घडा भर न सके तो उसमें समुद्र का क्या दोष है ? वसन्त ऋतु प्राप्त होने पर तमाम वृक्ष पल्लवित हो जाते हैं तथापि करीर को पत्ते नहीं आते तो इसमें वसन्त

ऋतु का क्या दोष है ? ऊँचे वृक्ष को फल यदि ठिंगना मनुष्य नहीं तोड़ सकता तो उसमें वृक्ष का क्या दोष है ? इसलिए हे प्रभो ! यदि मैं अपने इच्छित को नहीं कर सकती तो इसमें आपका क्या दोष है ? यह तो मेरे हीं कर्म का दोष है; क्योंकि सूर्य के प्रकाश में भी यदि उल्लू नहीं देख सकता तो इस में सूर्य का क्या दोष है ? इसलिए अब मुझे मरण का ही शरण है, निष्फल जीवन जीने से क्या लाभ ? इस प्रकार त्रिशला के विलाप को सुनकर तमाम सखियां और सकल परिवार रूदन करने लगा । अरे यह क्या हो गया ! निष्कारण ही दैव दुश्मन बन गया ! हे कुलदेवियों ! आप इस समय कहां चली गई!

आप भी उदास होकर क्यों बैठी हैं ? ऐसे बोलती हुई कुल की विचक्षण वृद्धा स्त्रियां, शान्ति, मंगल, उपचार तथा मानतायें मानने लगी । ज्योतिषियों को बुलाकर पूछने लगीं, तथा अति ऊंचे स्वर से कोई बोल न सके ऐसे इसारे करने लगीं । उत्तम बुद्धिवाला राजा सिद्धार्थ भी लोगों सहित शोकातुर हो गया । एवं समस्त मंत्री लोग भी कर्तव्यविमूढ बन गये ।

उस समय सिद्धार्थ राजा का राजभवन कैसा हो गया था सो सूत्रकार स्वयं कथन करते हैं । सिद्धार्थ राजा का भवन मृदंग, तंत्री, वीणा और नाटक के पात्रों से रहित हो गया था । विमनस्क हो गया था । श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु गर्भ में रहे हुये पूर्वोक्त वृत्तान्त अवधिज्ञान से जान कर विचारने लगे कि क्या किया जाय ? मोह की कितनी प्रबल गति है ? दुष् धातु को गुण करने के समान मेरा गुण किया हुआ भी दोष हीं बन गया। मैंने तो माता के सुख के लिए ऐसा किया था परन्तु यह उलटा उस के खेद के लिए हो गया । यह

For Private and Personal Use Only

भावी कलिकाल की सूचना करनेवाला लक्षण है । जिस तरह नारियल के पानी में डाला हुआ कपूर मृत्यु के लिए होता है वैसे ही इस पंचमकाल में गुण भी दोष को करनेवाला होगा । इस प्रकार श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु ने माता को उत्पन्न हुआ अपने सम्बन्ध में इच्छित, प्रार्थित और मन में रहा हुआ संकल्प अवधिज्ञान से जान कर अपने आप को एक बाजू से हिलाया । तब गर्भ की कुशलता जान कर त्रिशला क्षत्रियाणी हर्षित तथा संतुष्ट हो कर बोल उठी–निश्चय ही मेरा गर्भ हरन नहीं किया गया, मरा नहीं, चलायमान् नहीं हुआ और गला भी नहीं हैं, परन्तु वह पहले हलताचलता नहीं था, अब हलनेचलने लगा है । यों कह कर हर्षित हुई, प्रसन्न हुई, यावत् हर्ष से पूर्ण हृदयवाली त्रिशला क्षत्रियाणी विलास करने लगी । गर्भ की कुशलता मालूम होने से त्रिशला क्षत्रियाणी हर्ष से उल्लसित नेत्र वाली, स्मेर कपोलवाली, प्रफुल्लित मुखकमलवाली तथा रोमांच कंचुकवाली होकर कहने लगी–मेरे गर्भ को कल्याण है । धिक्कार है ! मैंने अति मोह युक्त मति से कुविकल्प किये ! अभी मेरे भाग्य विद्यमान हैं, मैं तीन भुवन में मान्य हूं और मेरा जीवन धन्य एवं प्रशंसनीय है । मेरा जन्म कृतार्थ है । श्री जिनेश्वर देव की मुझ पर पूर्ण कृपा है, तथा गोत्रदेवियोंने भी मुझ पर कृपा की है और मैंने जो श्री जिनधर्मरूप कल्पवृक्ष की आज तक आराधना की है वह आज सफल हुई है । इस प्रकार अत्यन्त हर्ष युक्त चित्तवाली त्रिशला देवी को देखकर वृद्ध स्त्रियों के मुखकमल से जय जय नन्दा इत्यादि आशीष के शब्द निकलने लगे, कुलांगनाएं हर्षपूर्वक मनोहर धवल मंगल गाने लगी, ध्वज, पताकायें उड़ने लगीं, मोतियों के सवस्तिक पूरे जाने लगे, समस्त

राजकुल आनन्दमय हो गया, वाद्य और गीतों एवं नाटक से उस समय राजकुल देवलोक के समान शोभायमान हो गया । करोड़ों ही धन के वधामणे सिद्धार्थ राजा ने ग्रहण किये और करोड़ों ही गुणा धन उन्हें वापिस दिया । इस प्रकार सिद्धार्थ राजा अत्यन्त हर्षयुक्त हो कल्पवृक्ष के समान शोभने लगा ।

श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु गर्भ में हीं रहे हुए साढ़े छह महिने बीतने पर इस प्रकार का अभिग्रह करते हैं । जब तक मेरे माता-पिता जींवित रहेंगे तब तक मैं दीक्षा ग्रहण न करूंगा । गर्भ में होते हुए जब माता का मुझ पर इतना स्नेह है तब फिर जब मेरा जन्म होगा तब तो न जाने कैसा स्नेह होगा ? यह समझ कर प्रभु ने पूर्वोक्त अभिग्रह धारण किया और दूसरों को भी माता-पिता की भक्ति करने का मार्ग दिखलाया । कहा भी है कि पशु जब तक माता का दूध पीते हैं तब तक ही माता पर स्नेह रखते हैं, अधम मनुष्य जब तक स्त्री मिले तब तक माता पर मातापन का स्नेह रखते हैं । मध्यम मनुष्य जब तक माता घर का कामकाज करती है तब तक माता पर मातातया स्नेह रखते हैं, परन्तु उत्तम पुरूष जीवन पर्यन्त माता को तीर्थ समान समझ कर उस पर स्नेह रखते हैं ।

अब त्रिशला क्षत्रियाणीने स्नान किया, पूजन किया तथा कौतुक मंगल किया और सर्व प्रकार के आभूषणों से वह विभूषित हुई । उस गर्भ को वह त्रिशला क्षत्रियाणी न अति ठंडे, न अति गर्म, न अति तीखे, न अति कडवे, न अति कषायले, न अति खट्टे, न अति मीठे, न अति चिकने, न अति रूखे, न अति आर्द्र,

For Private and Personal Use Only

न अति सूके, सर्व ऋतु में सुखकारी इस प्रकार के भोजन, आच्छादन, गन्ध और पुष्पमाला आदि से पोषण करने लगीं । क्योंकि गर्भ के लिये अति शीतादि पदार्थ हानिकारक होते हैं । उन में कितने एक वायु करनेवाले, कितने एक पित्त करने वाले और कितने एक कफ करने वाले होते हैं । वाग्भट्ट नामक वैद्यक ग्रन्थ में भी कहा है कि–वायुवाले पदार्थ खाने से गर्भ कुबड़ा, अन्धा, जड़ तथा वामनरूप होता है । पित्तवाले पदार्थ भक्षण करने से गर्भ स्खलित, पीला तथा चित्रीवाला होता है । कफवाले पदार्थ भक्षण करने से पाण्डू रोगवाला होता है । अति क्षारवाला भोजन नेत्र को हणता है, अति ठंडा भोजन पवन को कोषायमान करता है । अति उष्ण बल को हरता है, अति कामविहार जीवित को हरता है । मैथुन, यान, वाहन, मार्गगमन, स्खलना पाना, गिर पड़ना, पीड़ा का होना, अति दौड़ना, किसी के साथ टकराना, विषम स्थान पर सोना, विषम जगह पर बैठना, उपवास करना, वेग का विघात होना, रूखा तीखा और कड़वा भोजन करना, अति राग, अति शोक करना, अति खारी वस्तुओं का सेवन करना, अतिसार, चमन, जुलाब, हुचकी लेना और अजीर्ण आदि से गर्भ अपने बन्धन से मुक्त हो जाता है । किस ऋतु में कौन सी वस्तु खाने में गुणकारी होती है सो बतलाते हैं– वर्षा ऋतु में नमक खाना अमृत के समान है । शरद ऋतु में पानी अमृत तुल्य, हेमन्त में गोदुध अमृत तुल्य, शिशिर में खट्टा भोजन अमृत तुल्य है । बसन्त में घी खाना अमृत तुल्य है । तथा अन्तिम ऋतु में गुड़ का भोजन अमृत समान है । अब त्रिशला क्षत्रियाणी रोग, शोक, मोह, भय और परिश्रमादि रहित सुख से रहती

है । क्योंकि रोगादि गर्भ को हानिकारक होते हैं । सुश्रुत नामक वैद्यक ग्रन्थ में कहा है कि– यदि गर्भवती स्त्री दिन में निद्रा लेवे तो गर्भ भी निद्रालु या आलसी होता है, अंजन आजने से गर्भ अंधा होता है, रोने से गर्भ विकृत आंखों वाला होता है, स्नान तथा लेपन से दुःशील होता है, तेल मर्दन से कुष्ट रोगी होता है, नाखून काटने से खराब नाखूनवाला होता है । दौड़ने से चंचल स्वभावी, हसने से काले दांतोंवाला, काले होठवाला, काले तालुवेवाला और काली जीभवाला होता है । बहुत बोलने बकवाद से करनेवाला और अति शब्द सुनने से बहिरा होता है । अलेखन से स्खलित हो और पंखे आदि का अति पवन सेवन करने से उन्मत्त होता है, पूर्वोक्त प्रकार से त्रिशला देवी को कुल की वृद्ध स्त्रियां शिक्षा देती हैं । तथा कहती हैं कि–हे देवी ! तूं धीरे धीरे चल, धीरे धीरे बोल, क्रोध को त्याग दे, पथ्य वस्तुओं का सेवन कर, नाड़ा ढीला बांध, खिलखिला कर न हंस, खुले आकाश में न बैठ, अतिशय ऊँचे और नीचे न जा । इस प्रकार गर्भ से आलस्यवाली त्रिशला क्षत्रियाणी को शिक्षा देती हैं । त्रिशला क्षत्रियाणी भी गर्भ को हित करने वाली वस्तुओं का सेवन करती है । आरोग्यवर्धक पथ्य भोजन, सो भी समय पर ही करती है । कोमल शय्या और कोमल आसन सेवन करती है । सुखाकारी मन के अनुकूल विहार भूमि अर्थात् गर्भ हितकर आचरणाओं से गर्भ का पोषण करती है ।

गर्भ के प्रभाव से उत्पन्न हुआ उत्तम दोहला भी जिस का पूर्ण हो गया है । त्रिशला क्षत्रियाणी के मन में विचार पैदा हुआ कि मैं सर्व प्राणीयों की हिंसा बन्द कराने का पटह बजाऊं, दान दूं, गुरूजनों की अच्छी

For Private and Personal Use Only

तरह पूजा करूं, तीर्थंकरों की पूजा रचाऊं, विशेषतया संघ का वात्सल्य करूं, सिंहासन पर बैठ कर उत्तम छत्र मस्तक पर धारण कराऊं, उत्तम सफेद चामर अपने आसपास ढुलाऊं, सब पर आज्ञा चलाऊं और राजा लोग आकर मेरे पादपीठ को नमस्कार करें, हाथी के मस्तक पर बैठ कर जब सामने पताकायें फरहा रही हों, वाजिंत्रों के नाद से दिशायें गूंज रही हों और आगे जनसमुदाय जय-जय शब्द कर रहे हों तब मैं हर्षित हो कर उद्यान की पाप रहित क्रीडा करूं । सिद्धार्थ राजा ने त्रिशला क्षत्रियाणी के पूर्वोक्त समस्त मनोरथ पूर्ण किये । उस के किसी भी दोहले की अवगणना नहीं की । अब ज्यों गर्भ को बाधा न पहुंचे ज्यों स्तंभ आदि का अवलम्बन लेती हुई, सुख से निद्रा करती हुई, उठती हुई, सुखासन पर बैठती हुई, तथा निद्रा बिना भी शय्या पर लेटती हुई, जमीन पर विहार करती हुई सुखपूर्वक गर्भ को धारण करती है ।

प्रभु महावीर का जन्म ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवन्त श्री महावीर के गर्भ में आये तब ग्रीष्म ऋतु का पहला महीना, दूसरा पक्ष-चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी के दिन नव मास पूर्ण होने पर तथा सातवीं आधिरात होने पर अर्थात् नव मास और साढे सात दिन संपूर्ण होने पर त्रिशला माता ने पुत्र को जन्म दिया । इस प्रकार सब तीर्थंकरों की गर्भवास स्थिति का समान काल नहीं है । ऋषभदेव प्रभु नव मास और चार दिन गर्भ में रहे, अजितनाथ प्रभु आठ मास पच्चीस दिन गर्भ में रहे, संभवनाथ प्रभु नव मास और छह दिन गर्भ में रहे,

अभिनन्दन स्वामी आठ महीने और अट्ठाईस दिन गर्भ में रहे, सुमतिनाथ प्रभु नव मास और छह दिन गर्भ में रहे, पद्मप्रभ स्वामी नव मास और छह दिन गर्भ में रहे, सुपार्श्वनाथ प्रभु नव मास और उन्तीस दिन गर्भ में रहे, चंद्रप्रभ नव मास और सात दिन गर्भ में रहे, सुविधिनाथ प्रभु नव मास और उन्तीस दिन गर्भ में रहे, चंद्रप्रभ नव मास और सात दिन गर्भ में रहे, श्रेयांसनाथ प्रभु नव महीने और छह दिन गर्भ में रहे, वासुपूज्य स्वामी आठ मास और बीस दिन गर्भ में रहे, विमलनाथ प्रभु आठ मास और इक्कीस दिन गर्भ में रहे, अनन्तनाथ प्रभु नव महीने और छह दिन गर्भ में रहे, धर्मनाथ प्रभु आठ महीने और छब्बीस दिन गर्भ में रहे, शान्तिनाथ प्रभु नव मास और छह दिन गर्भ में रहे, कुंथुनाथ प्रभु नव महीने पांच दिन गर्भ में रहे, अरनाथ प्रभु नव महीने और आठ दिन गर्भ में रहे, मल्लीनाथ प्रभु नव महीने और सात दिन गर्भ में रहे, मुनिसुव्रत स्वामी नव मास और आठ दिन गर्भ में रहे, नमीनाथ प्रभु नव मास और आठ दिन गर्भ में रहे, नेमिनाथ प्रभु नव मास और आठ दिन गर्भ में रहे, पार्श्वनाथ प्रभु नव मास और छह दिन गर्भ मे रहे और श्री महावीर प्रभु नव मास साढ़े सात दिन गर्भ में रहे ।

उस समय सब ग्रहों के उच्च स्थान में आने पर,- मेषादि राशि में रहे हुये सूर्यादिक ऊँचे समझना, उस में भी दशादि अंशों तक परम उच्च समझना चाहिये । उप का फल सुखी, भोगी, धनवान, स्वामी, मंडलाधिप, राजा और चक्रवर्ती अनुक्रम से समझना चाहिये । उन में तीन ग्रह उच्च हों तो राजा होता है, पांच उच्च हों

For Private and Personal Use Only

तो अर्ध चक्री होवे, छह उच्च हों तो चक्रवर्ती और सात ग्रह उच्च हों तो वह तीर्थंकर होता है ।

इस प्रकार उच्च चंद्रमा का योग आने पर, दिशाओं के सौम्य होने पर, अन्धकारादि से रहित होने पर, क्यों कि प्रभु के जन्म समय सर्वत्र उद्योत होता है । तथा रज, दिग्दाह आदि से रहित होने पर, तथा काक, उल्लू, दुर्गा आदि के जयकारक शकुन होने पर, तथा दक्षिणावर्तवाले और अनुकूल सुगन्धित शीतल सुखावह पृथ्वी को स्पर्श करते हुए, मन्द पवन के चलते हुए तथा जब पृथ्वी पर चारों और खेती लहरा रही थी और देश में सर्वत्र सुकाल था अतः सुकाल होने से देश के लोग खुशी में मग्न हो कर जब वसन्तोत्सवादि की क्रीड़ा में लग रहे थे तब अपर रात्रि के समय उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग आने पर बाधा रहित नवमास साडासात दिनपूर्ण होने पर त्रिशला क्षत्रियाणी ने पीड़ा रहित पुत्र को जन्म दिया ।

चौथा व्याख्यान समाप्त हुआ ।

पांचवां व्याख्यान ।

महावीर भगवान् का जन्ममहोत्सव ।

जिस समय भगवान महावीर का जन्म हुआ, उस समय इस पवित्र आत्मा के प्रादुर्भाव से केवल क्षत्रीयकुण्डपर ही नहीं, क्षणभर के लिए समस्त संसार लोकोत्तर प्रकाश से प्रकाशित हो गया था और आकाश मण्डल में दुंदुभी बजने लगी थी । खास विशेषता तो यह थी कि सदा दुःख के भोक्ता नरक के जीवों को भी क्षणमात्र आनन्द प्राप्त हुवा तथा समस्त पृथ्वी उल्लसित हुई और सर्वत्र आनन्द आनन्द दृष्टिगोचर हो रहा था ।

भगवान का जन्म होते हीं सब से पहले छप्पन दिक्कुमारियों के आसन कम्पायमान हुए, अवधिज्ञान से प्रभु का जन्म अवसर जान कर दिक्कुमारिया हर्षित होती हुई यहां पर आकर क्रमशः इस प्रकार भक्ति करने लगीं :-

1. भोगंकरा	2. भोगवती	3. सुभोगा	4. भोगमालिनी
5. सुवत्सा	6. वत्समित्रा	7. पुष्पमाला	8. अनिन्दिता

इन आठ दिक्कुमारियों ने अधोलोक से आकर प्रभु को और प्रभु की माता को नमस्कार कर संवर्तक वायु (गोल पवन) द्वारा योजनप्रमाण पृथवीं को शुद्ध और सुगन्धित बना कर एक सूतिकागृहं (जापा-घर) की रचना की ।

For Private and Personal Use Only

1. मेघंकरा	2. मेघवर्ती	3. सुमेघा	4. मेघमालिनी
5. तोयधारा	6. विचित्रा	7. वारिषेणा	8. बलाहका

इन आठ दिक्कुमारियों ने ऊर्ध्वलोक से आकर वन्दन किया, तत्पश्चात् पुष्पवृष्टि की ।

1. नंदोत्तरा	2. नन्दा	3. आनन्दा	4. नन्दवर्धना
5. विजया	6. वैजयन्ती	7. जयन्ती	8. अपराजिता

ये आठ दिक्कुमारियां पूर्व दिशा के रूचक पर्वत से आकर वन्दन विधि कर मुख देखने के लिए सन्मुख शीशा (दर्पण) लेकर खड़ी रहीं ।

1. समाहारा	2. सुप्रदत्ता	3. सुप्रबुद्धा	4. यशोधरा
5. लक्ष्मीवती	6. शेषवती	7. चित्रगुप्ता	8. वसुन्धरा

ये आठ दिक्कुमारीयां दक्षिण रूचक पर्वत से आकर हाथ में कलश धारण कर भगवंत और भगवंत की मातेश्वरी को स्नान कराती हैं ।

1. इलादेवी	2. सुरादेवी	3. पृथ्वी	4. पद्मावती
5. एकनासा	6. नवमिका	7. भद्रा	8. सीता

ये आठ दिक्कुमारियां पश्चिम दिशा के रूचक पर्वत से आकर पवन डालने के लिए हाथों में पंखे लेकर

सामने खड़ी रहीं ।

1. अलम्बुसा	2. मितकेशी	3. पुण्डरीका	4. वारुणी
5. हासा	6. सर्वप्रभा	7. श्रीः	8. ह्रीः

इन आठ दिक्कुमारियां उत्तर दिशा के रूचक पर्वत से आकर चामर ढ़ालती हैं ।

1. चित्रा	2. चित्रकनका	3. शतेरा	4. वसुदामिनी

ये चार दिक्कुमारियां हाथों में दीपक धारण कर भगवन्त के आगे खड़ी रहीं ।

1. रूपा	2. रूपासिका	3. सुरूपा	4. रूपकावती

ये चार दिक्कुमारीयां रूचक द्वीप के मध्यम दिशा से आकर चार अंगुल बाकी रख शेष नाल को छेद कर पास में खड्डा खोद पृथ्वी के अन्दर रखती हैं और ऊपर रत्नमय चबुतरा बना कर उसके ऊपर दूबघास बोती हैं ।

तत्पश्चात् जन्मगृह से पूर्व, दक्षिण और उत्तर दिशा में तीन केले के घर बनाती हैं । उन में से दक्षिण दिशा के केले के घर में भगवान् और भगवान् की माता को ले जाती हैं और वहां उन्हें तैलादि का मर्दन करती हैं । फिर पूर्व तरफ से घर में स्नान करा कर वस्त्र तथा आभूषण पहनाती हैं । उत्तर दिशा के घर में दो अरणी काष्ठ घिस कर अग्नि पैदा करती हैं । चंदन का होम कर के उन्होंने दोनों को रक्षा पोटली बांधी । फिर मणि के दो गोलों को उछालती हुई ''तुम पर्वत के समान आयुष्यवाले बने रहो !'' यों कह कर प्रभु और उनकी

For Private and Personal Use Only

माता को जन्मस्थान में रख कर वे अपने अपने स्थान की ओर चली जाती हैं । उन दिक्कुमारियों के प्रत्येक के साथ चार चार हजार सामानिक देव होते हैं, चार महत्तरायें होती हैं, सोलह हजार अंगरक्षक होते हैं, सात सेनायें और उनके अधिपति होते है, एवं अन्य भी महर्धिक देवता होते हैं और आभियौगिक (नौकर) देवताओं द्वारा बनाये हुए एक योजनप्रमाण विमान में बैठ कर वहां आती हैं । इस प्रकार दिक्कुमारियों से किया हुआ जन्मोत्सव समझना चाहिए ।

उस समय पर्वत के समान निश्चल इंद्र का आसन चलायमान हुआ । इस से अवधिज्ञान द्वारा इंद्र ने अन्तिम तीर्थंकर प्रभु का जन्म हुआ जाना । वज्रमय एक योजन प्रमाण सुघोषा नामक घंटा इंद्र ने हर नैगमेषी देव ने उच्च स्वर से इंद्र की आज्ञा सुनाई, इस से हर्षित होकर देव चलने की तैयारी करने लगे । पालक नामा देव के बनाये हुए एक लाख योजन प्रमाणवाले विमान में इंद्र सवार हो गया । फिर इंद्र के आसन के सामने इंद्र की अग्रमहिषियों के आठ भद्रासन बिछाये गये । इंद्र के बाई ओर चौरासी हजार सामानिक देवों के भद्रासन थे । दक्षिण तरफ बारह हजार अभ्यन्तर परिषदा के देवों के चौदह हजार भद्रासन थे । इसी तरह सोलह हजार बाह्य परिषदा के भद्रासन थे । पिछले भाग में सात सेनापतियों के उतने ही भद्रासन, चारों और प्रत्येक दिशा में चौरासी हजार आत्मरक्षक देवों के थे। इस प्रकार अन्य भी बहुत से देव देवियों से वेष्टित और सिंहासन पर

बैठ कर, गीत गान होते हुए इंद्र वहां से चल पडा । पालक विमान के सिवा अपने-अपने विमानों द्वारा और भी बहुत से देव चल पड़े । उन मे कितनेक तो इंद्र की आज्ञा से, कितनेक मित्रों की प्रेरणा से, कितनेक अपनी पत्नी की प्रेरणा से, कितनेक तमाशा देखने की भावना से, कई एक आश्चर्य देखने के लिए, कई एक आत्मीय भाव से और कई एक भक्तिभाव से चल दिये । उस समय अनेक प्रकार के बाजों के शब्द से, घंटों के नादों से, देवताओं के कोलाहल से सारा ब्रह्माण्ड गुंज उठा । सिंहाकृतिवाले विमान पर बैठा हुआ देव हाथी पर बैठे हुए देव को कहता है कि भाई ! अपने हाथी को दूर बचा ले वरना दुर्धर मेरा केशरीसिंह इसे मार डालेगा । इसी तरह भैंसे पर बैठा घोड़े सवार को, गरूड़ पर बैठा हुआ सर्प वाले को और चींते पर बैठा हुआ बकरे वाले को सादर कहता है । उस समय करोड़ों देव विमानों से विशाल आकाश भी संकीर्णता हो गया । कितनेएक देव उत्सुकता से मित्र को छोड़ कर आगे बढ़ रहे थे, कितनेक कहते थे कि भाई ! जरा ठहरो हम भी आते हैं, कइएक कहते थे कि भाई ! पर्व के दिन संकीर्ण ही होते हैं इस लिए चुपचाप चले आओ । इस प्रकार आकाश मार्ग से गमन करते देवों के सिर पर चंद्रमा की किरणें पड़ने से वे वृद्ध जैसे शोभते थे । देवों के मस्तक पर रहे तारे घड़ों से लगते थे, गले में रत्नों के कंठे जैसे शोभते थे और शरीर पर पसीने के बिन्दु सरीखे शोभते थे । इस तरह इंद्र नन्दीश्वर द्वीप में विमान को संक्षेप कर वहां आया । भगवंत तथा उन की माता को तीन प्रदक्षिणा दे कर नमस्कार करता है और कहता है कि - हे रत्नकुक्षि ! जगत में दीपिका समान माता ! आप को नमस्कार

For Private and Personal Use Only

हो । मैं देवों का स्वामी इंद्र हूं, स्वर्ग से यहां आया हूं और प्रभु का जन्मोत्सव करूंगा । इस लिए माता आप डरना नहीं । यों कह कर इंद्र ने अवस्वापिनी निद्रा देदी और प्रभु का एक प्रतिबिम्ब बना कर माता के पास रख दिया । भगवन्त को अपने हस्तसंपुट में ले कर विशेष लाभ प्राप्त करने की भावना से इंद्र ने अपने पांच रूप बनाये । एक रूप से प्रभु को ग्रहण किया, दो रूपों से प्रभु के दो तरफ चामर बींजने लगा, एक रूप से छत्र धारण किया और एक रूप से वज्र धारण किय।

अब देवों में आगे चलनेवाले पिछलों को धन्य मानते हैं और प्रभु का दर्शन करने के लिए अपने नेत्र पिछली तरफ चाहते हैं । इस प्रकार इंद्र मेरूपर्वत पर जाकर उसके शिखर के दक्षिण भाग में रहे हुए पाण्डुक वन में पाण्डुशिला पर प्रभु को गोद में लेकर पूर्वदिशा तरफ मुख कर के बैठ जाता है । उस समय तमाम इंद्र प्रभु के चरणों मे उपस्थित हो जाते हैं । दश वैमानिक, बीस भुवनपति, बत्तीस व्यन्तर और दो ज्योतिष्क एवं चौंसठ इंद्र उपस्थित हो गये । सुवर्ण के, चांदी के, रत्नों के, सौने चांदी के, सुवर्णरत्नों के, चांदी और रत्नों के, सोने चांदी और रत्नों के तथा मिट्टी के ऐसे आठ जाति के प्रत्येक के एक हजार और आठ एक योजन प्रमाण मुखवाले कलशे (पच्चीस योजन ऊंचे, बारह योजन चौड़े और एक योजन नालवाले ये, सब इंद्रों के एक करोड़ और साठ लाख कलशे होते हैं) तथा इसी प्रकार पुष्प चंगेरी, भृंगार, दर्पण, रत्नकरण्डक, सुप्रतिष्ठक, थालादि पूजा के उपकरण प्रत्येक कलशो के समान एक हजार आठ प्रमाणवाले समझने चाहिए । तथा मागध आदि तीर्थों की मिट्टी, गंगादि का जल, पद्मसरोवरादि

का पानी तथा कमल, क्षुल्लहिमवन्त, वर्षधर, वैताढय, विजय तथा वक्षस्कारादि पर्वतों से सरसों के पुष्प, सुगंधी पदार्थ आदि सर्व प्रकार की औषधियों को अच्युतेंद्र मंगवाता है । क्षीरसमुद्र से जल भरे घड़े छाती से लगाये हुए आते समय देवता ऐसे शोभते थे मानो संसारसमुद्र को पार करने के लिए ही घड़े छाती से लगाये हों । भावरूप वृक्ष को सींच कर उन्होंने अपनी आत्मा का मैल धो लिया ।

उस समय इंद्र के संशय को जानकर वीरप्रभु ने दाहिने अंगूठे से चारों ओर से मेरूपर्वत को कंपायमान किया । जिससे पृथ्वी धूजने लगी, शिखर गिरने लगे और समुद्र भी क्षोभायमान हो गया । ब्रह्माण्ड को फोड़ डालें ऐसे शब्द होने पर क्रोधित होकर इंद्र ने अवधि ज्ञान से जानकर प्रभु से क्षमा मांगी । असंख्य तीर्थंकरों में से मुझे आज तक किसी ने भी अपने पैर से स्पर्श नहीं किया किन्तु प्रभु वीर ने स्पर्श किया इस कारण मानो हर्ष के मारे मेरू पर्वत नाचने लगा । उसने विचार किया कि–इस स्नात्रजल के अभिषेक से झरते हुए समस्त झरने रूप मैंने हार पहने हैं तथा जिनेश्वर रूपी मुकुट कर मैं आज सब पर्वतों का राजा बना हूं । अब स्नात्र उत्सव के लिए इंद्र ने सब को आदेश दिया–प्रथम अच्युतेंद्र ने प्रभु का अभिषेक कराया । फिर अनुक्रम से बडे से छोटों ने और अन्त में सूर्य और चंद्र ने अभिषेक कराया । वहां पर कवि घटना का वर्णन करता है कि स्नात्र महोत्सव के समय अन्तिम तीर्थंकर के मस्तक पर श्वेत छत्र के समान शोभता हुआ, मुख पर चंद्रकिरणों के समूह समान शोभता हुआ, कंठ में हार के समान शोभता हुआ, समस्त शरीर पर चीनीचोले के समान शोभता हुआ इंद्रो

द्वारा कलशों में से नीचे गिरता हुआ क्षीर समुद्र का जल तुम्हारी लक्ष्मी के लिए हो (तुम्हारे कल्याण के लिए हो) ।

फिर इंद्र ने चार बैलों का रूप धारण किया और उनके आठ शुढड्डों से दूध की धारा द्वारा वह प्रभु का अभिषेक करने लगा । सचमुच ही देव बड़े चतुर होते है क्योंकि उन्होंने स्नान तो प्रभु को कराया और निर्मल अपने आपको कर लिया । देवों ने मंगल दीपक तथा आरती करके नृत्य, गीता और वाद्य आदि से विविध प्रकार से महोत्सव किया । इंद्र ने गंध कषाय नामक दिव्य वस्त्र से प्रभु के अंग को रूखा कर चंदनादि से विलेपन कर पुष्पों से पूजन किया । फिर प्रभु के सन्मुख रत्नों के पट्टे पर चांदी के चावलों से इंद्र ने दर्पण, वर्धमान, कलश, मत्स्ययुगल, श्रीवत्स, स्वस्तिक, नन्दावर्त तथा सिंहासन इन आठ मंगलो को आलेखित कर प्रभु की स्तुति की । तत्पश्चात् प्रभु को उनकी माता के पास जाकर रक्खा और प्रभु का जो प्रतिबिंब था उसे और अवस्वापिनी निद्रा को वापिस ले लिया । फिर इंद्र ने वहां एक तकियां, कुण्डल और रेशमी वस्त्र की जोड़ी रख्खी । चंद्रवे में श्रीदाम, रत्नदाम और सुवर्ण की गैंद रक्खी । बत्तीस करोड़ सौनैयों, रूपयों और रत्नों की वृष्टि करा कर इंद्र ने आभियोगिक देवों से घोषणा करा दी–प्रभु या प्रभु की माता की तरफ जो कोई मनुष्य अशुभ विचार करेगा उस के मस्तक के अर्जुन वृक्ष की मंजरी के समान सात टुकडे हो जायेंगे । अब वह प्रभु के अंगुठे में अमृत स्थापन कर तथा नन्दीश्वर द्वीप में अट्ठाई महोत्सव कर सब देवों सहित अपने स्थान पर चला गया । इस प्रकार देवताओं द्वारा किया हुआ प्रभु महावीर का जन्मोत्सव समझना चाहिए ।

अब प्रातःकाल में प्रियवंदा नामा दासी ने जल्दी राजा के पास जाकर पुत्रजन्म की बधाई दी । उस बधाई को सुन कर सिद्धार्थ राजा अत्यन्त हर्षित हुआ । उस हर्ष के कारण वाणी भी गद्गद् हो गई और शरीर पर रोमांच हो गया । राजा ने अपना मुकुट रख कर शरीर के तमाम आभूषण प्रियंवदा को दे दिये और हाथ से उसका मस्तक धोकर उस दिन से उसका दासीपन दूर कर दिया ।

जिस रात्रि में श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु ने जन्म लिया उस रात्रि का कुबेर की आज्ञा माननेवाले बहुत से तिर्यग्जृंभक देवों के सिद्धार्थ राजा के घर में सुवर्ण, चांदी, हीरों तथा वस्त्रों एवं आभूषणों की, पत्रों, पुष्पों तथा फलों की, शाली आदि के बीजों की, पुष्पमालाओं की, सुगन्ध की, वासक्षेप की, हिंगलादि वर्ण की तथा द्रव्य की वृष्टि की ।

प्रभातकाल के समय सिद्धार्थ राजाने नगर के आरक्षकों को बुलवाया और उनको आज्ञा दी कि–हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही इस क्षत्रियकुण्ड नाम के नगर में जितने जेलखाने हैं उन सब को साफ करो ! अर्थात् उनमें रहने वाले तमाम कैदियों को छोड़ दो ! कहा भी है कि–युवराज के अभिषेक समय, शत्रु के राज्य का नाश करते समय तथा पुत्र जन्मोत्सव के समय कैदियों को बन्धन मुक्त करना चाहिये । तथा नाप कर देनेवाली और तोल कर देनेवाली वस्तुओं मे माप (प्रमाण) में वृद्धि करा दो । ऐसा कराकर इस क्षत्रियकुण्डगाम नगर को अन्दर और बाहर से अत्यन्त शोभायुक्त कराओ । सुगन्धि जल का छिडकाव कराओ, कूड़ाकचरा सब दूर करो, गोबर

For Private and Personal Use Only

आदि से लिपवाओ, तीन कौनेवाले स्थान, तीन मार्गों के मिलापस्थान, चार मार्गों के मिलापस्थान, देवालयादि स्थान, राजमार्गों, साधारण मार्गों को जलसिंचन कर और साफ कर शोभायुक्त करो । मार्ग के मध्य भागों, दुकानों के मार्गों अर्थात् बाजारों में मंच बन्धा दो कि जहां पर बैठ कर लोग महोत्सव देख सकें । इत्यादि करके शहर को शोभायमान करो । अनेक प्रकार की रंगबिरंगी सिंहादि के चित्रोंवाली ध्वजायें, तथा पताकायें लगा दो । दीवारों पर सफेदी कराओ, तथा गोशीर्ष चंदन, रसयुक्त रक्त चंदन, जगह-जगह के दीवारों पर थापे लगवाओ, घरों में चोकड़ियों पर चंदनकलश स्थापन कराओ और ऐसा करा कर नगर को सजा दो । मकानों के दरवाजों पर पुष्पमालाओं के समूह लटका कर उन्हें शोभा युक्त करो, जमीन पर पंचवर्ण के सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि कराओ, जलते हुए कृष्णागरू, श्रेष्ठ कुंदरुक्क, तुरुष्क आदि विविध जाति के धूप की सुगन्ध से सुगन्धित करो, सुगन्धवाले चूर्णों से मनोहर करो । यह सब कुछ कराकर नाटक करनेवाले, नाचनेवालों, रस्सों पर खेल करनेवालों, मुट्ठी से युद्ध करने वाले मल्लों, मनुष्यों को हसानेवाले विदूषकों मुखविकार की चेष्टा से लोगों को खुश करनेवालों, सुन्दर सरस कथा करनेवालों, बांस पर चढ़कर खेल करनेवालों, हाथ में तसवीर रखकर भिक्षा मांगनेवाले गौरी पुत्रों, तूण नामक वाद्य बजानेवालों, वीणा बजानेवालों और तालियां बजाकर कथा करनेवालों से इस क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगर को स्वयं शोभायुक्त करो एवं दूसरों से कराओ ! ऐसा कराकर हजारों ही गाड़ियों के जुबों तथा मूसलों का एक जगह ढेर लगादो कि जिससे महोत्सव के अंदर कोई मनुष्य

हल तथा गाड़ी न चला सके । इत्यादि कर हमारी आज्ञा पालन करो अर्थात् पूर्वोक्त काम कर, वापिस आकर मुझे कहो कि हमने वैसा ही सब कुछ कर दिया है ।

इस प्रकार सिद्धार्थ राजा द्वारा आदेश पाकर वे कौटुम्बिक पुरूष हर्ष और संतोष को प्राप्त हो गये, हर्ष से पूर्ण हृदयवाले दोनों हाथों से अंजली कर सिद्धार्थ राजा की आज्ञा को विनय से सुनकर तुरन्त ही क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगर में जाकर कैदियों को छोड़ देने से लेकर हजारों जुवे और मुसल एकत्रित करने तक तमाम कार्य कर, सिद्धार्थ राजा के पास आकर आज्ञा पालन का समाचार देते हैं ।

अब सिद्धार्थ राजा स्वयं वहां से उठकर कसरतशाला में जाता है । वहां पर अनेक प्रकार के व्यायाम करता है । व्यायाम कर के स्नानघर में जाकर सुगन्धित कवोष्ठ जल से स्नान करता है, फिर वस्त्राभूषण धारण कर सुशोभित हो राजसभा में आता है । अब सर्व प्रकार की ऋद्धि से, सर्व उचित वस्तुओं के संयोग से, सर्व सैन्य से, पालकी, घोड़ा आदि सर्व वाहनों से, परिवार के समूह से, सर्व अन्तेउर से, सर्व पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला, अलंकारादि की शोभा से, सर्व प्रकार के वाजिंत्रों से तथा सब बाजों के साथ ही होने वाले शब्दसमूह से युक्त सिद्धार्थ राजा दश दिन तक स्थितिपथि का नामक महोत्सव करता है । उस महोत्सव में बेचनेवाली वस्तुओं पर कर माफ कर दिया, प्रति वर्ष प्रजासे जो कर लिया जाता था सो भी उस समय माफ कर दिया । इन कारणों से प्रजाजनों के हर्ष द्वारा वह महोत्सव अत्यन्त उत्कृष्ठ हो गया । उस महोत्सव में राजा की ओर से आज्ञा हो गई कि

For Private and Personal Use Only

यदि किसी मनुष्य को किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो वह दाम दिये बिना ही दुकानों से ले सकता है, दाम उसके राजा की तरफ से दिये जायेंगे । उस महोत्सव में राजपुरूषों की ओर से किसी भी प्रजाजन को कुछ भय नहीं है, राजदंड भी माफ कर दिया गया है, अर्थात् अपराध में प्रजाजनों के पास से जो दंड लिया जाता था वह भी माफ कर दिया गया । यदि इस महोत्सव दरम्यान किसी को किसी से कुछ लेनदेन सम्बन्धी लेना है तो वह भी राजा की ओर से ही दिया जायगा । इस आनन्दोत्सव में नगर के तथा देशभर के लोग अत्यन्त आनन्दित हो क्रीडा में निमग्न थे । इस प्रकार सिद्धार्थ राजा ने कुल मर्यादा के अनुसार दश दिन तक पुत्र जन्मोत्सव मनाया ।

अब सिद्धार्थ राजा ने महोत्सव किये बाद जिसमें सैकड़ों, हजारों और लाखों का खर्च हो वैसी महान आडम्बर युक्त प्रभुप्रतिमा की पूजा रचाई । क्योंकि महावीरप्रभु के मातापिता पार्श्वनाथ प्रभु के संतानीय श्रावक थे और सूत्र में दिया हुआ ''यज'' धातु देवपूजा अर्थ में ही आता है इसलिये मूल में याग शब्द से देवपूजा ही अर्थ समझना चाहिये श्रावकों द्वारा दूसरे यज्ञ का असंभव हीं है । राजा ने उस पर्व में खूब दान दिया और मानी हुई मानतायें भी दीं । अब सिद्धार्थ राजा दान देता और सेवकों से दिलाता हुआ स्वयं हजारों मनुष्यों द्वारा लाये हुए बधामणे भी ग्रहण करता है एवं दूसरे सेवकों से कराता है । इस प्रकार महान् उत्सव करके श्रमण भगवन्त श्री महावीरप्रभु के मातापिता ने प्रथम दिन यह कुलमर्यादा की, तीसरे दिन चंद्र, सूर्यदर्शन का महोत्सव किया । जिसका विधि इस प्रकार है-जन्म से लेकर दो दिन बितने पर गृहस्थ गुरू, अरिहन्त की

प्रतिमा के पास चांदी की चंद्रमा की मूर्ति प्रतिष्ठित कर के पूजन कर विधिपूर्वक स्थापित करे । फिर स्नान कराकर और उत्तम वस्त्राभूषण पहना कर प्रभु सहित प्रभु की माता को चंद्रमा के उदय में बुलावे और चंद्रमा के सन्मुख लेजाकर ''ऊँ'' चंद्रोऽसि, निशाकरोऽसि, नक्षत्रपतिरसि, सुधाकरोऽसि, औषधीगर्भोऽसि, अस्य कुलस्य वृद्धिं कुरू कुरू स्वाहा'' इस तरह चंद्र मंत्र उच्चारण करते हुए चंद्रमा का दर्शन करावे । फिर पुत्र सहित माता गुरू को नमस्कार करे, तब गुरू भी आशीर्वाद देवे कि समस्त औषधियों से मिश्रित किरण राशिवाला, समस्त आपत्तियों को दूर करने में समर्थ चंद्रमा प्रसन्न होकर सदेव तुम्हारे वंश की वृद्धि करे । इसी प्रकार सूर्यदर्शन करावे, उसमें मूर्ति सूवर्ण या तांबे की रक्खे । मंत्र निम्न प्रकार है-ऊँ अर्ह सूर्योऽसि, दिनकरोऽसि, तमोपहोऽसि, सहस्त्रकिरणोऽसि, जगच्चक्षुरसि प्रसीद प्रसी'' । फिर गुरू आशीर्वाद दे कि-समस्त देव और असुरों को चन्दनीय, सर्व अपूर्व कार्यो को करनेवाले, तथा जगत का नेत्र समान सूर्य पुत्र सहित तुम्हे मंगल के देनेवाला हो । इस प्रकार चंद्र सूर्य दर्शन विधि जानना चाहिये । आजकल इस की जगह बालक को सीसा दिखलाते हैं ।

इसके बाद छट्ठे दिन रात्रि जागरण करते हैं । जब ग्यारह दिन बीत जाते हैं, अशुचि दूर हो जाती है अर्थात् जन्मकार्य समाप्त होने पर बारहवां दिन आने पर प्रभु के मातापिता बहुतसा अशन, पान, खादिम, स्वादिम चार प्रकार का भोजन तैयार कराते हैं । फिर अपने सगेसम्बन्धियों को, अपनी जातिवालों को, दास दासियों को तथा ऋषभदेव प्रभु के वंश के क्षत्रियों को जीमने के लिए बुलाते हैं । पूजादि का कार्य कर, कौतुक मंगल

For Private and Personal Use Only

कर तथा सभा के योग्य मांगलिक और शुद्ध वस्त्र पहन कर थोड़े परन्तु कीमती आभूषण धारण कर के शरीर अलंकृत कर प्रभु के माता पिता भोजन के समय भोजनमंडप में आकर आसनों पर बैठते हैं । पूर्वोक्त स्वजनादिक के साथ बैठ कर भोजन करते हैं । भोजन किये बाद कुल्ला कर ताम्बुलादि से मुखशुद्धि कर के वे बैठक की जगह पर आसनों पर आ बैठे और उन्होंने उन स्वजनादिकों का विशाल पुष्प, वस्त्र, सुगन्ध, माला तथा आभूषणादि से आदर सत्कार किया । ऐसा कर के प्रभु के माता पिता ने उन स्वजनादि से कहा कि हे बन्धुगण ! प्रथम भी हमें इस बालक के गर्भ में आने पर यह विचार पैदा हुआ था कि जब से यह बालक गर्भ में आया है तब से हम चांदी, सुवर्ण, धन, धान्य, राज्य तथा द्रव्य एवं अनेक प्रकार के प्रीति सत्कार से अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होते हैं, तथा सीमा मध्यवर्ती राजा भी हमारे वश में आ गये हैं इस लिए जब यह बालक जन्म लेगा तब इस का इसके योग्य गुणसंपन्न 'वर्धमान' नाम रक्खेंगे । वह पूर्व में उत्पन्न हुई हमारी मनोरथ संपत्ति आज सफल हुई है इस लिए हमारे कुमार का नाम वर्धमान ही समुचित है ।

काश्यप गोत्रवाले श्रमण भगवन्त श्री महावीरप्रभु के तीन नाम हुए हैं । मातापिता का रक्खा हुआ प्रथम वर्धमान नाम है । तप करने की शक्ति प्रभु में साथ ही उत्पन्न हुई थी इस कारण उनका नाम श्रमण था । तथा भय और भैरव में निष्कंप होने के कारण, जिसमें भय–अकस्मात् बिजली आदि से उत्पन्न हुआ, भैरव सिंहादि से उत्पन्न तथा भूख, प्यासादि बाइस परिसह, देवता संबन्धि चार उपसर्ग जिनके जुदे जुदे सोलह भेद

होते हैं, उन्हें प्रभुने क्षमाशीलता से सहन किया । भद्रादिक तथा एक रात्रिक आदि प्रतिमाओं - अभिग्रहों को पालन करनेवाले, तीन ज्ञान से मनोहर बुद्धिशाली जिन्होंने रति अरति को सहन किया है; अर्थात् जिसे अनुकूल और प्रतिकूल संयोगों में हर्ष और शोक नहीं है, जो रागद्वेष रहित होने से गुणों का भाजनरूप है ऐसा वृद्ध आचार्यों का मत है । पराक्रमसंपन्न होने से अर्थात् पूर्वोक्त गुणों के कारण देवो ने प्रभु का ''श्रमण भगवान् महावीर'' नाम रक्खा था । देवोंने ऐसा नाम क्यों रक्खा इसके लिए वृद्ध संप्रदाय का मत है -

इस प्रकार सुरासुर नरेश्वरों द्वारा जिसका जन्मोत्सव किया गया है ऐसे वीर भगवन्त द्वितीया के चंद्र समान या कल्पवृक्ष के अंकुर के समान वृद्धि को प्राप्त होते हुए अनुक्रम से ऐसे हुए-चंद्र के समान मुखवाले, ऐरावण हाथी के समान गतिवाले, लाल होंठोंवाले, दांतों की सफेद पंक्तियुक्त, काले केशों से युक्त, कमल के समान कोमल हाथों सहित, सुगंध युक्त श्वासोश्वास वाले और कान्ति से विकसित हुए । वे मति, श्रुत और अवधिज्ञान सहित थे, उन्हें पूर्वभव का भी स्मरण था, वे रोग रहित थे, मति, कान्ति, धीरज आदि अपने गुणों के द्वारा संसार वासियों से अधिक थे और जगत में तिलक के समान थे ।

आमल - क्रीड़ा

एक दिन वीरकुमार कौतुक के न होने पर भी समान उम्रवाले कुमारों के आग्रह से उनके साथ आमल क्रीडा करने के लिए नगर के बाहर गये । वहां पर वे सब कुमार वृक्ष पर चढ़ने आदि की क्रिया से क्रीड़ा कर

For Private and Personal Use Only

रहे थे । उसी समय सौधर्मेंद्र अपनी सभा में देवों से समक्ष प्रभु के धैर्यादि गुणों की प्रशंसा कर रहा था । इंद्र ने कहा-हे देवों ! वर्तमान काल में मनुष्य लोक में श्री वर्धमान कुमार बालक होते हुए भी अबाल पराक्रमी अर्थात् महापराक्रमी है । उसे इंद्रादि देव भी डराने के लिए समर्थ नहीं हो सकते ऐसा निडर है । यह सुनकर सभा में बैठे हुए एक मिथ्यादृष्टि देव ने विचारा कि-अहो इंद्र को अपने स्वामीपन का कितना अभिमान है ! यह बिना विचारे कैसी गप्प मारता है । इंद्र की यह बात ऐसी हीं है जैसे कोई कहे कि आकाश से एक रूई की पूणी पड़ी और उस से एक नगर दब गया ! भला कहां देव और कहां एक मनुष्य ? मैं अभी जाकर उसे डराकर इंद्र के वचन को झूठा कर देता हूं । यह विचार कर उस देवने मनुष्य लोक में आकर मूसल के समान मोटे, चपल दो जीभ युक्त, भयंकर फुंफार सहित, अत्यन्त क्रूर आकारधारी, विस्तृत, क्रोधी, विशाल फण युक्त और चमकते हुए मणिवाले क्रूर सर्प का रूप धारण कर उस वृक्ष को चारों ओर से लपेट लिया, जिस पर चढ़ उतर कर के वे लड़के खेल रहे थे । उसे देख कर सारे ही कुमार भयभीत हो वहां से दूर भाग गये । श्री वर्धमान कुमार ने निर्भीक हो वहां जाकर उसे हाथ में पकड़कर दूर फेंक दिया । फिर सब कुमार वर्धमान के पास आकर गेंद का खेल खेलने लगे । वह देव भी कुमार का रूप धारण कर उन सब के बीच में खेलने लगा । उस खेल में शरत यह थी कि जो कुमार हार जाय वह जीतनेवाले कुमार को अपनी पीठ पर चढावे । अब वह देवकुमार जानबूझ कर वर्धमान कुमार से हार गया । शरत के अनुसार वर्धमान कुमार को अपनी पीठ पर चढ़ा कर उस

देवने सात ताल वृक्ष समान ऊंचा शरीर बना लिया । भगवान ने ज्ञान से उसका स्वरूप जान कर उसकी पीठपर वज्र के समान कठिन मुष्टिप्रहार किया, उस देव ने मुष्टिप्रहार की वेदना से पीड़ित हो मच्छर के समान संकुचित शरीर बना लिया और उसने इंद्र का वचन सत्य मान कर अपना स्वरूप प्रकट किया तथा सब वृत्तान्त सुनाकर प्रभु से अपने अपराध की बारंबार क्षमा मांगी । देव अपने स्थान पर चला गया । इंद्र ने संतुष्ट होकर प्रभु का 'वीर' नाम रक्खा । यह आमल क्रीडा का वृत्तान्त समझना चाहिये ।

प्रभु का पाठशाला में जाना

अब प्रभु के माता पिता उन्हें आठ वर्ष का हुआ जान कर अति मोह के कारण उन्हें आभूषणादि पहनाकर पाठशाला में ले गये । उस समय माता पिता ने लग्नस्थिति पूर्वक अति हर्षित होकर बहुत धन व्यय कर के बड़ा मूल्यवान महोत्सव किया । हाथी, घोड़ों के समूह से, मनोहर बाजुबन्ध तथा हारों के समूह से, तथा सुवर्ण घड़ित मुद्रिकायें, कंकण, कुंडल आदि आभूषणों से, तथा अति मनोहर पंचवर्णीय रेशमी वस्त्रों से स्वजनादि राजकीय भनुष्यों का उन्होंने भक्तिपूर्वक आदर सत्कार किया । पंडित के लिए अनेक प्रकार के वस्त्र, आभूषणादि एवं विद्यार्थिओं के लिए सुपारी, सिंगोडे, खजूर, शक्कर, खांड, चारोली, किसमिस आदि खाने की वस्तुयें भी उन्होंने साथ लेलीं । तथा सुवर्ण, चांदी और रत्नों के मिश्रण से बनाये हुए पुस्तकों के उपकरण, एवं कलम, दवात, तख्ती को भी साथ ले लिया, सरस्वती की पूजा के लिए मनोहर तथा बहुत से रत्नों से

पानी की ग्रहण किया । कभी सचित्त पानी तक भी नहीं पिया और नहीं कभी सचित्त जल से स्नान किया एवं उस दिन से जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन किया । परन्तु दीक्षोत्सव में तो प्रभु ने सचित्त जलसे ही स्नान किया, क्यों कि उस प्रकार आचार है । अब प्रभु को वैराग्यवान् देख कर चौदह स्वप्नों से सूचित चक्रवर्ती पन की बुद्धि से सेवा करते श्रेणिक और चण्डप्रद्योत आदि राजकुमार अपने-अपने स्थान पर चले गये ।

इधर एक तरफ प्रभु की प्रतिज्ञा पूर्ण होती है और दूसरी और लोकान्तिक देव आकर प्रभु को बोध करते हैं । लोकान्तिक संसार के अन्त में रहे हुए अर्थात् एक भवावतारी देव, क्यों कि यों तो वे ब्रह्मलोक नामक पांचवें स्वर्ग में रहते हैं । ये देव भी नव प्रकार के होते हैं । उनके नाम सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, अग्नि, और अरिष्ट हैं । प्रभु यद्यपि स्वयंबुद्ध थे तथापि उन देवों का यह आचार ही होता है, वे जीतकल्प कहलाते हैं । वे देव आकर प्रभु को इष्ट वाणी से, मनोहर गुणोवाली वाणी से निरन्तर अभिनन्दित करते हुए, स्तुति करते हुए यों कहने लगे- हे जयवन्त प्रभो! हे भद्रकारी प्रभो! हे कल्याणवान् प्रभो आपकी जय हो। हे भगवन् ! लोक के नाथ ! आप प्रतिबोध को प्राप्त हो । हे उत्तम क्षत्रियवर ! सकल जगत के प्राणियों को हितकारी ऐसे धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करो । वह तीर्थ सकल लोक में समस्त जीवों को सुखकारी और मोक्ष के देनेवाला होगा । यों कहकर वे जयजय शब्द बोलने लगे ।

श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु को तो मनुष्य के उचित प्रथम से ही अनुपम, उपयोगवाला, तथा

केवलज्ञान उत्पन्न हो तब तक टिकनेवाला अवधिज्ञान और अवधिदर्शन था । उससे वे अपने अनुत्तर एवं आभोगिक ज्ञानदर्शन से अपने दीक्षा समय को स्वयं जानते थे । अब वे सोना, चांदी, धन, राज्य, देश तथा सेना, वाहन, धन के भंडार, अन्न के भंडार, नगर, अन्तःपुर तथा देशवासी जनसमूह को त्याग कर, एवं रत्न, मणि, मोती, शंख, प्रवाल, स्फटिक, रक्त रत्न, हीरा, पन्नादि सार पदार्थ त्याग कर अर्थात् उन सार वस्तुओं को भी असार समझ एवं अस्थिर जान कर अर्थीजनों को दान करते हुए, जिसको जैसा देना उचित समझा उसको वैसा ही दे कर, गोत्रिय जनों को विभाजित कर देकर प्रभु निकलते हैं । इस सूत्र से प्रभु का वार्षिक दान सूचित किया है । दीक्षा के दिन से पहले एक वर्ष रहने पर प्रातःकाल उठकर प्रभु वार्षिक दान शुरू करते हैं और वह दान सूर्योदय से लेकर मध्याह्न समय तक देते हैं । इस प्रकार प्रभु एक करोड़ और आठ लाख सुवर्णमुद्राओं का दान देते हैं । जिसको चाहिये वह मांगे ऐसी घोषणा पूर्वक जिसे जो चाहता सो देते हैं । वह समस्त द्रव्य इंद्राज्ञा से देवता पूर्ण करते हैं । इस प्रकार एक वर्ष में तीन सौ अट्ठासी करोड़ और अस्सी लाख सुवर्ण मुद्रायें दान में दी जाती हैं ।

यहां पर कवि उस वार्षिक दान का वर्णन करता है कि भिखारी जैसे वेष में रहे हुए अर्थी प्रभु के पास से जब समृद्ध होकर घर आते हैं तब उनकी स्त्रियां भी उन्हें पहचान नहीं सकीं और उन्हें कहते है हम इसी घर के मालिक हैं इसलिए कशम शपथ दिला कर घर में आने देतीं हैं । उपहास करते कि देखो तुम्हारे घर में कोई अन्य

For Private and Personal Use Only

न आ जावे !

इस प्रकार वर्षीदान देकर प्रभु ने फिर नन्दिवर्धन राजा से कहा–भाई अब आपके कथनानुसार भी समय पूर्ण हो गया है अतः मैं दीक्षा ग्रहण करूंगा । यह सुनकर नन्दीवर्धन राजा ने भी ध्वज, तोरणादि से बाजार तथा कुण्डलपुर नगर को देवलोक के समान सजाया । नन्दिवर्धन राजा और इंद्रादिने सुवर्ण के, चांदी के, मणि के, सोना चांदी, सौनो रत्नों, सुवर्ण चांदी मणि और मिट्टी और मिट्टी आदि प्रत्येक के एक हजार आठ कलशे और दूसरी भी सब सामग्री तैयार कराई। फिर अच्युतेंद्रादि चौसठ इंद्रों ने आकर भगवान का अभिषेक किया । देवकृत कलशे दिव्य प्रभाव से नन्दिवर्धन राजा के बनवाये हुए कलशों में प्रविष्ट होने से अत्यन्त शोभते हैं । देवताओं द्वारा क्षीरसमुद्र से लाये हुए पवित्र जल से नन्दिवर्धन राजा ने प्रभु का अभिषेक किया । उस समय इंद्र झारी तथा सीसा (दर्पण) हाथ में लेकर प्रभु सन्मुख खड़े जय जय शब्द बोलते थे । इस प्रकार प्रभु को स्नान कराये बाद गन्धकषाय नामक वस्त्र से उनका शरीर रूक्ष किया और फिर दिव्य चंदन का विलेपन किया । दिव्य पुष्पों की मालायें उनके गले में धारण कराई । जिस के किनारों पर सुवर्ण का काम किया हुआ है ऐसे एक बहुमूल्य श्वेत वस्त्र से प्रभु ने अपने शरीर को ढक लिया । हार से वक्षस्थल को शोभायमान किया, बाजुबन्ध और कंकणों से भुजाओं को सजाया, कर्ण कुण्डलों से गालों को सुशोभित किया। अब श्री नन्दिवर्धन राजा द्वारा बनवाई हुई

पचास धनुष्य लम्बी और पच्चीस धनुष्य चौड़ी एवं छत्तीस धनुष ऊँची बहुत से स्तंभों से शोभती हुई, मणि रत्नों से एवं सुवर्ण से विचित्र तथा दिव्य प्रभाव से देवकृत पालखी जिस के अन्दर समा गई ऐसी चंद्रप्रभा नामक पालखी में बैठकर प्रभु दीक्षा ग्रहण करने के लिए चले । शेष वर्णन सूत्रकार स्वयं करते हैं

भगवान का दीक्षा महोत्सव

उस काल और उस समय में जो शरदकाल का पहला महीना और पहला ही पक्ष था । उस मागशिर मास का कृष्णपक्ष उसकी दशमी के दिन, पूर्वदिशा तरफ छाया के आने पर प्रमाण सहित न कम न अधिक ऐसी पीछली पोरसी के आने पर सुव्रत नामक दिन में, विजय नामक मुहूर्त्त में, छट्ट की तपस्या कर के, शुद्ध लेश्यावाले प्रभु पूर्वोक्त चंद्रप्रभा नामक पालखी में पूर्व दिशा सन्मुख सिंहासन पर बैठे । वहां प्रभु के दाहिनी और हंस के लक्षण युक्त वस्त्र धोती आदि लेकर महत्तरिका बैठी । बांई ओर दीक्षा के उपकरण लेकर प्रभु की धाव माता बैठी । प्रभु के पिछली तरफ हाथ में श्वेत छत्र लेकर उत्तम श्रृंगार धारण कर एक तरूणी स्त्री बैठी । ईशान कोण में एक स्त्री संपूर्ण भरा हुआ कलश लेकर बैठी । अग्निकोण में मणिमय पंखा हाथ में लेकर बैठी । फिर नन्दिवर्धन राजा की आज्ञा से राजपुरूष जब उस पालखी को उठाते हैं तब तुरन्त ही शकेंद्र दाहिनी तरफ की बांहू को उठाता है । ईशानेंद्र उत्तर तरफ की ऊपर की बांहू को उठाता है । चमरेंद्र दक्षिण की नीचे की बांह को उठाता है तथा बलींद्र उत्तर तरफ की नीचे की बांह को उठाता है । शेष भुवनपति, ज्योतिष्क और वैमानिक

पानी की ग्रहण किया । कभी सचित्त पानी तक भी नहीं पिया और नहीं कभी सचित्त जल से स्नान किया एवं उस दिन से जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन किया । परन्तु दीक्षोत्सव में तो प्रभु ने सचित्त जलसे ही स्नान किया, क्यों कि उस प्रकार आचार है । अब प्रभु को वैराग्यवान् देख कर चौदह स्वप्नों से सूचित चक्रवर्ती पन की बुद्धि से सेवा करते श्रेणिक और चण्डप्रद्योत आदि राजकुमार अपने-अपने स्थान पर चले गये ।

इधर एक तरफ प्रभु की प्रतिज्ञा पूर्ण होती है और दूसरी और लोकान्तिक देव आकर प्रभु को बोध करते हैं । लोकान्तिक संसार के अन्त में रहे हुए अर्थात् एक भवावतारी देव, क्यों कि यों तो वे ब्रह्मलोक नामक पांचवें स्वर्ग में रहते हैं । ये देव भी नव प्रकार के होते हैं । उनके नाम सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरूण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, अग्नि, और अरिष्ट हैं । प्रभु यद्यपि स्वयंबुद्ध थे तथापि उन देवों का यह आचार ही होता है, वे जीतकल्प कहलाते हैं । वे देव आकर प्रभु को इष्ट वाणी से, मनोहर गुणोवाली वाणी से निरन्तर अभिनन्दित करते हुए, स्तुति करते हुए यों कहने लगे- हे जयवन्त प्रभो! हे भद्रकारी प्रभो! हे कल्याणवान् प्रभो आपकी जय हो। हे भगवन् ! लोक के नाथ ! आप प्रतिबोध को प्राप्त हो । हे उत्तम क्षत्रियवर ! सकल जगत के प्राणियों को हितकारी ऐसे धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करो । वह तीर्थ सकल लोक में समस्त जीवों को सुखकारी और मोक्ष के देनेवाला होगा । यों कहकर वे जयजय शब्द बोलने लगे ।

श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु को तो मनुष्य के उचित प्रथम से ही अनुपम, उपयोगवाला, तथा

केवलज्ञान उत्पन्न हो तब तक टिकनेवाला अवधिज्ञान और अवधिदर्शन था । उससे वे अपने अनुत्तर एवं आभोगिक ज्ञानदर्शन से अपने दीक्षा समय को स्वयं जानते थे । अब वे सोना, चांदी, धन, राज्य, देश तथा सेना, वाहन, धन के भंडार, अन्न के भंडार, नगर, अन्तःपुर तथा देशवासी जनसमूह को त्याग कर, एवं रत्न, मणि, मोती, शंख, प्रवाल, स्फटिक, रक्त रत्न, हीरा, पन्नादि सार पदार्थ त्याग कर अर्थात् उन सार वस्तुओं को भी असार समझ एवं अस्थिर जान कर अर्थीजनों को दान करते हुए, जिसको जैसा देना उचित समझा उसको वैसा ही दे कर, गोत्रिय जनों को विभाजित कर देकर प्रभु निकलते हैं । इस सूत्र से प्रभु का वार्षिक दान सूचित किया है । दीक्षा के दिन से पहले एक वर्ष रहने पर प्रातःकाल उठकर प्रभु वार्षिक दान शुरू करते हैं और वह दान सूर्योदय से लेकर मध्याह्न समय तक देते हैं । इस प्रकार प्रभु एक करोड़ और आठ लाख सुवर्णमुद्राओं का दान देते हैं । जिसको चाहिये वह मांगे ऐसी घोषणा पूर्वक जिसे जो चाहता सो देते हैं । वह समस्त द्रव्य इंद्राज्ञा से देवता पूर्ण करते हैं । इस प्रकार एक वर्ष में तीन सौ अट्ठासी करोड़ और अस्सी लाख सुवर्ण मुद्रायें दान में दी जाती हैं ।

यहां पर कवि उस वार्षिक दान का वर्णन करता है कि भिखारी जैसे वेष में रहे हुए अर्थी प्रभु के पास से जब समृद्ध होकर घर आते हैं तब उनकी स्त्रियां भी उन्हें पहचान नहीं सकीं और उन्हें कहते है हम इसी घर के मालिक हैं इसलिए कशम शपथ दिला कर घर में आने देतीं हैं । उपहास करते कि देखो तुम्हारे घर में कोई अन्य

For Private and Personal Use Only

न आ जावे !

इस प्रकार वर्षीदान देकर प्रभु ने फिर नन्दिवर्धन राजा से कहा–भाई अब आपके कथनानुसार भी समय पूर्ण हो गया है अतः मैं दीक्षा ग्रहण करूंगा । यह सुनकर नन्दीवर्धन राजा ने भी ध्वज, तोरणादि से बाजार तथा कुण्डलपुर नगर को देवलोक के समान सजाया । नन्दिवर्धन राजा और इंद्रादिने सुवर्ण के, चांदी के, मणि के, सोना चांदी, सौनो रत्नों, सुवर्ण चांदी मणि और मिट्टी और मिट्टी आदि प्रत्येक के एक हजार आठ कलशे और दूसरी भी सब सामग्री तैयार कराई। फिर अच्युतेंद्रादि चौसठ इंद्रों ने आकर भगवान का अभिषेक किया । देवकृत कलशे दिव्य प्रभाव से नन्दिवर्धन राजा के बनवाये हुए कलशों में प्रविष्ट होने से अत्यन्त शोभते हैं । देवताओं द्वारा क्षीरसमुद्र से लाये हुए पवित्र जल से नन्दिवर्धन राजा ने प्रभु का अभिषेक किया । उस समय इंद्र झारी तथा सीसा (दर्पण) हाथ में लेकर प्रभु सन्मुख खड़े जय जय शब्द बोलते थे । इस प्रकार प्रभु को स्नान कराये बाद गन्धकषाय नामक वस्त्र से उनका शरीर रूक्ष किया और फिर दिव्य चंदन का विलेपन किया । दिव्य पुष्पों की मालायें उनके गले में धारण कराई । जिस के किनारों पर सुवर्ण का काम किया हुआ है ऐसे एक बहुमूल्य श्वेत वस्त्र से प्रभु ने अपने शरीर को ढक लिया । हार से वक्षस्थल को शोभायमान किया, बाजुबन्ध और कंकणों से भुजाओं को सजाया, कर्ण कुण्डलों से गालों को सुशोभित किया। अब श्री नन्दिवर्धन राजा द्वारा बनवाई हुई

पचास धनुष्य लम्बी और पच्चीस धनुष्य चौड़ी एवं छत्तीस धनुष ऊँची बहुत से स्तंभों से शोभती हुई, मणि रत्नों से एवं सुवर्ण से विचित्र तथा दिव्य प्रभाव से देवकृत पालखी जिस के अन्दर समा गई ऐसी चंद्रप्रभा नामक पालखी में बैठकर प्रभु दीक्षा ग्रहण करने के लिए चले । शेष वर्णन सूत्रकार स्वयं करते हैं

भगवान का दीक्षा महोत्सव

उस काल और उस समय में जो शरदकाल का पहला महीना और पहला ही पक्ष था । उस मागशिर मास का कृष्णपक्ष उसकी दशमी के दिन, पूर्वदिशा तरफ छाया के आने पर प्रमाण सहित न कम न अधिक ऐसी पीछली पोरसी के आने पर सुव्रत नामक दिन में, विजय नामक मुहूर्त्त में, छट्ठ की तपस्या कर के, शुद्ध लेश्यावाले प्रभु पूर्वोक्त चंद्रप्रभा नामक पालखी में पूर्व दिशा सन्मुख सिंहासन पर बैठे । वहां प्रभु के दाहिनी और हंस के लक्षण युक्त वस्त्र धोती आदि लेकर महत्तरिका बैठी । बांई ओर दीक्षा के उपकरण लेकर प्रभु की धाव माता बैठी । प्रभु के पिछली तरफ हाथ में श्वेत छत्र लेकर उत्तम श्रृंगार धारण कर एक तरूणी स्त्री बैठी । ईशान कोण में एक स्त्री संपूर्ण भरा हुआ कलश लेकर बैठी । अग्निकोण में मणिमय पंखा हाथ में लेकर बैठी । फिर नन्दिवर्धन राजा की आज्ञा से राजपुरूष जब उस पालखी को उठाते हैं तब तुरन्त ही शकेंद्र दाहिनी तरफ की बांहू को उठाता है । ईशानेंद्र उत्तर तरफ की ऊपर की बांहू को उठाता है । चमरेंद्र दक्षिण की नीचे की बांह को उठाता है तथा बलींद्र उत्तर तरफ की नीचे की बांह को उठाता है । शेष भुवनपति, ज्योतिष्क और वैमानिक

For Private and Personal Use Only

इंद्र हाथ लगाते हैं । आकाश से देवता पंचवर्ण के पुष्पों की वृष्टि करते हैं, देवदुंदुभि बजाते हैं, वे अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार पालखी को उठाते हैं । फिर शक्रेंद्र और ईशानेंद्र उन बांहों को छोड़ कर प्रभु को चामर विंझते हैं । इस प्रकार जब प्रभु पालखी में, बैठ कर दीक्षा लेने जा रहे हैं तब अनेकानेक देव देवियों से आकाशतल शरद ऋतु में पद्म सरोवर के तुल्य, प्रफुल्लित अलसी के वन समान, कलियर के वन सरीखा, चंपा के बगीचे सदृश, तथा पुष्पित तिल के वन समान मनोहर शोभता था । निरन्तर बजते हुए भंभा, भेरी, मृदंग, दुंदुभि और शंखादि के नाद गगनतल में पसर रहे थे । उन निरन्तर बजनेवाले अनेक बाजों के सुन्दर शब्द सुनकर नगर की स्त्रियां अपने कार्यो को छोड़ कर वहां आती हुई अपनी विविध प्रकार की चेष्टाओं से मनुष्यों को आश्चर्यचकित करती थी । कहा भी है स्त्रियों को तीन चीज अधिक प्यारी होती है एक तो केश, दुसरा काजल, और तीसरा सिंदूर । ऐसे ही वे तीन वस्तु भी प्यारी होती हैं एक दूध, दूसरा जमाई और तीसरा बाजा । उन की चेष्टायें निम्न प्रकार थी -कितनी एक बालिकायें शीघ्रता के कारण अपने गालों पर काजल के अंक और आंखों में कस्तूरी डाल कर आई । कितनी एक जल्दी की उत्सुकता से चित्त उधर होने से गले के आभूषण पैरों में और पैरों के आभूषण गले में पहन आई । कितनी एकने गले का हार तगड़ी की जगह पहना हुआ था और तगड़ी हार की जगह पहनी थी । गोशीर्ष चंदन पैरों पर लगाया हुआ और मेंहदी शरीर पर लगाई थी। कोई अर्ध स्नान किये भींने ही कपड़ों से पानी टपकाती आ रही थी । कोई खुले केश पगली सी हुई दौडती

आ रही थी । वे ऐसी अवस्था में आती हुई किस मनुष्य को प्रथम त्रास और जाने के बाद हास्य न कराती थीं ? यहां तक किसी के शरीर से वस्त्र भी खिसक गये थे, किसी ने हाथ में नाड़ा ही पकड़ा हुआ था । ऐसी परिस्थिति होने पर भी उन्हें जरा भी शरम नहीं लगी, क्योंकि सब लोग प्रभु को देखने के ध्यान में मग्न थे । कितनी एक स्त्रियां तो प्रभु का दीक्षा महोत्सव देखने की उत्सुकता में यहां तक बेभान हो गई थीं कि अपने रोते हुए बच्चों को छोड़कर पास में खड़े बिल्ली के बच्चों को ही अपना बच्चा समझ गोद में उठा लाई थीं । कोई-कोई स्त्री प्रभु के दर्शन कर मन में कहती-अहा ! कैसा सुन्दर रूप है ? कैसा तेज है ? अहा शरीर का सौभाग्य कैसा है !! मैं विधाता की चतुराई पर वारफेर करू जिसने ऐसा सुन्दर रूप बनाया है ! विकसित गालवाली कितनी एक स्त्रियां प्रभु के मुख को देखने में ऐसी तल्लीन हुई थीं कि उन के शरीर से सुवर्ण के आभूषण निकल पड़ने पर भी उन्हें मालूम नहीं होता था । कोई कोई चंचल नेत्रवाली स्त्री तो अपने हस्तकमलों से प्रभु की ओर मोती फेंकती थीं, कितनी एक बाजों की तान में आकर मधुर स्वर में गाने लगीं और कई एक आनन्द में आकर नाचने लग गई ।

इस प्रकार नगर के नारियों द्वारा जिसका दीक्षा महोत्सव देखा जा रहा है ऐसे प्रभु के आगे प्रथम रत्नमय अष्टमंगल चलते हैं, जिनके नाम ये हैं-स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दावर्त्त, वर्धमान, भद्रासन, कलश, मत्स्ययुगल और दर्पण उसके बाद पूर्ण कलश, सारी, चामर, बडी पताका, छत्र, मणि और स्वर्णमय पादपीठ-

For Private and Personal Use Only

वाला सिंहासन फिर सवार रहित एक सौ आठ हाथीं, उतने हीं घोडे, उतने हीं घंटे और पताकाओं से मनोहर सजे हुए और शस्त्रों से भरे हुए रथ, उतने हीं उत्तम पुरूष, फिर अनुक्रम से घोड़े, हाथीं, रथ तथा पैदल सेना, फिर एक हजार छोटी पताकाओं से मंडित एक हजार योजन ऊंचा महेन्द्र ध्वज, खड्गधारी, भालों को धारण करनेवाले, ढाल धारीं, हास्य तथा नृत्य करने वाले जय जय शब्द करते भाट चारण आदि चलते हैं । फिर बहुत से उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, क्षत्रीयकुल के राजा, कोतवाल, मांडलिक, कौटुम्बिक, सेठ लोग, सार्थवाह, देव, देवींयां प्रभु के आगे चलते तत्पश्चात् स्वर्ग, मृत्यु लोक में रहनेवाले देव, मनुष्य और असुर चलते हैं । तथा आगे शंख बजानेवाले, चक्रधारी, हलधारी अर्थात् गले में सुवर्ण का हलके आकारवाला आभूषण धारीं, चाटु वचन बोलनेवाले, दूसरों को जिन्होने अपने कंधे पर बैठाया हुआ है ऐसे मनुष्य, विरूदावलीं बोलनेवाले, घंटा लेकर चलनेवाले रावलिये–इन सबसे वेष्टित प्रभु को कुल कीं वृद्ध नारियाँ इष्ट विशेषणोंवाले वचनों से अभिनन्दित करतीं हुई बोलतीं हैं कि ''जय जय नन्दा, जय जय भद्दा भहंते'' अर्थात् हे समृद्धिमन् ! हे भद्रकारक ! आप जय पाओ । आपका भद्र हो तथा अजित इंद्रियों को अतिचार रहित ज्ञानदर्शनचारित्र से वश करो, वश किये हुए श्रमण धर्म को पालन करो । हे प्रभो ! सर्व विघ्नों को जीत कर मोक्ष में निवास करो । रागद्वेष रूप मल्लों को नष्ट करो । हे प्रभो ! उत्तम शुक्ल ध्यान से धैर्य में प्रवीण हो अष्ट कर्मरूप शत्रुओं का नाश करो । हे वींर ! अप्रमत्त होकर तींन लोकरूप जो मल्ल

युद्ध का अखाड़ा है उसमें तुम विजय पताका ग्रहण करो, तिमिर रहित अनुपम केवलज्ञान को प्राप्त करो और पूर्व तीर्थकरों द्वारा कथन किये हुए अकुटिल मार्ग से परिसहों की सेना को हण कर आप मोक्षरूप परम पद को प्राप्त करो । हे क्षत्रियों में वृषभ समान ! आप जय प्राप्त करो, जय पाओ । हे प्रभो ! आप बहुत से दिनों तक, बहुत से पक्षों तक, बहुत से महींनों तक, बहुतसी ऋतुओं तक, बहुसी छमासियों तक, और बहुत से वर्षों तक उपसर्गों से निडर होकर, बिजली, सिंहादि के भयों को क्षमाशीलता से सहन करते हुए विजय प्राप्त करो । तथा आपके धर्म में विघ्नों का अभाव हो । यों कहकर फिर जय जय के शब्द बोलने लगीं । अब श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी क्षत्रिय कुण्डनगर के मध्य से होकर हजारों नेत्र पंक्तियों द्वारा दीखते हुए, श्रेणिबद्ध मनुष्यों के मुख के बारंबार अपनी स्तुति सुनते हुए, हजारों हीं हृदय पंक्तियों से आप जय पाओ, चिरकाल जीवोइत्यादि चिन्तवन कराते हुए, हजारों मनुष्यों के यह विचार करते हुए कि हम इनके सेवक भी बन जायें तो भी कल्याण हो, कान्ति रूप, गुणों से आकर्षित हो लोकसमूह जिसे अपना स्वामी बनाने की स्पृहा करते थे, जिसे हजारों मनुष्य अंगुलियां उठाकर दिखला रहे थे कि भगवान वे जा रहे हैं । दाहिने हाथ से हजारों स्त्री पुरूषों के नमस्कार ग्रहण करते हुए हजारों ही मानव समूह के साथ आगे बढ़ते हुए, हजारों ही भवन पंक्तियों से आगे बढ़ते हुए, तथा वीणा, तलताल, गीत, वाजिंत्रों के एवं मधुर मनोज्ञ जय जय उद्घोषणा से मिश्रित हुए मनुष्यों के अति कोमल शब्दों से सावधान होते हुए । समस्त छत्रादि

For Private and Personal Use Only

राजचिन्ह समृद्धि से युक्त तथा आभूषणादि की सर्व प्रकार के कान्ति सहित, हाथी, घोडा आदि सर्व प्रकार की सामग्री सहित, ऊंट, खच्चर शिविकादि सर्व प्रकार के वाहनों युक्त, सर्व महाजनों एवं स्वजनों के मिलाप से, सर्व प्रकार के आदरपूर्वक, सर्व प्रकार की संपदा सहित, सर्व शोभायुक्त, सर्व हर्ष की उत्सुकतापूर्वक अठारह प्रकार की नगर में निवास करने वाली प्रजाओं सहित सर्व नाटकों, सर्व तालाचरों, अन्तेउर सर्व पुष्प, गन्ध, माला और अलंकारों की शोभा से, सर्व बाजों के एकत्रित शब्दों की ध्वनि से, बड़ी ऋद्धि, द्युति, सैन्य, बड़े समुदाय, तथा समकालीन बजते हुए शंख, पटह, भेरी, झल्लरी, खटमुखी, हु डू क् और देवदुंदुभि के निकलते हुए शब्द के प्रतिरूप बड़े बड़े शब्दोंयुक्त ऋद्धि से दीक्षा ग्रहण करने को जाते हुए प्रभु के पीछे चतुरंगी सेना से वेष्टितं एवं मनोहर छत्र चामरादि से सुशोभित नन्दिवर्धन राजा चलता है । उपरोक्त आडम्बरयुक्त भगवान् क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के बीच से निकल कर ज्ञातखण्ड नामक उद्यान में अशोक नामक वृक्ष के नीचे जाते हैं । वहां जाकर प्रभु पालकी को ठहरवा देते हैं । भगवान पालकी से नीचे उतरते हैं, उतर कर अपने अंग से स्वयं तमाम आभूषण उतार देते हैं । अंगुलियों से सुवर्णमुद्रिकायें, हाथों से वीर वलय, भुजाओं से बाजुबन्ध, कंठ से कुण्डल, एवं मस्तक पर से मुकुट उतारते हैं । उन समस्त आभूषणों को कुल की महत्तरा हंसलक्षणवाले वस्त्र में ले लेती है । लेकर वह ''इक्खागकुलसमुप्पण्णेसि णं तुमं जाया'' हे पुत्र ! तुम इक्ष्वाकु जैसे उत्तम कुल में जन्मे हो तुम्हारा काश्यप नामक उच्च गोत्र है ज्ञातकुलरूपी आकाश में पूर्णिमा के निर्मल चंद्रमा के समान सिद्धार्थ राजा के और त्रिशला क्षत्रियाणी के तुम पुत्र हो, देवेन्द्रों और नेरन्द्रों ने भी

तुमारी स्तुति की है । हे पुत्र ! इस संयम मार्ग में शीघ्र चलना, गुरू का आलंबन लेना तलवार की धारा के समान महाव्रतों का पालन करना, श्रमण धर्म में प्रमाद न करना-इत्यादि आशीर्वाद देती है । फिर प्रभु को वन्दन कर वह एक तरफ हट जाती है । तब प्रभु ने एक मुष्टि से दाढी मूछ के और चार मुट्ठी से मस्तक के केशों का स्वयं लोच किया । फिर पानी रहित छट्ठ की तपस्या कर के उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग पर, इंद्रद्वारा बांये कंधे पर एक देवदूष्य को धारण कर अकेले ही रागद्वेष की सहाय बिना ही, अद्वितीय अर्थात् जैसे ऋषभदेव प्रभु ने चार हजार राजाओं सहित, मल्लिनाथ और पार्श्वनाथजीने तीन तीन साथ, वासुपूज्यजी ने छहसौ के साथ तथा शेष तीर्थंकरों ने जैसे एक एक हजार के साथ दीक्षा ली थी त्यों वीर प्रभु के साथ कोई भी न था । इसलिए प्रभु अद्वितीय थे । द्रव्य से केशालुंचन कर के मुंडित हुए, भाव से क्रोधादि को दूर कर के मुण्डित हुए, घर से निकल कर आगारीपन को त्याग कर अनगारीपन साधुपन को प्राप्त हुए । दीक्षा की विधि निम्न प्रकार है-पंच मुट्ठी लोच कर जब प्रभु सामायिक उचरने का विचार करते हैं तब इंद्र वाजे आदि बन्द करा देता है । प्रभु को ''नमो सिद्धाणं,'' कह कर ''करेमि सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि'' इत्यादि पाठ उच्चारण करते हैं, परन्तु भन्ते पाठ नहीं बोलते क्योंकि उनका आचार ही ऐसा है । इस प्रकार चारित्र ग्रहण करते ही प्रभु को चौथा मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ । अब इंद्रादि देव प्रभु को वन्दन कर नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा कर के अपने स्थान पर चले गये।

For Private and Personal Use Only

छट्ठा व्याख्यान ।

भगवान् का विहार

दीक्षा लेकर चार ज्ञान के धारक भगवान् बन्धुवर्ग की आज्ञा लेकर विहार कर जाते हैं । बन्धु वर्ग भी जब तक प्रभु नजर आते हैं तब तक वहां की ठहर कर–

''त्वया बिना वीर ! कचं व्रजामो ? गृहेऽधुना शून्यवनोपमाने ।
गोष्टीसुखं केन सहाचरामो ? भोक्ष्यामहे केन सहाय बन्धो ।।1।।
सर्वेषु कार्येषु च वीर वीरे–त्यामंत्रणाद्दर्शनतस्तवार्य ।।
प्रेमकप्रकार्षाद भजाम हर्ष, निराश्रयाश्वाचथ कमाश्रयाम ? ।।2।।
अति प्रियं बान्धव ! दर्शनं ते, सुधांजनं भावि कदास्मदक्ष्णोः ।
नीरागचित्तोऽपि कदाचिदस्मान्, स्मरिष्यसि ? प्रौढगुणाभिराम ! ।।3।।''

हे वीर ! अब हम आप के बिना शून्य वन के समान घर को कैसे जायँ ? हे बन्धो ! अब हम किसके साथ बातचीत कर सुख प्राप्त करेंगे ? हे बन्धो ! अब हम कीसके साथ बैठकर भोजन करेंगे ? आर्य ! सर्व कार्यो में

वीर वीर कहकर आप के दर्शन से तथा प्रेम के प्रकर्ष से हम अत्यानन्द प्राप्त करते थे, परन्तु निराश्रित हुए अब हम किसका आश्रय लेंगे ? तथा हे बान्धव ! हमारी आंखों को अमृतांजन के समान अति प्रिय आप का दर्शन अब हमें कब होगा ? हे प्रोढ गुणों से शोभनेवाले ! निराग चित्त होते हुए भी क्या आप कभी हमें याद करेंगे ? इस प्रकार बोलते हुए अश्रु पूर्ण नेत्र हो बड़े कष्ट से नन्दीवर्धन वापिस घर गये ।

अब दीक्षा के समय देवों ने जो प्रभु की गोशीर्षचंदन और पुष्पादि से पूजा की थी उसकी सुगन्ध प्रभु के शरीर पर चार महीने से भी कुछ दिन अधिक रहीं थीं । उस सुगन्ध से आकर्षित हो अनेक भ्रमर प्रभु के शरीर पर डंक मारते हैं । कितने एक युवक प्रभु के पास आकर सुगन्ध गुटिकायें मांगते हैं परन्तु प्रभु तो मौन रहते हैं इससे वे प्रभु को उपसर्ग करते हैं । युवतीं स्त्रियां भी प्रभु को अत्यन्त रूपवान् और सुगन्धित शरीरवाला देख कामविवश होकर अनुकूल उपसर्ग करतीं हैं, परन्तु प्रभु मेरूपर्वत के समान निश्चल होकर सब कुछ सहन करते हुए विचरते हैं । उस दिन जब दो घड़ी दिन बाकी रहा था तब प्रभु कुमारग्राम में पहुंचे और वहां हीं रात्रि को काउसग्ग ध्यान में रहे ।

उपसर्गों की शुरूआत

उस समय जहां प्रभु खड़े थे वहां हीं हल चलानेवाला एक ग्वाला सारा दिन हल चलाकर संध्या समय बैलों को प्रभु के पास छोड़कर घर पर गायें दुहने चला गया । वापिस लौट कर उसने प्रभु से पूछा कि- हे

For Private and Personal Use Only

आर्य ! मेर बैल कहां हैं ? प्रभु न बोले । यह समझ कर कि इन्हें मालूम नहीं है वह जंगल में उन्हें ढूंढने लगा । बैल इधर उधर चर कर थोड़ी सी रात्रि रहने पर प्रभु के पास आ बैठे । रात भर भटक कर ग्वाला भी वहां आया और बैलों को देख वह विचारने लगा कि इसे खबर थी तथापि मुझे सारी रात भटकाया । इस विचार से क्रोधित हो रस्सा उठा कर प्रभु को मारने के लिए दौड़ा । उसी वक्त इंद्र ने अवधिज्ञान से जानकर ग्वाले को शिक्षा दी ।

उस समय इंद्र ने प्रभु से प्रार्थना की–भगवान् ! आपको बहुत उपसर्ग होनेवाले हैं, अतः सेवा करने के लिए मैं आपके पास रहूं तो ठीक है । प्रभुने कहा कि–हे देवेंद्र ! ऐसा कदापि न हुआ, न होता है और न होगा, तीर्थंकर किसी देवेंद्र या असुरेंन्द्र की सहायता से केवलज्ञान प्राप्त नहीं करते, किन्तु अपने ही पराक्रम से प्राप्त करते हैं । तब इंद्र मरणान्त उपसर्ग टालने के लिए प्रभु की मौसी के पुत्र सिद्धार्थ नामक व्यन्तर देव को प्रभु की सेवा में छोड़ गया ।

फिर प्रातःकाल होने पर कोल्लाग नामक सन्निवेश में प्रभु ने बहुलनामा ब्राह्मण के घर पात्र सहित धर्म की प्ररूपणा करनी है यह विचार कर प्रथम पारणा वहां गृहस्थ के पात्र में परमान्न (खीर) से किया ।

उस समय देवों ने पांच दिव्य प्रगट किये– 1. वस्त्रों की वर्षा की 2. सुगंध जल से पृथ्वी सिंचन की 3. पुष्पवृष्टि की 4. देवदुंदुभि बजाई 5. अहोदानंमहोदानं की घोषणा की, बाद साडे बारह करोड सौनैया

की वर्षा की ।

वहां से प्रभु विहार कर मोराकनामा सन्निवेश पधारे, वहां सिद्धार्थ राजा का मित्र दुइज्जंत तापस रहता था उसके आश्रम में पधारे । भगवान को देखकर तापस सामने आया, पूर्व परिचय के कारण उससे मिलने के लिए प्रभु ने हाथ पसार दिये । उसकी प्रार्थना से प्रभु एक रात वहां रहकर निरागचित्त होते हुए भी उसके आग्रह से वहां चातुर्मास रहने का मंजूर कर अन्यत्र विहार कर गये । आठ मास तक विचर-विचर कर फिर वहां आ गये । कुलपति द्वारा दी हुई एक घास की कुटिया में चातुर्मास रहे । वहां पर बाहर घास न मिलने से अन्य तापसों द्वारा अपनी अपनी झोपड़ी से निवारण की हुई गायें निःशंकतया प्रभु की झोंपड़ी का घास खाने लगीं । झोंपड़ी के स्वामी ने कुलपति के पास फरयाद की । कुलपति आकर प्रभु को कहने लगा कि-हे वर्धमान ! पक्षी भी अपने अपने घोसलें का रक्षण करने में समर्थ होते हैं, फिर आप राजपुत्र होकर अपने आश्रम को रक्षण करने में क्यों असमर्थ हैं ? प्रभु ने विचारा कि मेरे यहां रहने से इसे अप्रीति होती है, यह विचार आषाढ शुदि पूर्णिमा से लेकर केवल पन्द्रह दिन गये बाद वर्षाकाल में ही प्रभु पांच अभिग्रह धारण कर अस्थिग्राम की ओर चले गये । वे पांच अभिग्रह ये हैं ।

जहां किसी को अप्रीति पैदा हो ऐसे स्थान में न रहूंगा 1, सदैव प्रतिमाधारी हो कर रहूंगा 2, गृहस्थी का विनय न करूंगा 3, सदा मौन रहूंगा 4, और हमेशा हाथ में ही आहार करूंगा 5 ।

For Private and Personal Use Only

श्रमण भगवन्त श्री महावीरस्वामी एक वर्ष और एक मास तक वस्त्रधारी रहे, इसके बाद वस्त्र रहित रहे एवं हाथ में हीं आहार करते रहे, प्रभु का वस्त्र रहित होना निम्न प्रकार है ।

प्रभु के दीक्षा लेने पर एक वर्ष और एक मास बींते बाद दक्षिण वाचाल नामा नगर के पास सुवर्ण बालुका नामा नदीं के किनारे कांटों में उलझ कर आधा देवदूष्य वस्त्र गिर जाने पर प्रभु ने सिंहावलोकन से पींछे दृष्टि कीं । यहां कितने एक कहते हैं कि प्रभु ने ममता से पींछे देखा था । कितनेक कहते है कि वह वस्त्र शुद्ध भूमि पर पडाया शुद्ध पर यह जानने के लिये पींछे देखा था कितने एक कहते हैं कि हमारी संतति में वस्त्र पात्र सुलभ होगा या दुर्लभ यह जानने के लिए पींछे देखा था । कईओं का मत हैं कि वस्त्र कांटों में उलझने से अपना शासन कंटकबहुल होगा यह विचार स्वयं निर्लोभीं होने से वह अर्ध वस्त्र उन्होंने फिर वापिस नहीं लिया ।

वह अर्ध वस्त्र प्रभु के पिता का मित्र एक ब्राह्मण उठा ले गया । आधा वस्त्र प्रभु ने प्रथम हीं उसे दे दिया था, वह वृत्तान्त इस प्रकार है–वह ब्राह्मण दरिद्रीं था और जब प्रभु ने वर्षीदान दिया तब वह परदेश चला गया हुआ था। दुर्भाग्यवश परदेश से खालीं हाथ आया, तब उसकी स्त्रीं ने तर्जना कीं कि हे–दुर्भाग्यशिरोमणि ! जब श्रीं वर्धमान ने सुवर्ण कीं वृष्टि कीं तब तूं परदेश चला गया और वहां से भीं अब खालीं हाथ आया ? अतः मेरे सामने से दूर चला जा, मुझे मुख न दिखला, अथवा जा अब भीं उसीं जंगम कल्पवृक्ष के पास जा कर याचना

कर । जिसने प्रथम दान दिया है वही अब भी देने में समर्थ है, क्योंकि पानी के अर्थी जब सूखी हुई नदी खोदते हैं तब वह भी उन्हें पानी देती है । इस तरह स्त्री के वचनों से प्रेरित हो वह ब्राह्मण प्रभु के पास आकर प्रार्थना करने लगा–हे प्रभो ! आप जगत के उपकारी हैं, आपने समस्त जगत का दारिद्र दूर किया है । मैं निर्भागी उस समय यहां नहीं था और मुझे परदेश में भटकते हुए को भी कुछ नहीं मिला । इस लिए पुण्यहीन, अनाश्रित और निर्धन मैं जगत को वांछित देनेवाले प्रभो ! आप के शरण आया हूं ? संसार का दारिद्र दूर करने वाले के लिये मेरा दारिद्र दूर करना क्या बड़ी बात हैं ? क्यों कि–संपूरिता शेषमहीतलस्य, पयोधरस्यादुभ्तशक्तिभाजः । किं तुम्बपात्रप्रतिपूरणाय, भवेत्प्रयासस्य कणोपि नूनम् ।।1।। जिसने सारे महीतल को भर दिया ऐसे अद्भूत शक्तिशाली मेघ को एक तुंबा भरने में क्या प्रयास करना पड़ेगा ? इस प्रकार प्रार्थना करते हुए उस ब्राह्मण को करूणावन्त भगवन्त ने आधा देवदूष्य वस्त्र दे दिया । यहां पर कितने एक आचार्यो का मत है कि ऐसे दानेश्वरी भगवान ने बिना प्रयोजन वस्त्र का भी जो आधा भाग दान दिया सो प्रभु की संतति में होनेवाली वस्त्र पात्र पर मूर्च्छा को सूचित करता है । दूसरे कहते हैं–प्रथम जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे उसी का वह संस्कार है ।

अब उस ब्राह्मण ने वह अर्ध वस्त्र ले कर उसके किनारे ठीक करने के लिए एक रफूकार को दिखलाया । उस रफूकार ने कहा है विप्र ! तू भी उसी प्रभु के पास जा वह निर्मम और करूणावान् प्रभु शेष आधा वस्त्र भी

For Private and Personal Use Only

तुझे दे देंगे और फिर मैं इसे ऐसा रफूकर दूंगा कि जिस से वे मालूम नहीं होने से उसका एक लाख सुवर्ण मोहरें जितना मूल्य मिल जायगा । अपने दोनों आधा-आधा बांट लेंगे इससे दोनों सुखी हो जायेंगे । इस तरह रफूकार से प्रेरित हो कर वह ब्राह्मण फिर प्रभु के पास आया, परन्तु लज्जावश से मांग न सका और साल भर तक प्रभु के पीछे-पीछे फिरता रहा । जब वह अर्ध वस्त्र स्वयं गिर पड़ा तब वह उसे उठा कर ले गया । इस प्रकार प्रभु ने सवस्त्र धर्म कथन करने के लिये एक वर्ष और एक मास तक वस्त्र धारण किया । इसके बाद जीवन पर्यन्त प्रभु वस्त्र और पात्र बिना ही रहे है ।

सामुद्रिक शास्त्री का प्रसंग

एक दिन गंगा के किनारे विहार करते हुए सूक्ष्म मिट्टी वाले कादव में प्रतिबिम्बित हुई प्रभु की पदपंक्तियों में चक्र, ध्वज, अंकुश आदि लक्षणों को देखकर पुष्प नामक सामुद्रिक विचारने लगा कि-यहां से कोई चक्रवर्ती नंगे पैर चला जा रहा है अतः मैं शीघ्र ही आगे जा कर उसकी सेवा करूं जिस से मेरा भी अभ्युदय हो । यह सोच कर वह शीघ्र ही चल कर पद चिन्हों के अनुसार प्रभु के पास आ पहुंचा । प्रभु को मुंडित देख विचारने लगा कि-अहो ! मैंने तो व्यर्थ ही कष्ट उठा कर सामुद्रिक शास्त्र पढा ! ऐसे लक्षणों वाला भी मुण्डित को कर व्रत कष्ट सहन करता है ? सामुद्रिक शास्त्र असत्य है, इसे अब नदी में ही फैंक दूं । इतने ही में अवधिज्ञान से जानकर तुरन्त ही वहां पर इंद्र आया । उसने प्रभु को नमस्कार कर पुष्पक से कहा कि-हे सामुद्रिक

वेत्ता ! तूं खेद न कर, तेरा शास्त्र सत्य हीं है । इन लक्षणों से ये प्रभु तीन जगत् के पूजनीय और वन्दनीय है, ये सुरासुरों के स्वामी और सर्व प्रकार की संपदाओं के आश्रयभूत तीर्थंकर होंगे । इनका शरीर पसीने के मैल से रहित है, श्वासोश्वास सुगन्धवाला है, रूधिर और मांस गाय के दूध समान सुफेद । इत्यादि इनके बाह्य और अभ्यन्तर सुलक्षणों को कौन गिन सकता है ? इत्यादि कह कर उसे मणि, सुवर्णादि से समृद्धिवान् करके इंद्र अपने स्थान पर चला गया । यह सामुद्रिक शास्त्रवेत्ता भीं हर्षित हो अपने देश गया ।

श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभु बारह वर्ष से कुछ अधिक समय तक काया को नित्य बोसरा कर एवं शरीर पर से ममता को तज कर रहते हैं । उन्हें जो कोई उपसर्ग होता है उसे निश्चलता से सहते हैं । अर्थात् देवकृत, मनुष्यकृत, भोगप्रार्थनारूप अनुकूल उपसर्ग, ताड़नादि प्रतिकूल उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन करते हैं क्रोध ा और दीनता रहित सहते हैं । प्रभु ने जो देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी अनुकूल तथा प्रतिकूल उपसर्ग सहन किये सो कहते हैं ।

शूलपाणि का उपसर्ग तथा भगवान् के दश स्वप्न

प्रभु ने प्रथम चातुर्मास के सिर्फ 15 दिन मोराक नामक सन्निवेश में व्यतीत कर शेष साढ़े तीन महिने अस्थिक ग्राम में व्यतीत किये । वहां शूलपाणि यक्ष के चैत्य में रहे । वह यक्ष पूर्वभव में धनदेव नामक व्यापारी का बैल था । उस व्यापारी की नदी उतरते समय पांच सौ बैलगाड़ियां कींचड़ में फस गई । तब उस बैल से उल्लसित

वीर्यवान् होकर उस बैलने बांई धुरा में जुड़कर तमाम गाड़ियां निकाल दी । उस परिश्रम से उस बैल की सांधायें टूट गई और वह अशक्त हो गया । उसे अशक्त समझ कर धनदेव व्यापारी ने वर्धमान ग्राम में जाकर ग्राम के मुखियों को उसके लिए घास पानी के वास्ते द्रव्य देकर उसे वहां हीं छोड़ दिया । परन्तु गांव के उन आगे वालों ने उस बैल की बिलकुल सारसंभाल न की और वह भूख प्यास से पीडित हो शुभ अध्यवसाय से मरकर व्यन्तरजाति का देव हो गया । पूर्वभव का वृत्तान्त यादकर उसने क्रोध से गांव में मारी फैलाकर अनेक मनुष्यों को मार डाला । कितनों का अग्नि संस्कार किया गया ? कितनेक यौं हीं मुरदे पडे रहने से उनकी हड्डियों के समूह से उस गांव का अस्थिक ग्राम नाम पड गया । शेष बचे हुए लोगों ने उसकी आराधना की उससे प्रत्यक्ष होकर उसने कहने से उसका मंदिर और मूर्ति बनवाई । और डर के मारे लोग उसकी पूजा करने लगे । प्रभु पक्ष को प्रतिबोध करने के लिए उसके चैत्य में पधारें । लोगों ने कहा कि–इसके चैत्य में जो रात को रहता है उसे यह मार डालता है । इस तरह लोगों के निवारण करने पर भीं प्रभु रात को वहां हीं रहे । उसने प्रभु को डराने के लिए पृथ्वी फट जाय ऐसा अट्टहास्य किया । फिर हाथीं और सर्प का रूप धारण कर दुःसह उपसर्ग किया । तथापि प्रभु जरा भीं क्षोभित न हुए । यह देख उसने दूसरे के प्राण जायें ऐसीं प्रभु के मस्तक में, कान में, नासिका में, नेत्रों में, पीठ में नखों आदि सुकुमार स्थानों में घोर वेदना शुरू की । ऐसा करने से भीं प्रभु को निष्प्रकंप देख कर बोध को प्राप्त हुआ । उसीं समय सिद्धार्थ व्यन्तर देव वहां आकर कहने लगा –हे निर्भागी दुष्ट शूलपाणि ! तुंने यह क्या

For Private and Personal Use Only

किया ? जो इंद्र के भी पूज्य की आशातना की ? यदि इंद्र इस बात को जान लेगा तो तेरे इस स्थान का भी नाश कर देगा । यह सुनकर भयभीत हो प्रभु को पूजने लगा, गानतान सहित नाचने लगा । यह सुनकर लोगों ने विचारा कि दुष्ट ने प्रभु को मार डाला है और इसलिए गाता तथा नाचता है ।

प्रभु ने कुछ कम रात्रि के जो चारों पहर तक वेदना सही थीं उससे प्रातःकाल उन्हें क्षणवार निंद्रा आ गई । प्रभात होने पर लोग इकट्ठे हुए, उस वक्त वहां उत्पल और इंद्रशर्मा नामक अष्टांग निमित्त को जानेवाले नेमित्तक भी आये । उन सबने प्रभु को दिव्य, गन्ध, पुष्पादिक से पूजित देख हर्षित हो नमस्कार किया ।

उत्पल बोला–हे प्रभो ! आपने रात्रि के अन्त में जो दश स्वप्न देखे हैं उनको फल आप तो जानते ही हैं तथापि मैं कहता हूं । कि जो आपने तालपिशाच को मारा इससे आप थोड़े ही समय में मोहनीय कर्म को नष्ट करेंगे । जो आपने सेवा करता श्वेत पक्षी देखा इससे आप शुक्लध्यान को ध्यायेंगे । जो आपने सेवा करते हुए चित्रकोकिल को देखा इससे आप द्वादशांगी का अर्थ विस्तारित करेंगे । जो आपने सेवा करते गायों को देखा है इससे साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप चतुर्विध संघ आप की सेवा करेगा । जो आपने समुद्र तरना देखा है इससे संसार सागर तरेंगे । जो आपने उदय होता हुआ सूर्य देखा इससे आप शीघ्र ही केवलज्ञान को प्राप्त करेंगे । जो आपने अपनी आंतों से मानुषोत्तर पर्वत को वेष्टित देखा है इससे आपकी तीन लोक में कीर्ति व्याप्त होगी । जो आपने अपने के को मंदराचल के शिखर पर चढ़ा देखा इससे आप सिंहासन पर बैठकर देव

For Private and Personal Use Only

और मनुष्यों की पर्षदा में धर्मदेशना देंगे । आपने जो देवों से अलंकृत पद्मसरोवर देखा इससे चारों निकाय के देव आप की सेवा करेंगे और आपने जो मालायुगल देखा उसका अर्थ मुझे मालूम नहीं होता । तब भगवान ने कहा–हे उत्पल ! जो मैंने दो माला देखीं हैं उससे मैं दो प्रकार का धर्म कथन करूंगा, एक साधु धर्म और दूसरा श्रावक धर्म । फिर उत्पल भी प्रभु को वन्दन कर चला गया । वहां पर आठ अर्ध मासक्षमण द्वारा चातुर्मास पूर्ण कर प्रभु मोराक सन्निवेश में गये । वहां प्रतिमा धारण कर ठहरे हुए प्रभु की महिमा बढ़ाने के लिए सिद्धार्थ व्यन्तर ने उनके शरीर में प्रवेश किया । निमित्त बतलाने से प्रभु की महिमा पसरी । इस तरह प्रभु की महिमा देख ईर्षा से वहां रहते हुए अछंदक नामा एक नैमित्तिक ने प्रभु से तृण छेद के विषय में प्रश्न करने पर सिद्धार्थ ने कहा कि–यह तृण छेदन नहीं होगा । यों कहने पर ज्यों ही वह तृण छेदन करने लगा त्योंही उपयोग पूर्वक वहां आकर इंद्र ने उसकी अंगुली छेदन कर दी । फिर रूष्ट हुए सिद्धार्थ ने लोगों से कहा कि–यह निमित्तिया चोर है । प्रमाण पूछने पर कहा कि इसने वीरघोष कर्मकर के दश पल प्रमाणवाला बलटोया चुराकर खजूर के वृक्ष नीचे दबाया हुआ है । तथा इंद्र शर्मा का बकरा भी यही खा गया है और उसकी हड्डियां इसने अपने घर के सामनेवाली बेरी के नीचे दबा दी हैं । इसका दूसरा दूषण तो मुख से कहा नहीं जा सकता, वह इसकी स्त्री ही सुनायेगी । मनुष्यों ने उसके घर जाकर स्त्री से पूछा तो वह बोली – हे मनुष्यों ! जिसका मुख भी न देखना चाहिये ऐसा यह दुष्ट है । क्यों कि यह अपनी भगिनी को भी भोगता है । मिसरानी उस दिन

अपने पति से लड़ी हुई थी । इस बात से अत्यन्त लज्जित हो वह नैमित्तिक एकान्त में प्रभु के पास आकर बोला-प्रभो ! आप तो विश्वपूज्य हो और सर्वत्र पूजा पाओगे परन्तु मेरी आजीविका तो यही ही है । प्रभु उसकी अप्रीति जान वहां से विहार कर गये ।

चंडकौसिक का उपसर्ग

वहां से श्वेताम्बनगरी की तरफ जाते हुए लोगों के निषेध करने पर भी कनकखल नामक तापस के आश्रम में प्रभु चंडकौशिक को प्रतिबोध करने के लिए पधारें ।

वह चंडकौशिक पूर्वभव में महातपस्वी साधु था । पारने के दिन गोचरी जाते हुए मेंडकी की विराधना हो गई थी, उसका प्रायश्चित पूर्वक प्रतिक्रमण करने के लिए ईर्यापथिकी प्रतिक्रमण के समय, गोचरी प्रतिक्रमण के वक्त संध्या प्रतिक्रमण के समय एवं तीन दफा किसी छोटे शिष्य ने उस साधु को याद करा देने से वह साधु क्रोधित हो वह उस छोटे शिष्य को मारने के लिए दौड़ा । परन्तु बीच में एक स्तंभ से टकरा कर मरके ज्योतिष देवतया उत्पन्न हुआ । वहां से चवकर उस आश्रम मे पांच सौ तापसों का चंडकौसिक नामा महन्त बना । वहां पर भी आश्रम के फलों को तोड़ते हुए राजकुमारदिकों को देख गुस्से होकर उन्हें मारने के लिए हाथ में कुल्हाड़ी लेकर पीछे दौड़ा, परन्तु रास्ते के एक कुए में गिर गया गिर जाने से क्रोध युक्त मरकर उसी आश्रम में पूर्वनामवाला दृष्टिविष सर्प बना । वह सर्प प्रभु को ध्यानस्थ अपने बिल पर खड़ा देख क्रोधायमान हो सूर्य की ओर देख देखकर प्रभु

For Private and Personal Use Only

पर दृष्टि ज्वालायें फेंकने लगा और दृष्टि ज्वाला फेंककर इस विचार से कि इसके गिरने पर मैं अब दब न जाऊं, पीछे हट जाता है । परन्तु प्रभु को निश्चल ध्यानस्थ देख कर अत्यन्त क्रोधातुर हो उसने प्रभु को डंक मारा तथापि प्रभु को अव्याकुल देख और उनके पैर से दूध के समान सफेद खून निकला देखकर तथा ''बुज्झ बुज्झ चंडकौसिया'' ऐसे प्रभुवचन सुनकर विचार करते हुए उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ । अब वह प्रभु को तीन प्रदक्षिणा देकर अहो ! करूणासागर प्रभु ने मुझे दुर्गतिरूप कूप में से निकाल लिया इत्यादि विचार करता हुआ अनशन कर एक पक्ष तक अपने बिल में मुह डालकर शान्त रहने लगा तो उस मार्ग से जाती हुई घी बेचनेवाली स्त्रियों ने उस पर घी के छांटे डालकर उसकी पूजा की । उस घी आदि की सुगन्ध के कारण वहां चींटिया आई अनेकानेक चींटियों से वह सर्प अत्यन्त पीडित होता हुआ; पर प्रभु की दृष्टिरूप अमृत से सिंचित हो मृत्यु पाकर वह सहस्त्रार देवलोक में देव बना ।

प्रभु वहां से अन्यत्र विहार कर गये । उत्तर वाचाला में नागसेन ने प्रभु को क्षीर से पारणा कराया । वहां पर पंच दिव्य प्रगट हुए । वहां से श्वेताम्बी नगर में परदेशी राजा ने प्रभु की महिमा की वहां से सुरभिपुर जाते हुए प्रभु को पांच रथयुक्त नैयका गोत्रवाले राजाओं ने वंदन किया वहां से प्रभु सुरभिपुर गये । वहां गंगा नदी के किनारे सिद्धयात्र नाविक लोगों को नाव पर चढ़ा रहा था, प्रभु भी उस नाव में चढ़ गये । उस वक्त उल्लू का शब्द सुनकर क्षेमिल नामक निमित्तियेने कहा कि आज हमें मरणांत कष्ट आयगा परन्तु (प्रभु की तरफ इशारा कर के) कहा कि इस महापुरूष के प्रभाव से उस संकट का नाश होगा । गंगा नदी उतरते समय

प्रभु के त्रिपृष्ठ के भव में मारे हुये सिंह के जीवने सुदंष्ट नामक देव ने नाव को डुबो देने का प्रयत्न किया, परन्तु कंबल, शंबल नामक नागकुमार देवों ने आकर उस विघ्न को दूर किया । उन कंबल शंबल की उत्पत्ति इस प्रकार है-

मथुरा नगरी में साधुदासी और जिनदास नामक स्त्री भरतार रहते थे । वे परम श्रावक थे, पांचवे परिग्रह व्रत में उन्होंने चौपद पशु सर्वथा न रखने का परित्याग किया था । एक ग्वालन उनके घर हमेशा दूध दही दे जाती थी, साधु दासी उसकी एवज में यथोचित द्रव्य दे देती थी, इस प्रकार उनमें अत्यन्त प्रेमभाव हो गया । एक दिन उस ग्वालन के घर विवाह का प्रसंग आ गया अतः उनसे उन दोनों को निमंत्रण दिया । उन्होंने कहा कि हम ब्याह में तो तेरे घर नहीं आ सकते, परन्तु ब्याह में जो सामग्री चाहिये सो हमारे घर से ले जाना । उनसे मिले हुए चंद्रवा, वस्त्र, आभूषणादि से उस ग्वालन का विवाह अच्छा उत्कृष्ट हो गया । इससे ग्वाला और ग्वालनने प्रसन्न होकर अत्यन्त मनोहर और समान उम्रवाले दो बाल वृषभ-बछड़े लाकर उन्हें दे दिये । उनके अनेकबार इंकार करने पर भी वे जबरदस्ती उनके घर बांध गये । जिनदास ने विचारा कि यदि अब इन्हें वापस दे दूंगा तो खस्सी करने और भार ढोने आदि से वहां दुःख ही पायेंगे । इस विचार से वह प्रासुक तृण जल आदि से उनका पोषण करने लगा । उनके बांधने की जगह के पास ही पोशाल थी । जब अष्टमी आदि पर्व के दिन जिनदास पौषध लेकर पुस्तक पढ़ता तब वे भी सुनते और इससे वे भद्रिक बन गये । अब जब कभी वह श्रावक उपवास कर के पौशाल में बैठता है तब उस दिन वे बैल भी चारा नहीं खाते । इससे जिनदास को उन पर अधिक प्रेम हो गया । एक दिन

For Private and Personal Use Only

जिनदास को घर पर न देख उसकी आज्ञा बिना ही उसका एक मित्र उन्हें अति बलवान् और सुन्दर समझ कर भांडीरवन यक्ष की यात्रार्थ गाड़ी में जोडने कि लिए ले गया । उन बैलों ने आज तक कभी गाड़ी का जुरा देखा भी न था । उसने अधिक भार भर गाड़ी में जोड़कर उन्हें भार पीटकर ऐसे हांके कि जिससे अनहिल बछड़ों की सांधे टूट गई । यात्रा कर चुपचाप ही उन्हें जिनदास के घर बांध गया । जिनदास ने आकर देखा तो उनकी आंखों से पानी पड़ रहा था । यह देख जिनदास की भी आंखों में आसुं निकल आये । अन्तिम समय जान कर जिनदास ने उन्हें आहार पानी का परित्याग करा कर नवकारादि से उनकी निर्यामना करी । वे वहां से मृत्यु पाकर नागकुमार देव बने । वे नये ही उत्पन्न हुए थे, अवधिज्ञान से पूर्वोक्त वृत्तांन्त जान तुरन्त आकर एकने नाव का रक्षण किया और दूसरे ने उस सुदंष्ट्र नामक देव को निवारण किया । फिर प्रभु के गुणगान करते तथा नाचते हुए महोत्सव पूर्वक सुगन्ध जल वृष्टि एवं पुष्प वृष्टि करके वे अपने स्थान पर चले गये ।

दूसरा चातुर्मास भगवान् ने राजगृह नगर में नालंदा नामक मुहल्ले में एक जुलाहे की शाला के एक भाग में उसकी आज्ञा लेकर प्रथम मासक्षमण तप करके किया । वहां पर मंखलि नामक मंख (चित्रकला जानने वाले भिक्षाचर विशेष) की सुभद्रा नामा स्त्री की कुक्षी से बहुल नामक ब्राह्मण की गौशाला में पैदा होने से गोशालक नामधारी मंखकिशोर प्रभु के पास आया । वहां पर प्रभु को मासक्षमण के पारणे में विजय नामक सेठ ने कूर आदि विपुल भोजन विधि से बोहराया, इससे वहां प्रकट हुए पंच दिव्यादि महिमा को देख

उस गोशालक ने प्रभु से कहा कि मैं आपका शिष्य हूं । फिर दूसरे पारणे में नन्द सेठ ने पक्वान आदि से, तीसरे पारणे में सुनंन्द सेठ ने परमान्न (खीर) आदि से प्रभु को आहार कराया । चौथे पारणे को प्रभु कोल्लाग सन्निवेश में पधारे । वहां बहुल नामक ब्राह्मण ने प्रभु को खीर से पारणा कराया । वहां भी पंच दिव्य प्रकट हुए ।

अब गोशाला प्रभु को उस जुलाहे की शाला में न देख सारे राजगृह नगर में उन्हें ढूंढता फिरा । कहीं पर भी न मिलने पर ब्राह्मणों को उपकरण देकर और मुख तथा मस्तक मुंडवा कर भगवान से कोल्लाग में जामिला और ''अब से मुझे आपकी दीक्षा हो'' यों कह कर प्रभु के साथ ही रहने लगा । प्रभु भी उस शिष्य के साथ सुवर्णखिल गांव की ओर चले । मार्ग में ग्वाले एक बड़ी हांडी में खीर पका रहे थे । यह देख गोशाला प्रभु से बोला कि यहां ही भोजन करके चलेंगे । सिद्धार्थ ने कहा कि इन की हंडिया फूट जायगी, गोशाले ने उन से कह दिया अतः उन के अनेक प्रयत्न करने पर भी हांडी फूट गई । इससे गोशाला ने यह मत निश्चय कर लिया कि होनहार होती ही है । वहां से प्रभु ब्राह्मणग्राम में गये । वहां नन्द और उपनन्द इन दो भाईयों के नाम से दो मुहल्ले थे । प्रभु ने नन्द के मुहल्ले में प्रवेश किया, प्रभु को नन्द ने बोहराया । गोशाला उपनन्द के मुहल्ले में गया था, वहां उसे उपनन्द ने वासी अन्न खिलाया, इस से क्रोधित हो गोशाला ने शाप दिया कि यदि मेरे धर्माचार्य का तपतेज हो तो इस का घर जल जाय । प्रभु की महिमा देखने के लिए समीपवर्ती देवों ने उसका घर जला दिया।

For Private and Personal Use Only

तीसरा चातुर्मास – वहां से प्रभु चंपा नगरी में पधारे । वहां द्विमासक्षपण करके तीसरा चातुर्मास रहे । अन्तिम द्विमास का पारणा चंपा के बाहर करके कोल्लाग सन्निवेश में गये । वहां एक शून्य घर में ध्यानस्थ रहे । गोशाला ने भी उसी घर में रह कर सिंह नामक एक ग्रामणी पुत्र को विद्युन्मती नामा दासी के साथ क्रीड़ा करते देख उसकी हंसी की । उसने भी गोशाला को पीटा । फिर वह प्रभु को कहने लगा–आपने मुझे पिटते हुए को क्यों न छुडाया ? सिद्धार्थ ने कहा कि फिर ऐसा न करना, फिर प्रभु पात्तालक तरफ गये । वहां भी एक शून्य घर में रहे । वहां भी गोशाला ने स्कंदक को अपनी दासी स्कंदिला के साथ क्रीडा करते देख हंसी की और पूर्वोक्त प्रकार से मार खाई । फिर प्रभु कुमारक सन्निवेश में जाकर चंपारमणीय नामक उद्यान में ध्यानस्थ रहे । वहां श्री पार्श्वनाथ प्रभु के शिष्य मुनिचंद्र मुनि बहुत से शिष्य परिवार सहित एक कुमार की शाला में रहे हुए थे । उनके साधुओं को देख गोशाला ने पूछा कि तुम कौन हो ? उन्होंने कहा हम निर्ग्रन्थ हैं । गोशाला बोला–कहां हमारा धर्माचार्य और कहां तुम निर्ग्रन्थ ? उन्होंने कहा जैसा तू है वैसा ही तेरा धर्माचार्य होगा । गोशाला गुस्से होकर बोला–मेरे धर्माचार्य के तप तेज से तुम्हारा आश्रम जल जाय । वे बोले–हमें इस बात का डर नहीं है । फिर उसने प्रभु के पास आकर सब वृतान्त कह सुनाया । सिद्धार्थ ने कहा कि मुनियों का आश्रम नहीं जला करता । रात्रि को जिनकल्प की तुलना करते काउसग्ग में रहे हुए मुनिचंद्र को कुमार ने चोर की बुद्धि से मार डाला । मुनिचंद्र अवधिज्ञान प्राप्तकर मृत्यु पाकर स्वर्ग में गये । उसकी

महिमा के लिए देवों ने वहां प्रकाश किया । तब गोशाला बोला कि देखो अब उनका उपाश्रय जल रहा है । सिद्धार्थ ने उसे फिर सत्य घटना सुनाई तो वह उनके शिष्यों को वहां धमका कर आया । प्रभु फिर चौरों की ओर गये । वहां पर प्रभु और गोशाला को जासूस समझकर पकड लिया । प्रथम गोशाला को अभी हवालत में डाला ही था कि इतने में ही वहां पर उत्पल नामक नैमित्तिये की सोमा और जयन्ती नामा बहिनें आ गई, जो संयम लेकर पालने में असमर्थ हो परिव्राजिका बन गई थीं । उन्होंने प्रभु को देख पहिचान लिया और उस संकट से बचाया । वहां से प्रभु पृष्टचंपा तरफ गये ।

चौथा चातुर्मास–भगवान ने चार मासक्षपण तप करके पृष्टचम्पा में किया । प्रभु को पारणा कराने के लिए जीरण शेठ भावना भाता था परन्तु पूर्ण सेठ के यहां पारणा हुआ । चौमासा बीतने पर प्रभु कायंगल सन्निवेश में जाकर श्रावस्थी नगरी में पधारे । वहां बाहर के भाग में कायोत्सर्ग ध्यान में रहे । वहां सिद्धार्थ ने गोशाला से कहा कि आज तूं मनुष्य का मांसभक्षण करेगा । गोशाला भी इसका निवारण करने को भिक्षा के लिए बनियों के घर में गया । वहां एक पितृदत्त नामा वणिक रहता था । उसकी स्त्री सदैव मृतक बच्चे को जन्म देती थीं । उसे शिवदत्त नामक निमित्तिये ने बच्चे जीने का उपाय बतलाया कि तुम्हारे मृतक बच्चे का मांस खीर में मिलाकर किसी भिक्षुक को खिलाना । उसने उसी विधिपूर्वक गोशाला को खिलाया और घर जला देने के डर से घर का दरवाजा भी बदल दिया । गोशाला जब उस बनिये के घर भोजन

For Private and Personal Use Only

कर प्रभु के पास आया तब सिद्धार्थ ने उसे सब वृत्तान्त सुनाया । विश्वास करने के लिए उसने वमन किया, सही मालूम होने से क्रोधित हो उसका घर जलाने को चल पड़ा । घर न मिलने से प्रभु के नाम से वह मुहल्ला ही जला दिया । वहां से प्रभु हरिद्र सन्निवेश से बाहर हरिद्र वृक्ष के नीचे ध्यानमुद्रा में रहे । वहां ही कितने एक राहगीर ठहरे हुए थे, उन्हों ने प्रभु के पैरों को चुल्हा बनाकर आग जला कर उस पर खीर पकाई । प्रभु ध्यान मुद्रा में अचल रहने से उनके पैर जल गये । यह देख कर गोशाला वहां से भाग गया । वहां से प्रभु मंगलानामा गांव में गये और वासुदेव के मंदिर में ध्यान लगा कर रहे । वहां बालकों को डराने के लिए आंखे फाड़ कर चेष्टा करते हुए देख गोशाला को उनके मां बापों ने खूब पीटा और मुनिपिशाच समझ कर छोड़ दिया । वहां से प्रभु आवर्त्त ग्राम में बलदेव के मंदिर मे ध्यान मुद्रा से रहे । वहां पर गोशाला बालकों को डराने के लिए मुखविकार करने लगा, उनके मां बापों ने सोचा कि यह पागल है इसको मारने से क्या फायदा ? इसके गुरू को ही मारना चाहिये । यह विचार कर जब वे प्रभु को मारने आये तब तुरन्त ही बलदेव की मूर्ति हल उठाकर सामने हो गई । इस चमत्कार से वे सब के सब प्रभु के चरणों में पड़ गये । वहां से प्रभु चोराक सन्निवेश में पधारे । वहां एक मंडप में भोजन पक रहा था, यह देख गोशाला बारंबार नीचे नमकर देखने लगा, तब उन लोगों ने उसे चोर समझकर पीटा । गोशाला ने क्रोधित हो प्रभु के नाम से उनका मंडप जला दिया । वहां से प्रभु कलम्बुका सन्निवेश प्रति गये । वहां पर मेघ और कालहस्ति नामा दो भाई रहते थे । कालहस्तिने प्रभु को

उपसर्ग किया और मेघ ने उन्हें यह जान कर प्रभु से क्षमा मांगी । फिर प्रभु क्लिष्ट कर्मों की निर्जरा के लिए लाट देश की ओर पधारे । वहां हिलनादि बहुत से उपसर्ग मनुष्यों की तरफ से हुए । फिर पूर्णकलश नामा अनार्य ग्राम में जाते हुए मार्ग में प्रभु को दो चोर मिले । वे प्रभु को देख अपशुकन की बुद्धि से तरवार से मारने को दौड़े । उसीं वक्त इंद्र ने उपयोग से यह देख उसका निवारण किया ।

पांचवा चौमासा – भगवान ने भद्रिका नगरी में किया । और वहां पर चार मासक्षपण का तप किया । चौमासा व्यतीत होने पर क्रम से तम्बाल ग्राम में पधारे । वहां से पार्श्वनाथ प्रभु के संतानीय नन्दिषेण नामक आचार्य बहुत से परिवार सहित काउस्सग ध्यान से रहे हुए थे । रात्रि के समय कोतवाल के पुत्र ने उन्हें चोर समझ कर भाले से मार दिया । वे अवधिज्ञान प्राप्त कर देवलोक में गये वहां पर भीं गोशाला का वृत्तांन्त पूर्वोक्त मुनिचंद्र के समान ही समझ लेना चाहिये । वहां से प्रभु कूपिक सन्निवेश पधारे । वहां जासूस की शंका से कोतवालों ने उन्हें पकड लिया । परन्तु पार्श्वनाथ प्रभु की शिष्या जो बाद में परिव्राजिका हो गयीं थीं विजया और प्रगल्भाने प्रभु को पहचान लेने से छुडाया । वहां से गोशाला प्रभु से जुदा होकर दूसरे मार्ग से कहीं जा रहा था । रास्ते में उसे पांच सौ चोरों ने मामा मामा कह कर पकड लिया और बारीं बारीं से उसके कंधे पर चढने लगे । गोशाला थक जाने से कर उसने विचारा कि इस से प्रभु के हीं साथ रहना ठीक था । अब वह फिर प्रभु को ढूंढने लगा । प्रभु भीं वैशालीं नगरी में जाकर एक शून्य पडीं लुहार की शाला में ध्यानस्थ हो खड़े थे । लुहार छह महिने बीमार

For Private and Personal Use Only

पड़कर उठा था, उसी दिन औजार लेकर शाला में आया, वहां प्रभु को देख अपशकुन बुद्धि से घण उठाकर उन्हें मारने को लपका तब अवधिज्ञान से जान कर इंद्र ने तुरंत वहां आकर उसी घण से लुहार को मार डाला । वहां से प्रभु सामाक सन्निवेश में गये । वहां उद्यान मे विंभेलक यक्ष ने प्रभु की महिमा की । वहां से शालीशीर्ष नामक ग्राम के उद्यान में माह मास में ध्यानस्थ रहे हुए प्रभु को त्रिपृष्ट वासुदेव के भव में अपमानित हुई स्त्री जो व्यन्तरी हुई थी वह तापसीका रूप धारण कर जल से भरी हुई जटाओं द्वारा अन्य से सहन न हो सके ऐसा शीत उपसर्ग करने लगी । परन्तु फिर भी प्रभु को निश्चल देख कर शान्त हो उनकी स्तुति करने लगी । छठ के तप द्वारा उपसर्ग को सहन करते हुए और विशुद्ध होते हुए प्रभु को उस वक्त लोकावधि ज्ञान उत्पन्न हुआ ।

छट्ठा चौमासा – भगवान ने भद्रिकार नगरी में किया । उस में चौमासी तप किया अर्थात् लगातार चार महिने की तपश्चर्या की । उस समय उन्होंने अनेक प्रकार के अभिग्रह धारण किये । अब छः मास के बाद फिर से गोशाला आ मिला । प्रभु बाहर के भाग में पारणा कर फिर ऋतुबद्ध मगध भूमि में उपसर्ग रहित विचरे ।

सातवां चौमासा – भगवान आलंभिका में बिराजे और चौमासी तप किया । बाद में पारणा कर कुण्डग नामा सन्निवेश में ध्यानस्थ्ज्ञ हो वासुदेव के चैत्य में रहे । वहां गोशाला भी वासुदेव की मूर्ति से परांमुख हो मुख प्रति अधिष्टान करके खड़ा रहा, इस से लोगों ने उसे खूब पीटा । वहां से प्रभु मर्द्दन नामक गाम मे जाकर

ध्यानस्थ हो बलदेव के चैत्य में रहे । वहां भी गोशाला बलदेव के मुख में मेहन रख खडा रहा इस से वहां भी उसे खूब मार पडी । दोनों जगहों में उसे लोगों ने मुनि जान कर छोड दिया । क्रम से प्रभु उन्नाग सन्निवेश में गये । मार्ग में सम्मुख आते हुए एक दंतुर पति पत्नी युग्म को देख गोशाला ने उनकी हंसी की कि देखो विधाता कैसा चतुर है–दूर देश में वसनेवाली को भी उसके योग्य ही ढूंढ कर जोडी मिला देता है । इस से खिज कर उन दोनों ने उसे पकड कर खूब पीटा और अन्त मे हाथ पैर बांध उसे बांसों की जाल में डाल दिया । बाद में उसे प्रभु का छत्र धरनेवाला समझ कर बन्धन मुक्त कर दिया । वहां से प्रभु गोभूमि तरफ गये ।

प्रभु ने आठवां चातुर्मास राजगृह में किया । तथा चौमासी तप किया । बाहर पारणा कर फिर अनार्य देश में पधारे ।

नववां चातुर्मास वहां किया और चौमासी तप भी किया । प्रभु को वहां बहोत उपसर्ग हुए । फिर दो मास तक फिर प्रभु वहां ही विचरे । वहां से कूर्मग्राम तरफ जाते हुए मार्ग में एक तिल के पौदों को देखकर गोशाला ने प्रभु से पूछा कि यह पौदों सफल होगा या नहीं ? प्रभु ने कहा कि इसमें रहे हुए पुष्पों के सातों ही जीव मरकर इसी की एक फली में तिल के रूप में पैदा होंगे । यह सुनकर प्रभु का वचन मिथ्या करने के लिए उसने उस तिल के पौदे को उखेड कर एक तरफ रख दिया । उस वक्त नजीक में रहे हुए व्यन्तर देवों ने विचारा कि प्रभु का वचन मिथ्या न होना चाहिये, अतः उन्होंने वहां पर वृष्टि की इससे उस भीगी हुई जमीन में उस पर

For Private and Personal Use Only

गाय का पैर आने से वह पौधा स्थिर हो गया । प्रभु कुर्म ग्राम में गये । वहां पर वैश्यायन तापसने आतापना ग्रहण करने के लिए अपनी जटायें खुली की हुई थी । उनमें बहुत सी जूएं देखकर गोशाला ने उसे ''जूओ का घर'' कहकर उसकी बारंबार हंसी की । इससे उस तापस ने क्रोधित हो गोशाला पर तेजोलेश्या छोड़ी । दयारसके सागर प्रभुने शीतलेश्या द्वारा गोशाले का रक्षण किया ।

फिर मंखलीपुत्र गोशाले ने उस तापस की तेजोलेश्या को देखकर प्रभु से पूछा कि–भगवन् ! यह तेजोलेश्या किस तरह प्राप्त होती है ? प्रभु ने भी अवश्यंभावी भाव के योग से सर्प को दूध पिलाने के समान अनर्थ करनेवाली तेजोलेश्या का विधि उसे शिखलाया–हमेशा आतापनापूर्वक छट्ठ छट्ठ का तप करके एक मुट्ठी उदड़ के उबाले हुए दानों से तथा गरम पानी की एक अंजलि से पारणा करना चाहिये । इस प्रकार नित्य करनेवाले को छह महिने के बाद तेजोलेश्या प्राप्त होती है । अब वहां से सिद्धार्थ नगर को जाते हुए मार्ग में वहीं स्थान आने से गोशाले ने कहा–वह तिल का पौधा सफल नहीं हुआ । प्रभु ने कहा–देख सामने वहीं पौदा है, वह सफल हुआ है । गोशाला ने प्रभु वचनों पर श्रद्धा न रखते हुए उस तिल की फली को फाड़कर देखा, सचमुच ही उसमे सात तिल के दाने देख 'उसी शरीर में वे ही प्राणी फिर से परावर्त्तन कर पैदा होते हैं, ऐसी मति और नियति उसने निश्चल करली । गोशाला अब प्रभु से जुदा हो श्रावस्थी नगरी में एक कुंभार की शाला मे रहकर प्रभु के बतलाये हुए उपाय से तेजोलेश्या को साध कर और दीक्षा छोड़े हुए श्री पार्श्वनाथ संतानीय

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिष्य के पास से कुछ अष्टांग जानकर अहंकार से लोगों में अपने आपको सर्वज्ञ प्रसिद्ध करने लगा ।

दशवां चौमासा प्रभु ने श्रावस्थी नगरी में किया और वहां पर उन्होंने विचित्र प्रकार का तप भी किया ।

संगम देवता के घोर उपसर्ग ।

इस प्रकार अनुक्रम से प्रभु बहुत म्लेच्छोवाली दृढभूमि में पधारे । वहां पेढाल ग्राम के बाहर पोलास के चैत्य में अट्ठम तपपूर्वक प्रभु एक रात्रि की प्रतिमा ध्यान लगा कर रहे । इस समय इंद्र ने अपनी सभा में देवों के समक्ष प्रभु की प्रशंसा करते हुए कहा कि-वीर प्रभु के चित्त को चलायमान् करने के लिए तीन लोक के निवासी भी समर्थ नहीं हैं । इस तरह प्रभु की प्रशंसा सुनकर संगम नामक मिथ्यादृष्टि सामानिक देव ईर्षा से इंद्र के सामने प्रतिज्ञा करने लगा कि-मैं उन्हें क्षणवार में चलायमान् कर दूंगा । यह प्रतिज्ञा कर उसने तुरन्त ही प्रभु के पास आकर प्रथम तो धूल की वृष्टि की जिस से प्रभु के आंख, नाक, कान आदि के विवरछिद्र बन्द हो जाने से वे श्वास लेने को भी असमर्थ हो गये । फिर वज्र के समान तीक्ष्ण मुखवाली चींटियां बनाकर प्रभु के शरीर पर छोड़ी । उन्होंने प्रभु का शरीर छलनी के समान छिद्रवाला कर दिया । एक तरफ से प्रवेश कर दूसरी ओर से निकलने लगीं । इसी प्रकार फिर तेज मुखवाले डांस, तीक्ष्ण मुखवाली घीमेलिका, (कींडियां), बिच्छु, न्योले, सर्प, चूहे आदि के भक्षण से, फिर हाथी, हथनियां बनाकर उनके सूंड द्वारा आघातों से

For Private and Personal Use Only

तथा पैरों के मर्दन से, फिर पिशाचादि का रूप कर उस के अट्टहास्य से, सेर के रूप धारण कर नखों के विदारण आदि से, सिद्धार्थ और त्रिशला के रूपद्वारा करूणाजनक विलाप करने आदि से उसने अनेक अत्यन्त घोर उपसर्ग किये । सैन्य बनाकर प्रभु के चरणों पर बरतन रख नीचे अग्नि सुलगा कर रसोई करने से, चाण्डालों द्वारा प्रभु के कानों और भुजाओं की जड़ में तीक्ष्ण चोंचवाले पक्षियों के पिंजरे लटकाये, वे प्रभु को चौंच मार कर भक्षण करते हैं । फिर ऐसा पवन चलाया कि पर्वतों को भी उखाड़ फेंके, वह प्रभु को उछाल उछाल कर फेंकता है । गोल पवन चलाया जो प्रभु को चक्र के समान भ्रमाता है । फिर उसने प्रभु पर हजार भार प्रमाणवाला कालचक्र छोड़ा कि-जिससे मेरूपर्वत के शिखर भी चूर्ण हो जायें । प्रभु उस से हीचन तक जमीन में धुस गये । फिर उसने प्रभातकाल बनाकर कहा-हे देवार्य ! आप अभी तक क्यों खड़े हैं ? प्रभु तो ज्ञान से जानते थे कि अभी रात्रि बाकी है । फिर देवऋद्धि बनाकर कहा-हे महर्षे ! आप को स्वर्ग या मोक्ष की इच्छा हो तो मांग लो । इस से भी प्रभु को निश्चल देख उसने देवांगनाओं के हावभाव द्वारा उपसर्ग किया । इस प्रकार उसने एक रात्रि में बीस उपसर्ग किये, परन्तु उनसे प्रभु जरा भी विचलित न हुए । यहां कवि कहते हैं कि ''बलं जगद्ध्वंसन रक्षणक्षमं, कृपा च सा संगम के कृतागसि । इतीव संचिंत्य विमुच्य मानसं, रूषेव रोष स्तवनाथ ! निर्ययौ ।।1।। हे प्रभो ! आप का बल जगत का नाश और रक्षण करने में समर्थ है तथापि अपराधी संगम देव पर जो आप की ऐसी दया रही इसी कारण मानो आप पर रोष करके

आप के अन्दर से क्रोध अपने आप निकल कर चल गया । उसने छह महीनों तक प्रभु को शुद्ध आहार न मिलने दिया । छह मास बीतने पर अब संगम देव चला गया होगा यह समझकर एक दिन वज्र नामक ग्राम के गोकुल में गौचरी गये। परन्तु वहां पर भी उस देवकृत अनेषणीय आहार प्रभु ज्ञान से जानकर वापिस लौट आये और ग्राम बाहर ध्यानस्थ मुद्रा में रहे । फिर इतने दिन पीछे पड़ने पर भी उस देवने अवधिज्ञान से लेशमात्र भी प्रभु को विचलित न देख तथा विशुद्ध क्रोधित परिणामवाले देख खिसियाना होकर शक्रेंद्र के डर से प्रभु को वन्दन कर सौधर्म देवलोक का रस्ता पकड़ा। उसी गोकुल में फिरते हुए प्रभु को एक बुढ़िया ग्वालनने खीर का आहार दान दिया इस से वहां पंच दिव्य प्रगट हुए।

इधर जब तक प्रभु को उपसर्ग हुए तब तक सौधर्म देवलोक में रहनेवाले समस्त देव और देवियां आनन्द एवं उत्साह रहित रहे । इंद्र भी गीत नाटकादि तजकर ''इन उपसर्ग का मैं ही कारण बना हूं क्यों कि मेरी की हुई प्रभुप्रशंसा सुनकर ही इस दुष्ट संगमने प्रभु को उपसर्ग किये हैं'' यह विचार कर अत्यन्त दुःखितवाला हो हाथ पर मुख रखकर दीनदृष्टि युक्त उदासीनता में बैठा रहा । अब भ्रष्ट प्रतिज्ञा तथा श्याममुखवाले नीच संगम को आता देख इंद्र ने पराढ़मुख होकर देवों से कहा–हे देवो ! यह दुष्ट कर्मचाण्डाल पापी आ रहा है, इसका दर्शन भी महापापकारी है, इसने हमारा महान् अपराध किया है, क्यों कि इसने हमारे पूज्यस्वामी की कदर्थना की है, वह पापात्मा हमसे तो न डरा परन्तु पाप से भी न डरा इस लिए ऐसे दुष्ट और अपवित्र देव

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को शीघ्र ही स्वर्ग से बाहर निकाल दो । इस प्रकार इंद्र की आज्ञा होने से सुभट देवों ने निर्दयतापूर्वक मुष्टी यष्टी से ताड़ना-तर्जना कर तथा दूसरे देवों द्वारा अंगुली मोड़ने आदि के आक्रोश को सहन करता हुआ, चोर के समान शंकित होकर इधर-उधर देखता हुआ, बुझे हुए अंगार के समान निस्तेज होकर परिवार रहित एकला हड़काये हुए कुत्ते के समान देवलोक में से निकाल दिया हुआ संगम देव मेरूपर्वत के शिखर पर अपना शेष एक सागरोपम का आयु पूर्ण करेगा । उसकी अग्रमहिर्षियां भी इंद्र की आज्ञा से दीनमुख होकर अपने स्वामी के पीछे चली गई । फिर आलंबिका नगरी में हरिकान्त तथा श्वेताम्बिका में हरिसह नामक दो विद्युतकुमार के इंद्र प्रभु को कुशल पूछने आये । श्रावस्ती नगरी में इंद्रने स्कंदक की प्रतिमा में प्रवेश कर प्रभु को नमस्कार किया, इससे प्रभु की बड़ी महिमा हुई । वहां से कोशाम्बी नगरी में प्रभु को वन्दन करने के लिए सूर्य चंद्रमा आये । वाणारसी मे इंद्र, राजगृही में ईशानेंद्र तथा मिथिला नगरी में जनक राजा ने और धरणेद्र ने प्रभु को कुशल पूछा ।

ग्यारवां चौमासा प्रभु का वैशाली नगरी में हुआ । वहां भूतेंद्र ने प्रभु को कुशल पूछा । वहां से प्रभु सुसुमार नामक नगर की ओर गये । वहां चमरेंद्र का उत्पात हुआ । वहां से क्रम से प्रभु कौशाम्बी नगरी में गये । वहां पर शतानिक नामक राजा था, उसकी मृगावती नामा रानी थी, विजया नामा प्रतिहारी थी, वादी नामक धर्मपालक था, गुप्त नामा अमात्य था, उसकी नन्दा नाम की स्त्री थी, वह श्राविका थी और मृगावती की सखी थी । वहां प्रभु ने पोष शुदि प्रतिपदा के दिन अभिग्रह धारण किया ।

For Private and Personal Use Only

भगवान का विलक्षण अभिग्रह

द्रव्य से छाज (सूपडा) के कौने में पड़े हुए उड़द के बांकले हों, क्षेत्र से देनेवाले के पैर देहली के अन्दर और एक पैर देहली से बाहर रखकर खड़ी हों, काल से जब सब भिक्षाचर निवृत्त हो चुके हों, भाव से राजपुत्री पर दासपन प्राप्त हुआ हो, उसका मस्तक मुंडित हुआ हो, पैरों मे बेड़ी पड़ी हों, रूदन करती हो और जिसे अट्ठम का तप भी हो यदि ऐसी कोई स्त्री आहार देगी तो मैं आहार ग्रहण करूंगा । ऐसा घोर अभिग्रह लेकर प्रभु रोज भिक्षा के लिए जाते हैं परन्तु अमात्यादियों के उपाय करने पर भी अभिग्रह पूर्ण नहीं होता ।

उस वक्त शतानिक राजा ने चंपानगरी का भंग किया, वहां के दधिवाहन राजा की धारिणी नामा रानी और उसकी पुत्री वसुमती इन दोनों को किसी एक सुभटने कैद कर लिया । धारिणी को जब उसने यह कहा कि तुझे मैं अपनी पत्नी बनाऊंगा तब वह तो जीभ को चबाकर मुत्यु को प्राप्त हो गई, परन्तु वसुमती को पुत्री कह आश्वासन दे कौशाम्बी में लाकर चौराहे में रख बेचनी शुरू की । वहां के धनावह नामक सेठ ने उसे मोल खरीद कर और चंदना नाम रखकर पुत्रीतया रक्खी । एक दिन चंदना सेठ के पैर धुला रहीं थीं, उस वक्त उसकी चौटी पृथ्वी पर लटकती थी, सेठ ने अपने हाथ से उठाकर उसके केश ठीक कर दिये । यह देख मूलानामा सेठानी ने विचारा कि मैं अब बूढ़ी होने आई हूं इस लिए यह युवती बालिका इस घर की सेठानी बनेगी । इस विचार से उसने चंदना का मस्तक मुंडाकर, पैरों में बेड़ी डालकर, उसे गुप्त स्थान में ताले के अन्दर

रख आप कहीं चली गई । खोज करने पर भी मुश्किल से सेठ को चौथे दिन चंदना का पता चला । वह ताला खोल उसी प्रकार उसको देहली पर बैठाकर तथा एक छाज में पड़े हुए उदड़ के बांकले खाने के लिए देकर उसके पैरों की बेड़ी कटवाने के वास्ते लुहार को बुलाने चला गया उस वक्त कुलीन चंदनाने विचारा-यदि इस वक्त कोई भिक्षाचर आ जावे और उसे कुछ देकर खाऊं तो ठीक हो । पुण्योदय से उसी वक्त अभिग्रहधारी श्री वीरप्रभु पधारे । चंदना हर्षित हो बोली-प्रभो ! ग्रहण करो । परन्तु प्रभु अभिग्रह में सिर्फ रोना न्यून देख वापिस चले । चंदना प्रभु को वापिस लौटते देख इस विचार से कि प्रभु यहां तक आकर भी कुछ लिये बगैर ही पीछे जा रहे हैं खेदपूर्वक रोने लगी । फिर प्रभु ने अपना अभिग्रह संपूर्ण हुआ देख वापिस फिर के चंदना के हाथ से उदड़ के बांकुलं ग्रहण किये । इस तरह पांच दिन कम छ महिने में भगवान का पारण हुआ । यहां पर कवि कहता है कि-

चंदना सा कथ नाम, बालेति प्रोच्यते बुद्धैः । मोक्षमादत्त कुल्माषैर्महावीरं प्रतार्यया ।।1।

पंडित लोग चंदना को बाला क्यों कहते हैं ? क्यों उसने तो उड़द के बांकुलों द्वारा प्रभ वीर को ठगकर मुक्ति ले ली । उस वक्त वहां पंच दिव्य प्रगट हुए, इंद्र भी आया, देवता नाचने लगे, चंदना के मुंडित मस्तक पर केश हो गये, पैर की बेड़ियां ही झांझर बन गई, मृगावती मौसी भी वहां आमिली । तथा सम्बन्ध मालूम होने से वसुधारा में पड़ा हुआ धन शतानीक लेने लगा उसको निवारण कर चंदना की आज्ञा से धनावह को

वह धन देकर और यह चंदना वीर प्रभु की प्रथम साध्वी होगी यों कहकर इंद्र चला गया । फिर अनुक्रम से जृंभिका ग्राम में इंद्र ने प्रभु को नाटयविधि दिखलाकर कहा आपको अब इतने दिन में केवलज्ञान की उत्पत्ति होगी । मेंढिक नामा ग्राम में चमरेंद्र ने प्रभु को कुशल पूछा । वहां से प्रभु चम्पानगरी में पधारे ।

– अंतिम उपसर्ग –

बहारवां चौमासा प्रभु षण्मास नामक ग्राम जाकर बाहर उद्यान में ध्यान लगाकर खड़े रहे । प्रभु के पास एक ग्वाल अपने बैल छोड़कर ग्राम में चला गया । फिर आकर उसने प्रभु से पूछा कि–हे देवार्य ! मेरे बैल कहां है ? प्रभु के मौन रहने से क्रोधित हो उसने प्रभु के कानों में बांस की सलाकायें ऐसी ठोक दी जिस से वे अन्दर परस्पर एक दूसरी से मिल गई और बाहर से अग्रभाग कतर देने से बेमालूम कर दीं । प्रभु ने त्रिपुष्ट के भव में जो शय्यापालक के कानों में तपा हुआ सीसा डालकर कर्म उपार्जन किया था वह अब वीर के भव में उदय आया था । वह शय्यापालक भी अनेक भव कर के यह ग्वाला बना था । वहां से प्रभु मध्यम अपापा में गये । वहां पर सिद्धार्थ नामक वणिक के घर भिक्षा के लिए आये हुए प्रभु को देख खरक नामा वैद्य ने उन्हें शल्यसहित जाना । फिर उस वणिक ने वैद्य को उद्यान में साथ ले जाकर उन सलाकाओं को प्रभु के कानों में से संडासी से खेंच निकालीं । उनके निकालते समय प्रभु ने ऐसी आराटी की जिस से सारा उद्यान भयंकर–सा बन गया । वहां पर लोगों ने एक देवमंदिर भी बनवाया । फिर प्रभु संरोहिणी नामक

For Private and Personal Use Only

औषधि से निरोगी हो गये । तथा वह वैद्य और वह वणिक मरकर स्वर्ग में गये । ग्वाला मरकर सातवीं नरक में गया । इस प्रकार ग्वाले से हीं उपद्रव शुरू हुए और ग्वाले से हीं समाप्त हुए ।

पूर्वोक्त उपसर्गो में जघन्य मध्यम ओर उत्कृष्ट विभाग हैं । कटपूतना का शीतोपसर्ग जघन्य से उत्कृष्ट समझना चाहिए, कालचक्र मध्यम में उत्कृष्ट जानना और कानों से सलाकाओं का निकालना उत्कृष्ट में उत्कृष्ट समझना चाहिए उन सब उपसर्गो को श्रीं वीरप्रभु ने सम्यक् प्रकार सहन किया अब श्रमण भगवान श्रीं महावीर प्रभु श्रणगार हुए इर्या समिति गमणा गमण में उत्तम प्रवृतिवास हुए । भाषासमिति वाले तथा एषणा समिति-बैतालिस दोष रहित भिक्षा ग्रहण करने में उत्तम प्रवृत्तिवाले हुए । आदानमंडभतमिक्षेपणा समिति-उपकरण, वस्त्र, मिट्टी के बरतन, पात्र वगैरह ग्रहण करने, रखने उठाने आदि में उपयोगयुक्त प्रवृत्ति वाले । पारिष्ठापनिका समिति-विष्ठा, मुत्र, थुक, श्लेष्म, शरीर का मेल इत्यादि को त्यागने में सावधान हुए । यद्यपि प्रभु को भंड और श्लेष्म आदि न होने से यह संभवित नहीं तथापि पाठ अखण्डित रखने के लिए ऐसा कहा गया है । इस. प्रकार प्रभु मन, वचन और शरीर की उत्तम प्रवृत्तिवाले हुए । इस गुप्त एवं गुप्तेंद्रिय तथा वसति आदि नव वार्डो से सुशोभित ब्रह्मचर्य को पालते है । अतः गुप्त ब्रह्मचारी हुए, तथा क्रोध, मान, माया और लोभ रहित एवं अन्तर वृत्ति से शान्त, बहिर्वृत्ति से प्रशान्त और दोनों वृत्तियों से उपशान्त तथा सर्व प्रकार संताप

रहित तथा द्रव्यादि से रहित, छिन्नग्रंथ-सुवर्णादि कि ग्रंथि से रहित हुए । द्रव्य भावरूप मल के निर्गमन से निरूपमेय हुए, उस में द्रव्यमल-शरीर से उत्पन्न होनेवाला मैल तथा भावमल-कर्म से उत्पन्न होनेवाला मल उन दोनों से रहित हुए । जिस तरह कांसी का पात्र पानी से मुक्त रहता है वैसे ही प्रभु भी स्नेहादि जल से विमुक्त रहते है । शंख के समान रागादि से न रंगे जाने के कारण निरंजन हुए । जीव के समान सब जगह स्खलना रहित गति करनेवाले, आकाश के समान निरालम्बन, वायु के समान अप्रतिबद्ध विहारी, शरद ऋतु के जल के समान निर्मल, विशुद्ध हृदयवाले, कमलपत्र पर जैसे लेप नहीं लगता त्यों प्रभु को भी कर्म लेप नहीं लगता । कछवे के समान गुप्तेंद्रिय, गेंडे के सींग के समान मात्र एकले ही, पक्षी के समान परिवार रहित, भारंड पक्षी के समान प्रमाद रहित, भारंड पक्षी के युग्म का एक ही शरीर होता है परन्तु दो मुख होने से दो ही गरदन होती है, पैर तीन होते हैं, मनुष्य की भाषा बोलने वाला होता है, दोनों मुख से खाने की इच्छा होने से उसकी मृत्यु हो जाती है अतः वह अत्यन्त अप्रमादी सावधान रहकर जीता है । हाथी के समान कर्मरूप शत्रुओं को हणने में समर्थ, वृषभ के समान अंगीकृत व्रतभार को वहन करने में समर्थ परिषहादिरूप पशुओं से अजितसिंह के समान, मेरूपर्वत के समान अचल, समुद्र के समान गंभीर, हर्ष शोक के प्रसंगों में समान भावधारी, चंद्रमा के समान शीतल, सूर्य के समान देदीप्यमान तेजस्वी, पृथ्वी के समान सहनशील, घी आदि से भली प्रकार सिंचित किये हुए अग्नि के समान तेज से जाज्वल्यमान हुए प्रभु को

For Private and Personal Use Only

किसी भी जगह पर प्रतिबन्ध नहीं है, यह प्रतिबन्ध निम्न चार प्रकार का होता है–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । उसमें भी द्रव्य से सचित्त, अचित्त और मिश्र यह तीन प्रकार का होता है । सचित्त द्रव्य–स्त्री आदि । अचित्त द्रव्य–आभूषणादि तथा मिश्र द्रव्य–आभूषणादि से युक्त स्त्री आदिक । क्षेत्र से –किसी ग्राम में, नगर में, अरण्य जंगल में, धान्य उत्पन्न होनेवाले क्षेत्र में, खल–धान्य को छिलके से जुदा करने के स्थान में, घर, या घर के आंगन में अथवा आकाश में, काल से–समय जैसे अतिसूक्ष्म काल में, आवली–असंख समयोंवाली आवली में, तथा श्वासोश्वासवाले काल में, स्तोक–सात उछास प्रमाणवाले काल में, क्षण–घड़ी के छठवें भाग प्रमाणवाले काल में, लव–सात स्तोक प्रमाणवाले काल में, एवं मुहूर्त, रात्रि दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन अथवा वर्ष पर्यन्त तक के काल में, तथा युगादि दीर्घकाल में, अब भाव से क्रोध में, मान में, माया में, लोभ में, भय में, हास्य में, प्रेम में, द्वेष में, क्लेश में, मिथ्याकलंक देने में, चुगली में, दूसरों की निन्दा में, मोहनीय के उदय से पैदा होती हुई रति अरति में, कपट सहित मृषावाद में, तथा मिथ्यात्वरूपी अनेक दुःखों के हेतु रूप शल्य में । इस प्रकार पूर्वोक्त स्वरूपवाले द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में, प्रभु कों कहीं पर भी प्रतिबन्ध नहीं था ।

श्री महावीर प्रभु वर्षाकाल के चार मास छोड़कर शेष आठ मास में ग्राम में एक रात्रि और नगर में पांच रात्रि तक रहते थे । प्रभु कुहाड़े का घाव और चंदन का लेप करने वाले पर भी समान भाव रखनेवाले थे । तृण, मणि, सुवर्ण और पत्थर में एक समान दृष्टि रखनेवाले थे, सुःख दुःख में भी समान दृष्टिवाले, इस लोक

परलोक में प्रतिबन्ध रहित, एवं जीवित और मरण में इच्छा रहित थे । तथा संसाररूप समुद्र के पार को पाये कर्मरूप शत्रुओं का नाश करने के लिए उद्यमवान् होकर प्रभु विचर रहे थे ।

इस प्रकार विचरते हुए अनुपम ज्ञान से, अनुपम दर्शन से, अनुपम चारित्र से, आलय–स्त्री, नपुंसकादि के संसर्ग से रहित स्थान में रहने से, अनुपम विहार से, अनुपम पराक्रम से, अनुपम सरलता से, अनुपम निरभिमानता से, अनुपम लाघवता से, अनुपम क्षमाशीलता से, अनुपम निर्लोभता से, अनुपम मनोगुप्ति आदि से, अनुपम संतोष से एवं सत्य संयम तथा बारह प्रकार के तपाचरण से और अनुपम मोक्षमार्ग से, अर्थात् पूर्वोक्त गुणों के समूह से आत्मा का ध्यान करते हुए प्रभु महावीर को बारह वर्ष बीत गये । इतने समय में प्रभु ने जो तप किया वह इस प्रकार था ।

छः मासी तप 1	छः मासी तप 1 पांच दिन न्यून	चार मासी तप 9	तीन मासी तप 2	ढाई मासी 2	दो मासी 6	डेढ़ मासी 2
मासक्षपण 12	पक्षक्षपण 72	भद्र प्रतिमा दिन दो 2	महाभद्र प्रतिमा दिन 4	सर्वतोभद्र प्रतिमा दिन 10	छट्ठ 229	अट्ठम 12
पारणा दिन 349	दीक्षा दिन 1	सर्वाग्रं वर्ष 12 मास 6 दिन 15				

उपरोक्त सर्व तप प्रभु ने पानी रहित किया था और उस साढ़े बारह वर्ष के दरम्यान एक उपवास का

For Private and Personal Use Only

नित्यप्रति भोजन भी प्रभु ने नहीं किया था । अब केवलज्ञान का वर्णन करते है ।

भगवान को केवलज्ञान की प्राप्ति

जब भगवान की दीक्षा का तेरहवां वर्ष चल रहा था । तब ग्रीष्मकाल के दूसरे महिने में चौथे पक्ष में वैशाख शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन पूर्व दिशा की तरफ छाया जाने पर प्रमाण को प्राप्त हुई, पिछली पोरसी के समय, सुव्रत नामा दिन में, विजय नामा मुहूर्त्त में, जृंभिक नामा ग्राम नगर के बाहर, ऋजुवालुका नामा नदी के किनारे, व्यावृत्त नामक एक पुराणे व्यन्तर के मंदिर के बहुत दूर भी नहीं और अति नजदीक भी नहीं, श्यामक नामा कौटुम्बिक के खेत में, साल नामा वृक्ष के नीचे, जैसे गाय दूहने बैठते हैं उस तरह के उत्कटिक आसन में बैठकर आतापना लेते हुए, जलरहित छट्ठ की तपस्या करते हुए, तथा चंद्रमा के साथ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का योग आ जाने पर, ध्यानान्तर में वर्तमान अर्थात् शुक्लध्यान के जो चार भेद हैं– प्रथम पृथक्त्ववितर्कवाला सविचार, दूसरा एकत्ववितर्कवाला अविचार, तीसरा सूक्ष्मक्रिय अप्रतिपाति तथा चौथा उच्छिन्नक्रिय अप्रतिपाति, इनमें से प्रथम दो भेदोंवाले ध्यान को ध्याते हुए प्रभु को अनन्त वस्तु विषयक अनुपम, आवरण रहित संपूर्ण तथा सर्व अवयवों सहित केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुए ।

इस प्रकार केवलज्ञान उत्पन्न होने पर श्रमण भगवान श्री महावीर प्रभु अर्हन् हुए अर्थात् अशोकवृक्षादि प्रातिहार्य से पूजने योग्य हुए । राग द्वेष को जीतनेवाले जिन हुए । केवली, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए । देव,

मनुष्य और असुर सहित लोक के पर्यायों के जानने तथा देखनेवाले हुए, तथा सर्व लोक में रहे हुए सर्व प्राणियों की गति, आगति, उत्पत्ति, तथा सर्व जीवोंद्वारा मन से चिन्तन किया, वचन से बोला हुआ और काया से आचरण किया हुआ, भोजन फलादि, चोरी आदि कार्य, मैथुनसेवनादि गुप्त कार्य, तथा प्रगट कार्य, सो सब जीवों का सब कुछ जानते हुए भगवान विचरते हैं । तीन लोक के सर्व पदार्थ हाथ में लिए हुए आंवले के फल के समान देखनेवाले होने के कारण उनके सामने कोई ऐसी वस्तु या भाव नहीं कि जिसे वे न जानते हों । कम से कम करोड देव उनकी सेवामें रहने से जो एकान्त के वास को कभी प्राप्त नहीं होते ऐसे प्रभु, मन, वचन, काया के योगों में यथायोग्य तथा प्रवर्तमान संसार के समस्त प्राणियों के सर्व भावों को जानते हुए और देखते हुए विचरते हैं । तथा सर्व अजीब-धर्मास्तिकाय आदि के भी सर्व पर्यायों को प्रभु जानते हैं ।

गणधर देवों की दीक्षा

उस समय एकत्रित हुए देव मनुष्य असुरों के प्रति पत्थरवाली जमीन पर पड़े हुए वर्षात के समान क्षण वार निष्फल देशना देकर प्रभु अपापापुरी के महसेन नामक उद्यान मे पधारे । वहां यज्ञ करते हुए सोमिल नामा ब्राह्मण के घर पर बहुत से ब्राह्मण एकत्रित हुए थे । उनमें इंद्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति ये तीन सगे भाई थे । वे चौदह विद्या में प्रवीण थे । अनुक्रम से उनमें पहले को जीव का, दूसरे को कर्म का तथा तीसरे को

For Private and Personal Use Only

वही जीव और वही शरीर का संदेह था । उनके प्रत्येक के साथ पांच सौ पांच सो शिष्य परिवार था । इसी तरह व्यक्त और सुधर्मा नामा दो ब्राह्मण उतने ही परिवार वाले एवं वैसे ही विद्वान थे । क्रम से पहले को पंचभूत हैं या नहीं ? और दूसरे को जो जैसा है वह वैसा ही होता है । उन्हें भी वे संदेह थे । वैसे ही विद्वान् मंडित और मौर्यपुत्र दो भाई थे । उनके प्रत्येक का साढ़े तीन सौ साढ़े तीन सौ शिष्य परिवार था । क्रम से उनमें पहले को बन्ध मोक्ष का और दूसरे को देवों के सम्बन्ध में संदेह था । इसी तरह अकंपित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास नामक चार ब्राह्मण थे उनका प्रत्येक का तीन सौ तीनसौ परिवार था । अनुक्रम से उनमें नारकी का, दूसरे को पुण्य का, तीसरे को परलोक का तथा चौथे को मोक्ष का संदेह था । इस प्रकार उन ग्यारह ही विद्वानों को हर एक को एक-एक संदेह था । परन्तु अपने सर्वज्ञपन के अभिमान की क्षति के भय से एक दूसरे को पूछते न थे । ऐसे उनके परिवार के चौवालिस सौ ब्राह्मण तथा अन्य भी उपाध्याय, शंकर, ईश्वर, शिवजी, जानी, गंगाधर, महीधर, भूधर, लक्ष्मीधर, पण्डया, विष्णु, मुकुन्द, गोविन्द, पुरूषोत्तम, नारायण, दुवे, श्रीपति, उमापति, गणपति, जयदेव, व्यास, महादेव, शिवदेव, मूलदेव, सुखदेव, गंगापति, गौरीपति, त्रिवाड़ी, श्रीकंठ, नीलकंठ, हरिहर, रामजी, बालकृष्ण, यदुराम, राम, रामाचार्य, राउल, मधुसूदन, नरसिंह, कमलाकर, सोमेश्वर, हरिशंकर, विक्रम, जोशी, पूनो, रामजी, शिवराम, देवराम, गोविन्दराम, रघुराम और उदयराम आदि बहुत से ब्राह्मण वहीं एकत्रित हुए थे ।

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उस वक्त प्रभु को वन्दन करने के लिए आते हुए सुर और असुरों को देखकर वे ब्राह्मण विचारने लगे कि अहो ! इस यज्ञ की महिमा कैसी है ? जहां पर साक्षात् देवता आ रहे हैं । परन्तु यज्ञमंडप तजकर उन्हें बाह्योद्यान में प्रभु की तरफ जाते देख उन्हें अत्यन्त खेद हुआ । मनुष्यों से यह सुनकर कि वे सब सर्वज्ञ प्रभु को वन्दन करने जा रहे हैं । इंद्रभूति क्रोधित हो विचारने लगा–मेरे सर्वज्ञ होते हुए क्या दूसरा भी कोई अपने आपको सर्वज्ञ कहलाता है !!! कान से न सुनने योग्य ऐसा कटु वचन मुझ से कैसे सुना जाय ? कदाचित् कोई मूर्ख मनुष्य तो धूर्त्त से ठगा जा सकता है परन्तु इसने तो देवताओं को भी ठग लिया है जो वे देव यज्ञमंडप और मुझ सर्वज्ञ को छोड़कर वहां जा रहे हैं ! देवो, तुम क्यों भ्रान्ति में पड़ गये; जो तीर्थजल को त्यागनेवाले कौवों के समान, तालाब को त्यागने वाले मेंडक के समान, चंदन को त्यागने वाली मक्खियों के समान, श्रेष्ठ वृक्ष को त्यागने वाले ऊंटों के समान, खीरान्न को त्यागने वाले सूअरों के समान और सूर्यप्रकाश को त्यागने वाले उल्लुओं के समान यज्ञ को त्याग कर वहां चले जा रहे हो ! अथवा जैसा वह सर्वज्ञ होगा वैसे ही ये देव हैं अतः समान ही योग मिल गया है । कहा भी है कि भ्रमर आम्रवृक्ष के मौर पर गुंजारव करता है और कौवे आतुर होकर नीम के मौर पर जाते हैं । तथापि मैं उसके सर्वज्ञपन के आरोप को सहन न करूंगा । क्या आकाश में दो सूर्य रह सकते हैं ? या एक म्यान में दो तलवार रह सकती हैं ? इसी तरह मैं और वह दोनों सर्वज्ञ कैसे रह सकते हैं ?

For Private and Personal Use Only

फिर उसने प्रभु को वन्दन कर वापिस लौटते हुए मनुष्यों को हंसीपूर्वक पूछा-अरे लोगो ! तुमने उस सर्वज्ञ को देखा ? वह कैसा रूपवान् है ? उसका क्या रूवरूप है ? लोगों ने कहा कि-

''यदि त्रिलोकी गणनापरा स्या-त्तस्याः समाप्तिर्यदि नायुषः स्यात् ।
पारिंपरार्द्ध गणितं यदि स्यान्द्रणेय निःशेषगुणोऽपि स स्यात् ।।1।।''

यदि तीन लोक के मनुष्य गिनने लगें, उनके आयु की समाप्ति न हो और यदि परार्ध से ऊपर गिनती हो जाय तो उस सर्वज्ञ के गुणों को गिन सकता है; अन्यथा नहीं । यह सुनकर इंद्रभूति विचारने लगा- सचमुच हीं यह तो कोई महाधूर्त्त है, कपट का मंदिर है; अन्यथा इतने लोगों को भ्रम में नहीं डाल सकता । अब मैं इस सर्वज्ञ को क्षणवार भी सहन नहीं कर सकता । अन्धकार के समूह को दूर करने के लिए सूर्य किसी की प्रतिक्षा नहीं कर सकता । अग्नि हाथ के स्पर्श को, क्षत्रिय शत्रु के आक्षेप को, सिंह अपनी केशावली पकड़नेवाले को कदापि सहन नहीं कर सकता । मैंने वादियों के बहुत से इंद्रों को बोलते बंद कर दिया है तो यह बेचारा घर में हीं अपने को शूर माननेवाला मेरे सामने क्या चीज है ? जिस अग्नि ने बड़े बड़े पर्वतों को भस्म कर डाला उसके सामने वृक्ष क्या चीज है ? जिसने हाथियों को गिरा दिया ऐसे प्रचण्ड पवन के सामने रूई की पूनी क्या वस्तु है ? तथा मेरे भय से गौड़ देश में जन्मे हुए पंडित दूर देशों में भाग गये, तथा गुजरात के पंडित तो मेरे भय से जरजरित हो त्रासित हो गये हैं, मालव देश के पंडित तो नाम सुनकर हीं मर गये, तैलंग देश के

पंडित तो मेरे डर से कृश शरीरवाले हो गये हैं, लाट देश के पंडित डर के मारेचारे कहीं दूर भाग गये तथा द्राविड़ देश के चतुर पंडित मेरी प्रशंसा सुनकर ही लज्जातुर हो गये हैं ! अहो आश्चर्य ! जब मैं वादियों का इच्छातुर बना हूं तब मेरे लिये जगत में वादियों का दुष्काल पड़ गया ! फिर मेरे सामने यह कौन चीज है जो अपने सर्वज्ञपन के मान को धारण करता है ? ये विचार कर जब वह प्रभु के पास आने को उत्सुक हुआ तब उसे अग्निभूति ने कहा– हे बन्धु ! उस वादी कीट के पास आपको जाने की क्या आवश्यकता है ? मैं वहां जाता हूं । क्यों कि एक कमल को उखेड़ फेंकने के लिए क्या हाथी जोड़ने की जरूरत होती है ? इंद्रभूति बोला–यद्यपि उसे मेरा एक शिष्य भी जीत सकता है तथापि वादी का नाम सुनकर यहां रहा नहीं जाता। जैसे पीलते हुए कोई एक तिल का दाना रहा जाता है, दलते हुए अनाज का एक दाना रहा जाता है, ज्यों अगस्ति द्वारा समुद्र पीते हुए सरोवर रहा जाय तथा काटते हुए कोई छिलका रह जाय वैसे ही यह मेरे लिए हुआ है । तथापि मैं व्यर्थ सर्वज्ञ वादी को सहन नहीं कर सकता । इस एक के न जीतने पर मेरी जीत ही नहीं गिनी जा सकती । सती स्त्री एक दफा भी अपने शीलव्रत को भ्रष्ट होवे तो वह सदैव असती ही कही जाती है । आश्चर्य है कि तीन जगत में मैंने हजारों वादीयों को जीत लिया है परन्तु खिचड़ी की हंड़ियां में जैसे कोई कोडू मूंग का दाना रह जाता है त्यों यह एक वादी रह गया है । यदि मैं इसे न जीतूं तो जगत को जीतने से प्राप्त किया मेरा यश भी नष्ट हो जायगा । क्यों कि शरीर में रहा हुआ एक शल्य शरीर के नाश का हेतु बनता है । क्या जहाज में पड़ा

For Private and Personal Use Only

हुआ छिद्र उसे डबो नहीं देता ? त्यों ही एक ईट निकालने से सारा मकान गिर जाता है । इत्यादि विचार कर मस्तक पर द्वादश तिलक धारण कर, सुवर्ण के यज्ञपवीत के विभूषित हो, पीत वस्त्र पहन कर, हाथ में पुस्तक धारण करने वाले बहुत से शिष्यों को साथ लेकर, तथा जिन के हाथ में कमंडलू हैं ऐसे शिष्यों से वेष्टित हो और जिनके हाथ में दर्भ के आसन हैं कितनेक ऐसे शिष्यों सहित इंद्रभूति वहां से प्रभु की ओर चलता है । उस वक्त उसके शिष्य उसकी प्रशंसा के नारे लगाते हुए चलते हैं कि ❖ हे सरस्वती कंठाभरण ! हे वादीविजयलक्ष्मी के शरण समान ! हे वादियों के मद को उतारनेवाले ! हे वादीरूप हाथियों के मदको उतारने वाले ! हे वादियों के ऐश्वर का नाश करनेवाले ! हे वादी रूप सिंहों को अष्टापद के समान ! हे वादियों के समूह के राजा ! हे वादियों के सिर पर काल समान ! हे वादीरूप केले को कृपाल के तुल्य ! हे वादीरूप अंधकार के प्रति सूर्य समान ! हे वादीरूप गंदम को पीसने में चक्की के समान ! हे वादीमदमर्दन करनेवाले!

❖ कवि की पद्य रचना दिखाने के लिये इस मूल पाठ नीचे दिया जाता है ।

हे सरस्वतीकंठाभरण ! वादिविजयलक्ष्मीशरण ! वादिमदगंजन ! वादिमुखभंजन ! वादिगजसिंह ! वादीश्वरलीह ! वादिसिंह अष्ठापद ! वादिविजयविशाद ! वादिमदगंजन ! वादिवृंदभूमिपाल ! वादिशिरःकाल ! वादिकदलीकृपाल ! वादितमोभान ! वादिगोधूमघइट्ट ! मर्दितवादिमरट्ट ! वादिघटमुद्रर ! वादिघूकभास्कर ! वादिसमुद्रागस्ति ! वादितरून्म्लनहस्ति ! वादिसुरसुरेन्द्र ! वादिगरूडगोविन्द ! वादिजनराजा ! वादिकंसकाहन् ! वादिहरिणहरे ! वादिजवरधन्वन्तरे ! वादियूथमल्ल ! वादिहृदयशल्य ! वादिगणजीपक ! वादिशलभदीपक ! वादिचकचूडामणे ! पंडितशिरोमणे ! विजितनिकवाद ! सरस्वतीलब्धप्रसाद !

हे वादीरूप घड़े के लिए मुद्गर समान ! हे वादीरूप उल्लुओं के लिये सूर्य तुल्य है ! हे वादीरूप समुद्र के लिए अगस्ति के समान ! हे वादीरूप वृक्ष को उखाड़ फेंकने में हाथी के समान ! हे वादीरूप देवों में इंद्र के समान ! हे वादीरूप गरूड़ के प्रति गोविन्दक समान ! हे वादीरूप मनुष्यों के राजा ! हे वादीरूप कंस को मारने में कृष्ण के समान ! हे वादीरूप मृग के लिए सिंह के समान ! हे वादीरूप ज्वर के प्रति धन्वन्तरी वैद्य के समान ! हे वादियों के समूह में मल्ल के समान ! हे वादियों के हृदय के शल्य समान ! हे वादीरूप पतंगों को दीपक समान ! हे वादी समूह के मुकुट समान ! हे अनेक वादों को जींतनेवाले पंडित शिरोमणि ! हे सरस्वती का प्रसाद प्राप्त करनेवाले तेरी जय हो ! इस प्रकार विरूदावली के नारों से जिन्होंने आकाश तल को गुंजायमान कर दिया है, उन पांच सौ शिष्यों द्वारा परिवेष्टित इंद्रभूति प्रभु के पास जाते हुए रास्ते में विचारता है- भला इस दुष्ट ने यह क्या किया ? कि जों मुझे सर्वज्ञ मिथ्या आडम्बर से क्रोधित किया !! यह तो मेंडक काले नाग को लातें मारने के लिए तैयार हुआ है या चूहा अपने दांतों से बिल्ली के दांत तोड़ने को तैयार हुआ है । अथवा बैल अपने सींगों से इंद्र के हाथी को मारने की इच्छा करता है ! अथवा हाथी अपने दांतों से पर्वत को गिरा देने का प्रयत्न करता है ! या खरगोश सिंह की केशराओं को खेंचना चाहता है कि जो यह मेरे सामने लोक में अपना सर्वज्ञपन प्रसिद्ध करता है ! शेष नाग के मस्तक पर रहे हुए मणि को लेने के लिए इसने हाथ बढ़ाया है, क्यों कि इसने मुझे सर्वज्ञ के अभिमान से को कोषायमान किया है । पवन के सन्मुख होकर इसने दावानल सुलगाया है । अथवा

For Private and Personal Use Only

इसने शरीरसुख की इच्छा से कौंच की फली को आलिंगन किया है । खैर इन विचारों से क्या ? मैं अभी जाकर उसे निरूत्तर कर देता हूं; क्यों कि जब तक सूर्य नहीं ऊगता तब तक हीं खद्योत-और चंद्रमा प्रकाशमान रहते हैं, परन्तु सूर्योदय होने पर वे स्वयं फीके पड़ जाते हैं । वे हरिण, हाथी, घोड़ों के समूहो ! तुम शीघ्र ही इस जंगल में से दूर भाग जाओ, क्यों कि आटोप सहित क्रोप से स्फुरायमान केशराओंवाला यहां पर केशरीसिंह आ रहा है । मेरे भाग्य से ही यह वादी यहां आ पहुंचा है अतः सचमुच ही मैं आज उसकी जीभ की खुजली दूर करूंगा । लक्षणशास्त्र में तो मेरी दक्षता है हीं, साहित्य शास्त्र में भी मेरी बुद्धि तीक्ष्ण है, तर्कशास्त्र में तो मैंने निपुणता प्राप्त की है । इस लिए वह शास्त्र ही कौनसा है जिसमें मैंने परिश्रम नहीं किया । पंडितों के लिए कौनसा रस अपोषित है ? चक्रवर्ती के लिए क्या अजेय है ? वज्र के लिए क्या अभेद्य है ? महात्माओं के लिए क्या असाध्य है ? भूखों के लिए क्या अखाद्य है ? खल मनुष्यों के लिए कौनसा वचन अवाच्य है ? कल्पवृक्ष के लिए न देने लायक क्या है ? वैरागी के लिए क्या त्याज्य है ? इसी प्रकार तीन लोक को जीतनेवाले तथा महापराक्रमी ऐसे मेरे लिए विश्व में क्या अजेय है ? अतः अभी जाकर उसे जीत लेता हूं । इत्यादि विचारों में इंद्रभूति समवसरण के दरवाजे पर आ पहुंचा ।

प्रथम पगलिये पर ठहर कर प्रभु को देख इंद्रभूति विचार में पड़ गया कि-क्या यह ब्रह्मा, विष्णु, या सदाशिव शंकर है ? नहीं सो नहीं है, क्यों कि ब्रह्मा तो वृद्ध है, विष्णु श्याम है, और शंकर पार्वती सहित हे ।

तो क्या यह चंद्रमा है ? नहीं वह तो कलंक युक्त है । तो क्या सूर्य है ? नहीं वह भी नहीं क्यों कि सूर्य तो तीव्र कान्तिवाला है । तो क्या मेरू है ? नहीं वह तो नितान्त कठिन है । तो क्या यह कामदेव है ? नहीं कामदेव तो शरीर रहित है । हां अब मैंने जाना यह दोष रहित और सर्वगुणसंपन्न अन्तिम तीर्थंकर है । सुवर्ण सिंहासन पर बैठे इंद्रों से पूजित श्रीवीरप्रभु को देखकर इंद्रभूति सोचने लगा कि-अब मैं पूर्वोपार्जन किया महत्व किस तरह रख सकूंगा? एक कीलिका के लिए मैंने महल को गिराने की इच्छा की । एक को न जीतने से मेरी क्या मानहानि होती थी ? मैं जगत को जीतनेवाला हूं ऐसा नाम अब कैसे रख सकूंगा ? अहो मैंने यह विचार रहित कार्य किया है जो मैं मन्दबुद्धि इस जगदीश के अवतार को जीतने आया हूं ? अब मैं किस तरह इसके पास जाऊं और बोल सकूंगा ? अब मैं संकट में पड़ा हूं । अब तो शिवजी ही मेरे यश की रक्षा करेंगे । यदि कदाचित् भाग्योदय से मेरी यहां जीत हो जाय तो मैं विश्वभर में पंडित शिरोमणि कहलाऊं । इस प्रकार विचार करते हुए इंद्रभूति को प्रभु ने उसका नाम और गोत्र उच्चारण पूर्वक अमृत तुल्य मीठी वाणी से बुलाया-हे गौतम इंद्रभूति ! तू यहां सुखपूर्वक आया है ने ? प्रभु का यह वचन सुन वह सोचने लगा-अरे ! यह क्या ! यह तो मेरा नाम भी जानता है !!! अथवा तीन जगत में विख्यात मेरा नाम कौन नहीं जानता ? क्या सूर्य किसी से छिपा रहता है ? यदि यह मेरे मन में रहे हुए गुप्त संदेहों को कह बतलावे तो मैं इसे सर्वज्ञ मानूं । इस तरह विचार करते हुए इंद्रभूति को श्री महावीर प्रभु ने कहा-क्या तेरे

For Private and Personal Use Only

मन में जीव के विषय में संदेह है ? तू वेद पदों के अर्थ को ठीक तरह नहीं विचारता । उन वेदपदों को सुन । फिर प्रभु द्वारा उच्चारण किये गये वेदपदों का ध्वनि मथन करते समुद्र के समान, अथवा गंगापूर के समान, या आदि ब्रह्म की वाणी के समान शोभता था । वेद के पद नीचे मुजब थे ।

''विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति न प्रेत्यसंज्ञास्तीती''

प्रथम तो तू उन पदों का ऐसा अर्थ करता है कि ''विज्ञानघन''–गमनागमन की चेष्टावाला आत्मा ''एतेभ्यो भूतेभ्यः'' पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन पांचों भूतों से मद्यांग में मदशक्ति के समान उत्पन्न होकर उन भूतों के साथ ही नाश पाता है, अर्थात् पानी में बुलबुले के समान उन्हीं में लीन हो जाता है । इसलिए पंच भूतों से भिन्न आत्मा न होने के कारण प्रेत्यसंज्ञा नहीं है । अर्थात् मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म नहीं है । परन्तु यह अर्थ अयुक्त है । हमारे कहे मुजब अब तू उनका ठीक अर्थ सुन । ''विज्ञानघन'' इस पद का क्या अर्थ है ? 'विज्ञान–ज्ञान दर्शन का उपयोगात्मक विज्ञ आत्मा भी तन्मय होने से विज्ञानघन कहा जाता है । क्यों कि आत्मा के प्रत्येक प्रत्येक प्रदेश के प्रति ज्ञान के अनन्त पर्याय हैं । अब वह विज्ञानघन उपयोगात्मक आत्मा कथंचित् भूतों से या भूतों के विकाररूप घटादि से उत्पन्न होता है । घटादिक ज्ञान से

1 इस रीचा का सार वह है–मनुष्य जिस वस्तु को सामने देखता है उसमें उसका आत्मा तल्लीन हो जाता है, उस वस्तु को हटा लेने से मनुष्य का ख्याल दूसरी तरफ लग जाने से पहले का ज्ञान बदल कर दूसरी चीज का ज्ञान हो जाता है पहली संज्ञा नहीं रहती ।

परिणत जो उपयोगात्मक आत्मा है वह हेतुभूत घटादि से ही उत्पन्न होता है, क्यों के परिणाम का घटादिक का सापेक्षपन रहा हुआ है, इस तरह भूतरूप घटादिक वस्तुओं से उनका उपयोगात्मक जीव पैदा होकर उनमें ही विलीन हो जाता है, अर्थात् उन घटादिवस्तुओं के नाश हो जाने पर उनके निमित्त से उत्पन्न हुआ उपयोगात्मक आत्मा भी नष्ट हो जाता है और दूसरे उपयोगतया उत्पन्न होता है । इस कारण प्रेत्यसंज्ञा नहीं रहती । अर्थात् घटादि वस्तुओं के आकार नष्ट होकर किसी दूसरे रूप में परिवर्तित होने पर तज्जन्य उपयोगात्मक आत्मा भी नष्ट होकर दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाता है, इसलिए घटादि के उपयोगरूप पहली संज्ञा नहीं रहती । क्यों कि वर्तमान उपयोगतया घटादि की संज्ञा नष्ट हो चुकी है । तथा यह आत्मा ज्ञानमय है और जो दम, दान एवं दया इन तीनों दकारों को जाने वह जीव-आत्मा, तथा भोग्य और भोक्ता भाव से भी शरीर भोग्य और आत्मा उसका भोक्ता है । जैसे चावल भोग्य है तो उसका भोक्ता भी है । इत्यादि अनुमान से भी आत्मा सिद्ध होता है । तथा जैसे दूध में घी, तिल मे तेल, काष्ठ में अग्नि, पुष्प में सुगन्ध और चंद्रकान्त में अमृत रहता है त्यों यह आत्मा भी शरीर में पृथक रहता है । इस प्रकार प्रभु वचनों से संदेह नष्ट हो जाने पर इंद्रभूति ने पांच सौ शिष्यों सहित प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण करली । उसी वक्त प्रभु के मुख से ''उपन्नेइ वा, विगमेइ वा और धुवेइ वा'' यह त्रिपदी प्राप्त कर उन्होंने द्वादशांगी की रचना की ।

इति प्रथम गणधर समाधान ।

For Private and Personal Use Only

अब उनके दूसरे भाई अग्निभूति ने अपने भाई को दीक्षित हुआ सुनकर विचार कि कदाचित् पर्वत पिघले, बरफ जल उठे, अग्नि शीतल हो जाय और वायु स्थिर हो जाय तथापि मेरा भाई किसी से हार जाय यह संभव नहीं होता। इस बात पर विश्वास न रखकर उसने बहुत से लोगों से पूछा, निश्चय हो जाने पर उसने विचार किया-मैं अभी जाकर उस धूर्त को जीत कर अपने भाई को वापिस लाता हूं। यह विचार कर वह भी शीघ्र प्रभु के पास आया। प्रभु ने भी उसे उसके गोत्रनामपूर्वक बुलाया और उसके मन में रहे हुए संदेह को प्रगट कर के कहा -हे गौतम गोत्रीय अग्निभूति ! क्या तेरे मन में कर्म का संदेह है ? क्या तू वेद के तत्वार्थ को भली प्रकार नहीं जानता ? सुन, वह इस प्रकार है। ''पुरूष एवेदं ग्नि सवं यद्भूतं यच्च भाव्यं इत्यादि'' इस प्रकार तेरे मन में ऐसा अर्थ भासित है। जो अतीत काल में हो गया है और जो आगामी काल में होगा वह सब ''पुरूष एवं'' आत्मा ही है। यहां एवकार यह कर्म, ईश्वर आदि के निषेध में है। इस वचन से जो मनुष्य, देव, तिर्यच, पृथ्वी, पर्वत आदि देख पड़ते हैं, सो सब कुछ आत्मा ही है और इस से कर्म का प्रगट ही निषेध होता है। तथा अमूर्त आत्मा का मूर्त कर्म के द्वारा लाभ और हानि किस तरह संभवित हो सकते हैं ? जिस प्रकार आकाश को चंदनादि का लेप नहीं हो सकता, तलवारादि से उसे काटा नहीं जा सकता इसी

---

1 इस रीचा का सार वह है-कि कोई कोई वचन ऐसे होते है जिनमे किसी एक ही वस्तु की तारीफ की जाती है, जैसे गीताजी में कृष्ण की स्तुति की है, इससे दूसरी सब चीजों का अभाव नहीं समझना चाहिये।

प्रकार अमूर्त आत्मा भी मूर्त कर्म से लाभ या हानि नहीं उठा सकता, इस तरह कर्म का अभाव प्रतीत होता है, यह तेरे मन में है, परन्तु हे अग्निभूति ! यह अर्थ युक्त नहीं है; क्यों कि वेद के वे पद पुरूष की स्तुति के हैं, वेद के पद तीन प्रकार के होते हैं, जिन में कितने एक विधि प्रतिपादन करनेवाले हैं, जैसे कि स्वर्ग की इच्छा करनेवाले मनुष्य को अग्निहोत्र करना चाहिये, इत्यादि । कितने एक अनुवादसूचक होते हैं, जैसे कि बारह मास का एक वर्ष होता है, इत्यादि । और कितने पद स्तुतिरूप होते हैं, जैसे कि उपरोक्त पद तेरे संदेहवाला है, इत्यादि । इस पद से पुरूष की अर्थात् आत्मा की महिमा दिखलायी है, परन्तु कर्मादि का निषेध नहीं किया, जैसे–

''जले विष्णुः स्थले रथले विष्णुः विष्णुः पर्वतमस्तके सर्व भूतमयो विष्णु–स्तरमाद्विष्णुमयं जगत् ।।1

अर्थात् जल में विष्णु, स्थल में विष्णु, पर्वत के मस्तक पर विष्णु और सर्व भूतमय विष्णु है अतः यह जगत भी विष्णुमय ही है । इस वाक्य से विष्णु का महिमा कथन किया है परन्तु अन्य वस्तुओं का निषेध नहीं किया । तथा अमूर्तात्मा को मूर्त कर्म से लाभ और हानि क्यों कर हो सकती है ? यह भी शंका ठीक नहीं है । क्यों कि मूर्तिमान् मद्यादिक से अमूर्त आत्मा को नुकसान होता है और ब्राह्मी आदि से लाभ होता देख पड़ता है । तथा यदि कर्म न हों तो एक सुखी, दूसरा दुःखी, एक श्रीमान् शेठ, दूसरा गरीब नोकर इत्यादि संसार की प्रत्यक्ष विचित्रता कैसे संभवित हो सकती है ? प्रभु के ये वचन सुनकर अग्निभूति का भी संदेह दूर

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हो गया और उसने भी दीक्षा ग्रहण करली । यह दूसरे गणधर हुए ।

अब वायुभूतिने उन दोनों को दीक्षित हुआ सुनकर विचार किया—जिस प्रभु के इंद्रभूति और अग्निभूति जैस समर्थ शिष्य बने हैं वह मेरे लिये भी पूजनीय हैं, अतः मुझे भी उनके पास जाकर अपनी शंका दूर करनी चाहिये । यह विचार कर वह भी प्रभु के पास आया एवं सभी आये और प्रभु ने सब को प्रतिबोधित किया । उसका क्रम इस प्रकार है ।

अब ''तज्जीव तच्छरीर'' अर्थात् वही जीव और वही शरीर है, ऐसी शंकावाले वायुभूति को प्रभु ने कहा—क्या तू वेद का अर्थ नहीं जानता ? क्यों कि—''विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः'' इत्यादि वेद पदों से पंचभूतों से जीव पृथक प्रतीत नहीं होता तथा

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्यातिर्मयो हि शुद्धो यं पश्यंति धीरा यतयः संयतात्मानः, इत्यादि इन पदों का अर्थ इस प्रकार है । यह ज्योतिर्मय शुद्धात्मा सत्य, तप और ब्रह्मचर्य द्वारा प्राप्य है । यह इन वेद पदों से आत्मा की पृथक प्रतीति होती है अतः तुझे यह संदेह है कि यह शरीर है सो ही आत्मा है या कोई दूसरा है ? परन्तु यह शंका अयुक्त है, क्योंकि ''विज्ञानधन'' इत्यादि पदों से हमारे कथनानुसार आत्मा की सत्ता प्रगट की है । यह तीसरे गणधर हुए ।

---

1 इस रीचा का सार वह है—कि कोई कोई वचन ऐसे होते है जिनमे किसी एक ही वस्तु की तारीफ की जाती है, जैसे गीताजी में कृष्ण की स्तुति की है, इससे दूसरी सब चीजों का अभाव नहीं समझना चाहिये ।

For Private and Personal Use Only

अब पंचभूतों में शंकावाले व्यक्त नामक पंडित को प्रभु ने कहा-क्या तुम भी वेद के अर्थ को नहीं जानते ? ''येन स्वप्रोपमं वै सकलं इत्येष ब्रह्मविधि रंजसा विज्ञेयः'' इस पद का तेरे ऐसा अर्थ भाषित है कि सचमुच पृथवीं आदि यह सब कुछ स्वप्न वस्तु के समान असत् है, और इन पदों से पहेले तो पंचभूतों का अभाव प्रतीत होता है, तथा ''पृथवीं देवता, आपो देवता'' इत्यादि पदों से भूतों की सत्ता प्रतीत होती है । बस यहीं तेरे मन में संदेह है, परन्तु यह अयुक्त है, क्यों कि -''येन स्वनोपमं वै सकलं'' इत्यादि पद अध्यात्म संबन्धी चिन्तन में कनक कामिनी आदि के संयोगों से अनित्य सूचित करनेवाले हैं किन्तु पंचभूतों का निषेध नहीं करते । यह चौथे गणधर हुए ।

फिर जो जैसा है वह वैसा ही होता है, ऐसी शंकावाले सुधर्मनामा पंडित को प्रभु ने कहा-तू भी वेद के अर्थ को नहीं जानता ? क्यों कि-''पुरूषों वै पुरूषत्वमश्नुते, पशवः पशुत्वं'' इत्यादि पदों से भवान्तर का सादृश्य सूचित होता है, तथा ''शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते'' इत्यादि पदों से भवान्तर का वैसादृश्य साबित होता है यदि तेरे मन में संदेह है । परन्तु यह विचार सुन्दर नहीं है, क्यों कि-''पुरूषो वै पुरूषत्वमश्नुते'' इत्यादि जो पद हैं उनका अर्थ तो यह है कि कोई मनुष्य मार्दव

---

3. इनको यह शंका थी कि पांच भूत है या नहीं ? प्रभु ने उनको सिद्ध कर बताया ।

4. पांचवे गणधर की शंका थी कि जो यहां मनुष्य है वह परलोक में भी मनुष्य रहता है अथवा और गति में भी जा सकता है प्रभु ने उसका समाधान किया ।

For Private and Personal Use Only

आदि गुण युक्त हो तो मनुष्य सम्बन्धी आयुकर्म बांध कर फिर भी मनुष्यपन को प्राप्त होता है । परन्तु मनुष्य मनुष्य ही होता है ऐसा बतलानेवाले वे पद नहीं हैं । तेरे मनमें एक ऐसी युक्ति है कि जैसे चावल बोने से गेहूं नहीं उगते, वैसे ही मनुष्य मरकर पशु या पशु मरके मनुष्य नहीं हो सकता, परन्तु यह युक्ति ठीक नहीं है; क्यों कि गोबर आदि से बिच्छु वगैरह की उत्पत्ति प्रत्यक्ष देख पडती है, इसलिए कार्य का वैदृश्य भी साबित ही है । यह पंचम गणधर हुए ।

अब बन्धमोक्ष के विषय में शंकावाले मंडित नामक पंडित को प्रभुन कहा–तू भी वेद का अर्थ नहीं जानता ? ''स एष विगुणो विभुर्न बध्यते संसरति वा मुच्यते मोचयति वा'' इन पदों का अर्थ तुं इस प्रकार करता है यह संसारवर्ती जीव विगुण–सत्वादिगुण रहित है और विभु–सर्व व्यापक है, वह बंधता नहीं, अर्थात् पुण्य पाप से नहीं जुड़ता, संसार में परिभ्रमण भी नहीं करता । बन्ध का अभाव होने से वह कर्म से मुक्त भी नहीं होता एवं अकर्तापन होने से दूसरे को भी कर्म से नहीं छुड़ाता । परन्तु यह अर्थ यथार्थ नहीं है, ठीक अर्थ सुनो–विगुण–छद्मस्थ गुणरिहत और विभु केवलज्ञान स्वरूप से विश्व व्यापक पन होने से सर्वज्ञ आत्मा पुण्य पाप से लिप्त नहीं होता । यह छट्ठे गणधर हुए ।

अब देव विषय में शंकावाले मौर्यपुत्र नामक पंडित को प्रभु ने कहा–तू भी वेद के अर्थ को नहीं जानता?

मंडित की शंका थी कि–आत्मा तो अरूपी है, कर्मरूपी है । अरूपी को रूपी का संबंध कैसे हो जाता है ? प्रभु ने समाधान किया ।

''को जानाति मायोपमान् गीर्वाणान् इंद्रयमवरूणकुबेरादीन्'' इन पदों से प्रत्यक्ष देवों का निषेध मालूम होता है, और ''स एष यज्ञायुधी यजमानों जसा स्वर्गलोकं गच्छति'' इन पदों से देव सत्ता प्रतीत होती है, यही तेरे मन में संदेह है, पर यह अयुक्त है । क्यों कि इस पर्षदा में बैठे हुए देवों को हम तुम सब ही प्रत्यक्ष देख रहे हैं । वेद में जो ''मायोपमान्'' पद कहा है वह देवों का भी अनित्यपन सूचित करता है अर्थात् देवता भी शास्वत नहीं है यह सप्तम गणधर हुए ।

अब नारकी के विषय में शंकावाले अकंपित नामक पंडित को प्रभु ने कहा–तुम भी वेदार्थ को नहीं जानते ? ''नह वै प्रेत्य नरके नारकाः सन्ति'' इत्यादि पदों से नारकी का अभाव प्रतीत होता है, और ''नारको वै एष जायते यः शुद्रान्नमश्रनाति'' इत्यादि पदों से नारकी का सद्भाव साबित होता है । यह तेरे मन में शंका है । परन्तु ''नह वै प्रेत्य नरके नरकाः सन्ति'' इन पदों का अर्थ–परलोक में नारक भी मेरूपर्वत समान शाश्वते नहीं है, किन्तु जो पापाचरण करता है वह नारक होता है, या नारक मरकर फिर तुरन्त ही दूसरे भव में नारकतया उत्पन्न नहीं होता यह है । यह सुनकर अष्टम गणधर प्रतिबोधित हुए ।

अब पुण्य के विषय में शंकावाले अचलभ्राता नामा पंडित को प्रभु ने कहा –तू भी वेद का अर्थ नहीं

अकंपित को नारकी में शंका थी, प्रभु ने उनका भी समाधान किया ।

अचलभ्राता को पुण्य पाप की शंका थी ।

For Private and Personal Use Only

जानता ? तेरे संदेह का कारण प्रथम–''पुरूष एवेदं ग्निं सर्व'' इत्यादि अग्निभूति ने कहा था सो है, हमने पहले इसका उत्तर दिया है तुम्हें भी उसी प्रकार समझना चाहिये । तथा 'पुण्यः पुण्येन कर्मणा पापः पापेन कर्मणा' पुण्य कर्म से पुण्य होता है और पापकर्म से पाप होता है इत्यादि वेद पदों से पुण्य पाप की सिद्धि होती है । यह नवमे गणधर हुए।

अब परभव में शंका रखनेवाले मेतार्य नामा पंडित को कहा–तू भी वेदार्थ नहीं जानता ? तुझे भी इंद्रभूति ने कहे हुए 'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः' इत्यादि पदों द्वारा परलोक के विषय में संदेह है परन्तु इन पदों का अर्थ मेरे कथनानुसार विचार कि जिस से तेरा संदेह दूर हो जाय । यह दश में गणधर हुए ।

फिर मोक्ष के विषय में शंकावाले प्रभास नामक पंडित को प्रभु कहते हैं–तू भी वेदार्थ को नहीं जानता? ''जरापर्य वा यदग्निहोत्रं'' इस पद से मोक्ष का अभाव प्रतीत होता है, क्योंकि जो अग्निहोत्र है वह 'जरामर्य' अर्थात् सदैव करना कहा है और अग्नि होत्र की क्रिया मोक्ष का कारण नहीं बन सकती, क्यों कि सदोष होने से कितने एक को वध का कारण बनती है और कितने एक को उपकार का । इससे मोक्ष साधक अनुष्ठान की क्रिया करने का काल नहीं बतलाया, इस कारण मोक्ष है नहीं, अर्थात् मोक्ष का अभाव

मेतार्य परलोक में शंका रखते थे ।

प्रभास को मोक्ष का संदेह था ।

प्रतीत होता है । तथा अन्यत्र कहा है कि-''द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये, परमपरं च, तत्र परं सत्य ज्ञानं, अनन्तरं ब्रह्मेति'' इत्यादि पदों से मोक्ष की सत्ता प्रतीत होती है । बस यहीं तेरे मन में शंका है । किन्तु यह ठीक नहीं है । क्यों कि ''जरापर्य वा यदग्निहोत्रं'' इस पद में 'व' शब्द 'अपि' के अर्थ में है और वह भिन्न क्रमवाला है । एवं ''जरामर्य यावत् अग्निहोत्रं अपि कुर्यात्'' अर्थात् स्वर्ग का इच्छुक हो उसे जीवन पर्यन्त अग्निहोत्र करना चाहिये और जो निर्वाण का अर्थी हो उसे अग्निहोत्र छोड़कर निर्वाणसाधक अनुष्ठान करना चाहिये, परन्तु नियम से 'अग्निहोत्र' ही करना ऐसा अर्थ नहीं है । इससे निर्वाण के अनुष्ठान का भी काल बतलाया है । यह ग्यारहवें गणधर हुए ।

इस प्रकार चार हजार चार सौ ब्राह्मणों ने प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण की । उनमें से मुख्य ग्यारहोंने त्रिपदी ग्रहणपूर्वक द्वादशांगी की रचना की और उन्हें प्रभु ने गणधर पद से विभूषित किया । द्वादशांगी की रचना के बाद प्रभु ने उन्हें उसकी अनुज्ञा करी । इंद्र वज्रमय दिव्य स्थल दिव्य चूर्ण से भरकर प्रभु के समीप खड़ा हो जाता है, प्रभु रत्नमय सिंहासन से उठकर उस चूर्ण की संपूर्ण मुष्टि भरते हैं, गौतम आदि ग्यारह ही गणधर अनुक्रम से जरा गरदन खड़े रहते हैं । उस वक्त देव भी वाद्य तथा गीतादि वन्द कर ध्यानपूर्वक सुनने लगे । फिर प्रभु बोले-''गौतम को द्रव्यगुण तथा पर्याय से तीर्थ की आज्ञा देता हूं'' यों कहकर प्रभु ने मस्तक पर चूर्ण डाला । फिर देवों ने भी उन पर चूर्ण, पुष्प और गन्ध की वृष्टि की । सुधर्मस्वामी को धुरीपद

For Private and Personal Use Only

पर स्थापित कर प्रभु ने गण की अनुज्ञा दी । इस तरह गणधरवाद समाप्त हुआ ।

अब उस काल और उस समय श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभु ने प्रथम चातुर्मास अस्थिक ग्राम की निश्राय में किया । फिर तीन चातुर्मास चंपा और पृष्ठचंपा की निश्राय में किये । इसी तरह बारह चौमासे वैशाली नगरी और वाणिज्य ग्राम की निश्राय में किये । चौदह चातुर्मास राजगृह नगर और नालंदा नामक पुरशाखा की निश्राय में किये । छह मिथिला में किये । दो भद्रिका नगरी में किये । एक आलंभिका नगरी में किया । एक श्रावस्ती नगरी में किया । एक वज्रभूमि नामक अनार्य देश में किया । एक अन्तिम चातुर्मास प्रभु ने अपापा नगरी में हस्तीपाल राजा के कारकूनों की पुरानी शाला में किया । प्रथम उस नगरी को अपापा कहते थे परन्तु वहां पर प्रभु का निर्वाण होने से देवों ने उसका नाम ''पापानगरी'' रक्खा । जिसको आज पावापुरी तीर्थक्षेत्र कहते हैं ।

(भगवान का निर्वाण कल्याणक)

अब अन्तिम चौमासा करने प्रभु मध्यम का पापानगरी में हस्तीपाल राजा के कारकूनों की शाला में पधारें । उस चातुर्मास में वर्षाकाल का चौथा महीना, सातवां पक्ष, कार्तिक मास का कृष्णपक्ष, उस कार्तिक मास की अमावस्या के दिन अन्तिम रात्रि थी उस रात्रि को श्रमण भगवान् श्रीमहावीर प्रभु कालधर्म पाये । कायस्थिति और भवस्थिति पूर्ण कर निर्वाण को प्राप्त हुए । संसार से पार उतर गये । भली प्रकार संसार में फिर

कर फिर यहां न आना पड़े ऐसे ऊर्ध्व प्रदेश में गये । जन्म, जरा और मृत्यु के कारणरूप कर्मों को छेदन करने वाले, सर्वार्थ को सिद्ध करने वाले, तत्वार्थो को जाननेवाले, तथा भवोपग्राही कर्मो से मुक्त होनेवाले, सर्व दुःखों का अन्त करनेवाले, सर्व संतापों के अभाव से परिनिर्वृत्त होकर प्रभु ने शारीरिक और मानसिक सर्व दुःखों का नाश कर दिया ।

जिस वर्ष में प्रभु निर्वाण पद को प्राप्त हुए वह चंद्र नामक दूसरा संवत्सर था । उस कार्तिक मास का प्रीतिवर्धन नाम था । वह पक्ष नंदीवर्धन नामा था । उस दिन का नाम अग्निवेश्य था तथा दूसरा नाम उसका उपशम था । देवानन्दा उस अमावस्या की रात्रि का नाम था । उसका दूसरा नाम निरति था । प्रभु जब निर्वाण पाये तब अर्च नामक लव था । मुहूर्त नामक प्राण था । सिद्ध नाम स्तोक था,नाग नामा करण था । यह शकुनि आदि चार करणों में से तीसरा करण था, क्यों कि अमावस्या के उत्तरार्ध में वही करण होता है । सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त में स्वाति नामा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग आजाने पर प्रभु कालधर्म को प्राप्त हुए, यावत् सर्व दुःखों से मुक्त होगये ।

अब संवत्सर, मास, दिन, रात्रि तथा मुहूर्त के नाम सूर्यप्रज्ञप्ति में निम्न प्रकार दिये हैं । एक युग में पांच संवत्सर होते हैं, उनके नाम चंद्र, चंद्र, अभिवर्धित, चंद्र और अभिवर्धित । तथा अभिनन्दन, सुप्रतिष्ठ, विजय प्रीतिवर्धन, श्रेयान्, निशिर, शोबन, हैमवान्, वसन्त, कुसुम, संभव, निदाघ और वनविरोधी से श्रावणादि

For Private and Personal Use Only

बारह महीनों के नाम हैं । तथा पूर्वांगसिद्ध, मनोरम, मनोहर, यशोभद्र, यशोधर सर्वकामसमृद्ध, इंद्र, मूर्धाभिषिक्त, सोमनस, धनंजय, अर्थ, अर्थसिद्ध, लामेजित रत्याशन, शंत्रुजय तथा अग्निवेश्य । ये पंद्रह दिन के नाम हैं । तथा उतमा, सुनक्षत्र, इलापत्या, यशोधरा, सौमनसी, श्रीसंभूता, विजया, विजयन्ती, अपराजिता, इच्छा, समाहारा, तेजा, अभितेजा, तथा देवानन्दा, ये पंद्रह रात्रियों के नाम हैं । तथा रूद्र, श्रेयान्, मित्र, वायु, सुप्रतीत, अभिचंद्र, माहेंद्र, बलवान्, ब्रह्मा, बहुसत्य, एशान, त्वष्टा, भावितात्मा, वैश्रवण, वारूण, आनन्द, विजय, विजयसेन, प्रजापत्य, उपशम गंधर्व, अग्निवेश्य, शतवृषभ, आतपवान्, अर्थवान्, ऋणवान्, भौम, वृषभ, सर्वार्थसिद्ध और राक्षस, ये तीस मुहूर्तों के नाम हैं ।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् श्रीमहावीर प्रभु कालधर्म पाये, यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए वह रात्रि स्वर्ग से आते जाते देव देवियों से प्रकाशवाली हो गई । तथा कोलाहलमयी जिस रात्रि को श्रमण भगवान् श्री महावीर प्रभु कालधर्म पाये, यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए उस रात्रि में गौतमगोत्रीय बड़े इंद्रभूति अणगार शिष्य को ज्ञातकुल में जन्मे हुए श्रीमहावीर प्रभु पर से प्रेमबन्धन टूट जाने पर अनन्त, अनुपम उत्तम केवल ज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ । वह वृत्तान्त निम्न प्रकार है ।

(गौतमस्वामी का विलाप और केवलज्ञान)

प्रभु ने अपने निर्वाण समय गौतम को किसी ग्राम में देवशर्मा ब्राह्मण को बोध करने के लिए भेज दिया

था । उसे प्रतिबोध देकर वापिस आते हुए श्रीगौतमस्वामी वीर प्रभु का निर्वाण सुनकर मानो वज्र से हणे गये हों इस प्रकार क्षणवार मौन होकर स्तब्ध रह गये । फिर बोलने लगे–''अहो आज से मिथ्यात्वरूप अंधकार पसरेगा ! कुतीर्थरूप उल्लु गर्जना करेंगे तथा दुष्काल, युद्ध वैरादि राक्षसों का प्रचार होगा । प्रभो ! आपके बिना आज यह भारतवर्ष राहू से चंद्र के ग्रस्त होजाने पर आकाश के समान है तथा दीपकविहीन भवन के समान शोभा रहित हो गया । अब मैं किसके चरणों में नम कर बारंबार पदों पदा का अर्थ पूछूंगा ? हे भगवन् हे भगवन् ऐसा अब मैं किसको कहूंगा और मुझे भी अब आदरवाणी से हे गौतम ! ऐसा कहकर कौन बुलायेगा ? हां ! हां ! हां ! वीर ! यह आपने क्या किया ? जो ऐसे समय मुझे आपसे दूर कर दिया !!! क्या मैं बालक के समान आपका पल्ला पकड़ कर बैठता ? क्या मैं आपके केवलज्ञान में से हिस्सा मांगता ? यदि आप साथ ही ले जाते तो क्या मोक्ष में भीड़ हो जाती ? या आपको कुछ भार मालूम होता था ? जो आप मुजे तज कर चले गये !! इस प्रकार गौतमस्वामी के मुख पर वीर ! वीर ! यह शब्द लग गया । फिर कुछ देर बाद–'हां मैंने जान लिया, वीतराग तो निःस्नेही होते हैं । यह तो मेरा ही अपराध है जो मैंने उस वक्त ज्ञान में उपयोग न दिया । इस एकपाक्षिक स्नेह को धिक्कार है ! अब स्नेह से सरा । मैं तो एकला ही हूं, संसार में न तो मैं किसी का हूं और न ही कोई यहां मेरा है, इस प्रकार सम्यक्तया एकत्व भावना भाते हुए गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हो गया । ''मोक्खमग्गपवण्णाणं, सिणेहो वज्जसिंखला । वीरे जीवन्तए जाओ, गोअमो जं न केवली ।।1।।''

For Private and Personal Use Only

मोक्षमार्ग में प्रवर्तते हुए जीव को स्नेह, वज्र की सांकल के समान है, क्यों कि स्नेह के कारण ही प्रभु महावीर के जीतेजी गौतमस्वामी को केवलज्ञान पैदा न हुआ ।

फिर प्रातःकाल होने पर इंद्रादि देवों ने महोत्सव किया । यहां पर कवि कहता है ''अहंकारोऽपि बोधाय, रागोऽपि गुरूभक्तये । विषादः केवलायाभूत्, चित्रं श्री गौतमप्रभोः'' ।।1।। गौतम प्रभु का सब कुछ आश्चर्यकारक ही हुआ, उनका अहंकार उल्टा बोध के लिए हुआ, राग भी गुरूभक्ति के लिए हुआ और विषाद केवलज्ञान के लिए हुआ !!!

श्री गौतमस्वामी बारह वर्ष पर्यन्त केवलिपर्याय को पाल कर और सुधर्मास्वामी को दीर्घायु जानकर गण सौंप कर मोक्ष सिधारे । फिर सुधर्मस्वामी को भी केवलज्ञान प्राप्त हुआ और वे भी उसके बाद आठ वर्ष तक विचर कर आर्य जंबूस्वामी को अपना गण सौंपकर मोक्ष पधारे ।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी मोक्ष गये, यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए उस रात्रि को नव मल्लकी जाति के काशी देश के राजा तथा नव लछकी जाति के कोशल देश के राजाओं का किसी कारण वहां पर संमिलन था । वे अठारह ही चेड़ा राजा के सामन्त कहलाते थे । उन्होंने उस अमावस्या के दिन संसार रूप समुद्र से पार करनेवाला उपवास पौषध व्रत किया हुआ था । अब संसार से भाव उद्योत चला गया अतः हम द्रव्य उद्योत करेंगे यह विचार कर उन्होंने दीपक जलाये । उस दिन से दीवाली का महोत्सव प्रचलित

हुआ । कार्तिक सुदि एकम के दिन देवताओं ने श्री गौतमस्वामी के केवलज्ञान का महोत्सव किया । इससे उस दिन भी मनुष्यों को हर्ष पैदा हुआ । जब नन्दिवर्धन राजा ने प्रभु का निर्वाण हुआ सुना तो वह शोकसागर में मग्न हो गये । इससे उन्हें सुदर्शना नामक उनकी बहिन ने समझा बुझाकर आदर सहित द्वितीया के दिन अपने घर पर भोजन कराया । उस दिन से भाईदूज का त्यौहार प्रचलित हुआ ।

जिस रात्रि में श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभु निर्वाण पद पाये यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए उस रात्रि को क्रूर स्वभाववाला भस्मरात्रि नामक तीसवां बड़ा ग्रह भगवान् के जन्मनक्षत्र में (उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में) संक्रमित हो गया था वह ग्रह दो हजार वर्ष की स्थितिवाला था, क्यों कि एक नक्षत्र में वह इतने समय तक रहता है । वे ग्रह हयासी हैं और उनके नाम निम्न प्रकार हैं :- अंगारक, विकालक, लोहिताक्ष, शनैश्वर, आधुनिक, प्राधुनिक, कण, कणक, कणकणक, कणवितानक, कणसंतानक, सोम, सहित, आश्वासन, कार्योपग, कर्बुरक, अजकरक, दुंदुभक, शंख, शंखनाभ, शंखवर्णावह कंस, कंसनाम, कंसवरणाभ, नील, नीलावभास, रूपी, बुध, रूपावभास, भस्म, भस्मराशि, तिल, तिलपुष्पवर्ण, दक, दकवर्ण, कार्य, वन्ध्य, इंद्राग्नि, धूमकेतु, हरि, पिंगल, शुक्र, वृहस्पति, राहु, अगस्ति, माणवक, कामस्पर्श धुर, प्रमुख, विकट, विसंधिकल्प, जटाल, अरूण, अग्निकाल, महाकाल, स्वस्तिक, सौवस्तिक, वर्धमान, प्रलंब नित्यालोक , नित्याद्योत, स्वयंप्रभ, अवभास, श्रेयस्कर, क्षमंकर, आभंकर, प्रभंकर, अरजा, विरजा, अशोक, वीतशोक, वितत, विवस्त्र, विशाल, शाल, सुव्रत, अनिवृत्ति

For Private and Personal Use Only

एकजटी, द्विजटी, कर, करक, राजा, अर्गल, पुष्प, भाव और केतु ।

जब से दो हजार वर्ष की स्थितिवाला क्रूर भस्मराशि नामक ग्रह श्रमण भगवान् श्रीमहावीर प्रभु के जन्मनक्षत्र में संक्रमित हुआ है तब से तपस्वी साधु, साध्वियों का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ वन्दनादि पूजन सत्कार न होगा । इसी लिए इंद्र ने प्रभु से कहा कि हे प्रभो ! एक क्षणवार आपका आयु बढ़ाओं, जिससे आप जीवित होने से आपके जन्म नक्षत्र में संक्रमित हुआ यह भस्मराशि ग्रह आप के शासन को पीड़ा न पहुंचा सके । तब प्रभु ने कहा – हे इंद्र ! कभी ऐसा नहीं हुआ कि क्षीण हुये आयु को जिनेश्वर भी बढ़ा सके, अतः तीर्थ को होनेवाली बाधा तो अवश्य ही होगी । पर छयासी वर्ष की आयुवाले कलकी नामक दुष्ट राजा को जब तू मारेगा तब दो हजार वर्ष होने पर मेरे जन्म नक्षत्र पर से भस्मग्रह भी उतर जायेगा और तेरे स्थापित किये हुए कलकी पुत्र धर्मदत्त के राज्य से लेकर साधु साध्वियों का पूजा सत्कार विशेष होने लगेगा ।

जिस रात्रि को श्रमण भगवान् श्रीमहावीर प्रभु कालधर्म पाये, यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए उस रात्रि में ऐसे सूक्ष्म कुंथुवे पैदा हुए जो न हिलते चलते हुए तो छद्मस्थ साधु साध्वियों की नजर में भी न आसकें । ऐसी परिस्थिति में आज से संयम पालना दुराराध्य होगा यह समझकर बहुत से साधु साध्वियों ने आहार पानी त्याग कर अनशन कर लिया । क्यों कि उन्होंने विचारा कि अब से भूमि जींवाकुल हो जायेगी, संयम पालने योग्य क्षेत्र का भी प्रायः अभाव ही होगा और पाखण्डियों का जोर बढ़ेगा ।

(भगवान् का परिवार)

उस काल और उस समय में श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभु के इंद्रभूति आदि चौदह हजार (14000) साधुओं की उत्कृष्ट साधु संपदा हुई । चंदनबाला आदि छत्तीस हजार (36000) साध्वियों की उत्कृष्ट श्रावक संपदा हुई । शंख, शतक आदि एक लाख उनसठ हजार (159000) श्रावकों की उत्कृष्ट श्रावक संपदा हुई । तथा सुलसा, रेवती आदि तीन लाख अढार हजार (318000) श्राविकाओं की उत्कृष्ट श्राविका संपदा हुई । (यहां पर जो सुलसा लीखी है वह बत्तीस पुत्रों की माता नागभार्या समझना चाहिये और रेवती प्रभु को औषध देनेवाली जानना चाहिये) तथा सर्वज्ञ नहीं किन्तु सर्वज्ञ के समान वस्तुस्वरूप कथन करने के सामर्थ्यवाले एवं सर्वाक्षरसंयोग को जाननेवाले तीन सौ (300) चौदहपूर्वियों की उत्कृष्ट संपदा हुई । अतिशय लब्धि को प्राप्त करनेवाले तेरह सौ (1300) अवधिज्ञानियों की उत्कृष्ट संपदा हुई । संपूर्ण और श्रेष्ठ ज्ञानदर्शन को धारण करने वाले सातसौ (700) केवलज्ञानियों की उत्कृष्ट संपदा हुई । देव नहीं किन्तु देव सम्बन्धि ऋद्धि को विकुर्वने में समर्थ ऐसे सातसौ (700) वैक्रिय लब्धिवालों की उत्कृष्ट संपदा हुई । तथा ढाई द्वीप और दो समुद्रों में पर्याप्ता संज्ञी पंचेंद्रियों के मनोगत भाव को जाननेवाले पांच सौ (500) विपुलमतियों की उत्कृष्ट संपदा हुई । विपुलमति उसको कहते हैं जो यह जानता हो-इसने जो घड़े का चिन्तन किया है वह सुवर्ण का बना हुआ है, पाटलीपुत्र में बना है, शरद् ऋतु में बना है, नीलवर्ण का है, इत्यादि सर्व भेद सहित चारों तरफ ढाई

For Private and Personal Use Only

अंगुल अधिक मनुष्य क्षेत्र में रहे हुए संज्ञी पंचेंद्रियों के मनोगत पदार्थो को जानता हो । ऋजुमतिवाले तो चारों तरफ संपूर्ण मनुष्य क्षेत्र में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रियों के मनोगत घट आदि पदार्थ मात्र को साधारणतया जानते हैं । इन दोनों में इतना ही भेद समझना चाहिये । तथा देव, मनुष्य और असुरों की सभा में वाद में पराजित न हो सकें ऐसे चार सौ (400) वादियों की उत्कृष्ट वादी संपदा हुई । श्रमण भगवंत श्रीमहावीर के सात सौ (700) शिष्यों ने मोक्ष प्राप्त किया यावत् सर्व दुःख से मुक्त हुए, तथा चौदह सौ (1400) साध्वियां मुक्ति में गई श्रमण भगवंत श्रीमहावीर प्रभु के आगामी मनुष्य गति में शीघ्र ही मोक्ष जानेवाले, देवभव में भी प्रायः वीतरागपन होने से कल्याणकारी और आगामी भव में सिद्ध होने के कारण श्रेयस्कारी ऐसे आठ सौ (800) अनुत्तर विमान में उत्पन्न होनेवाले मुनियों की उत्कृष्ट संपदा हुई ।

श्रमण भगवंत श्रीमहावीर प्रभु की दो प्रकार की अंतकृत भूमि हुई । पहली युगान्तकृत भूमि और दूसरी पर्यायन्तकृत भूमि । युग के उत्तम पुरूष का अन्त करे, वह युगान्तकृत भूमि-महावीर प्रभु के मोक्ष पधारने के बाद सौधर्मास्वामी और जम्बूस्वामी परंपरा से मोक्ष गये, यानी तीनों मोक्ष पधारे, अब पीछे कोई मोक्ष नहीं जाएगा; यह युगान्तकृत भूमि समझना । तीर्थंकर देव को केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद जब मोक्ष मार्ग शुरू हो वह पर्यायान्तकृत भूमि-महावीर प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न होने के चार वर्ष बाद मुक्तिमार्ग प्रारम्भ हुवा; यह 'पर्यायान्तकृत भूमि' समझना ।

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उस काल और उस समय में श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभु तीस वर्ष तक गृहस्थावास में रहकर बारह वर्ष से कुछ अधिक समय तक छद्मस्थ पर्याय पालकर तथा तीस वर्ष से कुछ कम समय तक केवली पर्याय पालकर, तथा समुच्चय बैतालीस वर्ष तक चारित्रपर्याय पालकर और बहत्तर वर्ष का अपना पूर्ण आयु पालकर, भवोपग्राही वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म क्षय होने पर, इस अवसर्पिणी में दुषमसुषम नामक चौथा आरा बहुतसा बीत जाने पर, अर्थात् उस आरे के तीन वर्ष और साढ़े आठ मास शेष रहने पर मध्यम पापानगरी में हस्तीपाल राजा के कारकुनों की शाला में सहाय न होने से एक, अद्वितीय अर्थात् अकेले ही परन्तु ऋषभ आदि के समान दश हजार परिवार सहित नहीं । कवि कहता है कि–भगवान् के साथ कोई शिष्य मुक्ति नहीं गया, इस से दुषम काल में शिष्य गुरू की परवाह न रक्खेंगे । चौविहार छट्ठ का तप कर के स्वाति नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग आने पर, चार घड़ी रात्रि बाकी रही थीं उस समय पद्मासन से बैठे हुए, पंचावन अध्ययन कल्याण फल के विपाकवाले, पंचावन अध्ययन पापफल के विपाकवाले और छत्तीस अपृष्ट व्याकरण अर्थात् बिना पूछे उत्तर कथन कर एक प्रधान नामक मरूदेवा अध्ययन को कथन करते हुए प्रभु काल धर्म पाये, संसार से विराम पाये, जन्म जरा मृत्यु के बन्धनों से मुक्त हुए, सिद्ध हुए, मुक्त हुए, सर्व संताप रहित हुए और सर्व दुःखों से रहित हुए ।

श्रमण भगवान् श्री महावीर प्रभु मोक्ष गये बाद नव सौ वर्ष बीतने पर दशवें सैके का यह अस्सीवां संवत्सर काल जाता है । यद्यपि इस सूत्र का स्पष्टार्थ मालूम नहीं होता तथापि जैसे पूर्व टीकाकारों ने

For Private and Personal Use Only

व्याख्या की है वैसे ही हम भी करते हैं । कितनेक कहते हैं कि पुस्तकाकार में लिखाने का काल बतलाने के लिए यह सूत्र श्रीदेवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने लिखा है, इससे यह अर्थ निकलता है कि जैसे श्रीवीर निर्वाण से नवसौ अस्सी वर्ष बीतने पर सिद्धान्त पुस्तकारूढ हुआ तब कल्पसूत्र भी पुस्तकारूढ हुआ है । कहां भी है–कि श्री वीर भगवान से नव सौ अस्सी वर्ष पर वल्लभीपुर नगर में श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण प्रमुख सकल संघ ने पुस्तक में आगम लिखे । दूसरे कहते हैं कि नवसौ अस्सी वर्ष पर आनन्दपुर में ध्रुवसेन राजा जो कि पुत्र मृत्यु से दुःखित था उसको आश्वासन देने के लिए कल्पसूत्र सर्व प्रथम संघ समक्ष महोत्सव पूर्वक पंडितों ने वांचना प्रारम्भ किया । इत्यादि अन्तर वाच्य के वचन से श्रीवीर निर्वाण से नव सौ अस्सी वर्ष बीतने पर कल्पसूत्र की सभा समक्ष वाचना हुई यह बताने के लिए यह सूत्र रक्खा है; परन्तु तत्व तो केवलीगम्य है । वाचनान्तर में यह भी देखा जाता है कि यह नवसौ तिराणवेवां वर्ष जाता है । कितने एक कहते हैं कि वाचनान्तर का तात्पर्य–दूसरी प्रत में 'तणउए' ऐसा पाठ मिलता है । अर्थात् किसी प्रत में नव सौ अस्सी और किसी में नव सौ तिराणवें लिखा मिलता है । कितने एक कहते हैं कि वीर निर्वाण से नवसौ अस्सी वर्ष बीतने पर कल्पसूत्र पुस्तकरूप में लिखा गया और वाचनान्तर से नवसौ तिराणवें में कल्पसूत्र की सभा में वाचना हुई । इसी प्रकार श्री मुनिसुन्दरसूरि ने अपने बनाये हुए स्तोत्ररत्नकोश में भी कहा है कि 'श्रीवीर से 993 वर्ष में चैत्य से पवित्र ऐसे आनन्दपुर में ध्रुवसेन राजा ने महोत्सव पूर्वक सभा में कल्पसूत्र की

प्रथम वाचना कराई, उस आनन्दपुर की स्तुति कौन नहीं करता ?' 'वल्लहीपुरंमि नयरे' इत्यादि वचन से पुस्तक लेखनकाल तो उपरोक्त प्रसिद्ध ही है परन्तु तत्व केवली जाने । इति श्रीवीरचरित्रं ।

सातवां व्याख्यान.

श्री पार्श्वनाथ भगवान् का जीवन चरित्र ।

अब जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट वाचना द्वारा श्रीपार्श्वनाथ प्रभु का चरित्र कहते हैं ।

उस काल और उस समय में पुरूषप्रधान अर्हन् श्रीपार्श्वनाथ प्रभु के पांचों कल्याणक विशाखा नक्षत्र में हुए । विशाखा नक्षत्र में प्रभु स्वर्ग से च्यवकर माता के गर्भ में उत्पन्न हुए, विशाखा नक्षत्र में प्रभु का जन्म हुआ, विशाखा नक्षत्र में हीं घर का त्याग कर पंच मुष्टि लोच करके प्रभु ने दीक्षा ग्रहण की । विशाखा नक्षत्र में हीं प्रभु अनन्त, अनुपम, निर्व्याघात, निरावरण, समग्र और परिपूर्ण केवलज्ञान एवं केवलदर्शन पाये और विशाखा नक्षत्र में हीं प्रभु मोक्ष सिधाए ।

For Private and Personal Use Only

पार्श्वनाथ भगवान् का च्यवन और जन्म कल्याणक ।

उस काल और उस समय में पुरूषों में प्रधान अर्हन् श्री पार्श्वनाथ प्रभु; जो ग्रीष्म काल का पहला मास, पहला पक्ष, अर्थात् चैत्र का कृष्णपक्ष, उस चैत्र मास की कृष्ण चौथ के दिन बीस सागरोपम की स्थितिवाले प्राणत नामक दशवें देवलोक से अन्तर रहित च्यवकर इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में वाणारसी नगरी में अश्वसेन राजा की वामा नाम की रानी की कुक्षि में देव सम्बन्धी आहार, भव, स्थिति और शरीर को त्याग कर, मध्य रात्रि के समय विशाखा नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग आजाने पर गर्भतया उत्पन्न हुए । वे पुरूषप्रधान अर्हन् श्रीपार्श्वनाथ गर्भ में ही तीन ज्ञान सहित थे । ''मैं स्वर्ग से चलूंगा यह जानते थे, चलते हुए नहीं जानते थे और चले बाद मैं चला हूं यह भी जानते थे'' । प्रथम श्रीमहावीर प्रभु के च्यवन समय कथन किये पाठ मुजब स्वप्नदर्शन, आदि सब कुच्छ जहां तक वामा देवी वापिस अपने शयन घर तरफ आई और सुखपूर्वक गर्भ को पालन करने लगी, इस तरह समझ लेना चाहिये।

अब उस काल और उस समय पुरूषप्रधान अर्हन् श्रीपार्श्वनाथ प्रभु जो शरद् काल का दूसरा महिना, तीसरा पक्ष, अर्थात् पोष मास का कृष्ण पक्ष, उस पोष मास की वदि दशमी के दिन नव महिने और साढ़े सात दिन परिपूर्ण होने पर मध्य रात्रि में विशाखा नक्षत्र में चंद्रयोग प्राप्त होने पर निरोग शरीरवाली वामादेवी की कुक्षी से प्रभु रोग रहित पुत्रतया उत्पन्न हुए । जिस रात्रि में पुरूषप्रधान अर्हन् श्रीपार्श्वनाथ प्रभु जन्मे वह

रात्रि में बहुत से देव-देवियों से आकुल अर्थात् हर्ष परिपूर्ण शब्द से कोलाहलमयी हो गई ।

शेष प्रभु का जन्म महोत्सव आदि वृत्तान्त प्रभु वीर के समान समझ लेना चाहिये, परन्तु पार्श्वनाथ के नाम से कहना चाहिये । जब प्रभु गर्भ में थे तब शय्या में रही हुई माता ने अपने पास से जाता हुआ कृष्ण सर्प देखा था इसी कारण उनका नाम पार्श्व रक्खा था । अब क्रम से प्रभु यौवन वय को प्राप्त हुए । अर्थात् इंद्रद्वारा नियुक्त की हुई पांच धाय माताओं से लालितपालित होते हुए नव हाथ शरीर प्रमाणवाले युवावस्था को प्राप्त हुए । कुशस्थल के राजा प्रसेनजित की प्रभावती कन्या के साथ प्रभु के माता-पिता ने उनका विवाह किया ।

नागोद्धार

एक दिन अपने महल में प्रभु बारी में बैठे थे । उस वक्त एक दिशा तरफ पुष्पादि पूजा की सामग्री सहित नगरजनों को जाते देख प्रभु ने किसी एक मनुष्य से पूछा कि ये लोग कहां जाते हैं ? उस मनुष्य ने कहा कि -हे स्वामिन् ! नगर से बाहर किसी ग्राम का रहनेवाला जिस के माता पिता मर गये हैं ऐसा एक कमठ नामक तापस आया है, वह दरिद्री ब्राह्मण पुत्र लोगों की सहायता से अपनी आजीविका चलाता था । एक दिन उसने रत्नाभरण भूषित नगर निवासियों को देख कर विचारा कि अहो ! यह सब ऋद्धि पूर्व जन्म के तप का फल है । यह जान कर वह उस दिन से पंचाग्नि आदि तप तपने लगा है । बस वही कमठ तापस नगरी से बाहर आया हुआ है उसकी पूजा करने को ये सब लोग जाते हैं । यह सुन कर प्रभु भी सपरिवार

For Private and Personal Use Only

उसे देखने वहां गये । उसकी धूनी में एक काष्ठ में जलते हुए एक सर्प को अपने ज्ञान से जान कर प्रभु उस तापस को बोले–हे मूढ तपस्वी ! दया बिना व्यर्थ ही यह कष्ट क्यों करता है ? क्यों कि संसार के समस्त धर्म दयारूप नदी के किनारे पर ऊगे हुए घास के तृण समान हैं, अतः उसके सूख जाने पर वे कब तक हरे रह सकते हैं ? यह सुन कर क्रोधित हो कमठ तापस कहने लगा–राजपुत्र तो हाथी घोड़ों की क्रीड़ा करना ही जानते हैं परन्तु धर्म को तो हम तपोधन ही जानते हैं । फिर प्रभु ने अग्नि में से वह लक्कड़ निकलवा कर उसको चींरा कर उस में अग्नि ताप से संतप्त व्याकुल हुए एक सर्प को बाहर निकलवाया, और वह सर्प प्रभु के नौकर के मुख से नवकार मंत्र तथा प्रत्याख्यान सुन कर तुरन्त मृत्यु पाकर धरणेंद्र हुआ । तत्रस्थ लोगों ने प्रभु की अहो ! ज्ञानी इत्यादि कह स्तुति की । प्रभु फिर अपने घर गये और कमठ तप तपकर मेघकुमार देवों में देव हुआ ।

प्रभु का दीक्षा कल्याणक

दृढ़ प्रतिज्ञावाले, रूपवान्, गुणवान्, सरल परिणामवाले और विनयवान्, पुरूषों में प्रधान अर्हन् श्री पार्श्वनाथ प्रभु तीस वर्ष तक गृहस्थावास में रहे । फिर जीतकल्पवाले लौकान्तिक देवों ने इष्टादि वाणी से इस प्रकार कहा–हे समृद्धिमन् ! आप जयवन्ते रहो, हे कल्याणवान् ! आप की जय हो । यावत् उन्होंने जय जय शब्द का उच्चार किया ।

पहले भी पुरूषप्रधान अर्हन् श्री पार्श्वनाथ प्रभु का गृहस्थ धर्म में मनुष्य के योग्य अनुपम उपयोगरूप अवधिज्ञान था । पूर्वोक्त वीर प्रभु के समान सब कुछ समझ लेना चाहिये । यावत् गोत्रियों को धन बांट कर, शरद् काल का जो दूसरा मास, तीसरा पक्ष, अर्थात् पोष मास का कृष्ण पक्ष, उस पोष मास की कृष्ण एकादशी के दिन प्रथम पहर में विशाला नाम की पालकी में बैठकर देव, मनुष्य और असुरों का समूह जिन के आगे चल रहा है ऐसे प्रभु वाणारसी नगरी के मध्य भाग से निकल कर आश्रमपद नामा उद्यान में जाते हैं । अशोक वृक्ष के नीचे आकर अपनी पालकी को ठहरवाते हैं । पालकी में से उतर कर अपने आप शरीर से आभूषण माला आदि उतारते हैं, फिर प्रभु स्वयं पंच मुखी लोच करते हैं, चौविहार अट्ठम का तप कर विशाखा नक्षत्र में चंद्रयोग प्राप्त होने पर इंद्र का दिया एक देवदूष्य वस्त्र ले प्रभु तीन सौ मनुष्यों के साथ घरत्याग कर साधुपन को प्राप्त होते हैं अर्थात् दीक्षा ग्रहण करते हैं ।

पुरूषों में प्रधान अर्हन् श्रीपार्श्वनाथ प्रभु ने तिरासी दिन तक निरन्तर शरीर को वोसरा कर-अर्थात् ममत्व न रखकर देव, मनुष्य और तिर्यचों द्वारा किये हुए अनुकूल वो प्रतिकूल उपसर्गों को भली प्रकार सहन किया । उनमें देवकृत उपसर्ग कमठजीव मेघमाली का है जो निम्न प्रकार से है ।

मेघमाली का घोर उपसर्ग

दीक्षा लेकर विचरते हुए प्रभु एक दिन एक तापस के आश्रम में एक कुवे के नजीक बड़ के वृक्ष नीचे एक

For Private and Personal Use Only

रात्रि को प्रतिमा ध्यान से खड़े थे । उस वक्त वह मेघमाली नामा देव प्रभु को उपद्रव करने आया । क्रोधान्ध हो उसने दिव्य शक्ति द्वारा बनाकर शेर, बिच्छू आदि के रूपों से प्रभु को ड़राया परन्तु प्रभु को भय रहित देख आकाश में अंधकार सरीखे घोर बादल बना कर कल्पान्तकाल के मेघ समान मूसलधार से वृष्टि शुरू की । सब दिशाओं में भयंकर बिजली का तड़तड़ाट और ब्रह्माण्ड को फोड़ डाले इस प्रकार की घनगर्जनाओं की गड़गड़ाट शुरू कर दी।और वर्षा चालु करने से थोडे हीं समय में प्रभु के नाक तक पानी चढ़ आया । उसी वक्त धरणेंद्र का आसन हिलने लगा । ज्ञान से जान धरणेंद्र अपनी पट्टरानीयों सहित तुरन्त वहां आया और प्रथम अपनी फणाओं से उसने प्रभु पर छत्र धारण किया । फिर धरणेंद्र ने अवधिज्ञान से मेघमाली को ईर्षा से वर्षता देख उसे धमकाया । मेघमाली प्रभु से क्षमा मांगकर तथा प्रभु का शरण ले अपने स्थान पर चला गया । धरणेंद्र भी प्रभु समक्ष नाटयादि पूजा कर अपने स्थान को चला गया । इस प्रकार प्रभु ने देवादिकृत उपसर्गों को भली प्रकार सहन किया ।

प्रभु का कैवल्यज्ञान कल्याणक ।

अब पार्श्वनाथ प्रभु अणगार हुए और जाने आने की उत्तम प्रवृति वाले हुए, उन्हें आत्म भावना भाते हुए तिरासी दिन बीत गये । जब चौरासीवां दिन बीत रहा था, ग्रीष्म काल का प्रथम मास और प्रथम हीं पक्ष था, उस चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की चौथ के दिन पहले पहर के समय घातकी नामा वृक्ष के नीचे जब

प्रभु ने पानी रहित छट्ठ तप किया हुआ था, विशाखा नक्षत्र में चंद्र योग आने पर शुक्ल ध्यान के प्रथम के दो भेद ध्याते हुए प्रभु को अनन्त अनुपम यावत् श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हुआ । अब सब जीवों के भावों को देखते और जानते हुए भगवन्त विचरने लगे ।

भगवन्त का परिवार ।

पुरूषप्रधान अर्हन् श्रीपार्श्व प्रभु के आठ गण और आठ हीं गणधर थे । एक वाचनावाले यतिसमूह को

---

1 जैन सम्प्रदाय में ज्ञान के पांच भेद हैं-पहला मतिज्ञान जिस से कि मनुष्य हर एक बात को विचार सकता है-समझ सकता है । दूसरा श्रुतज्ञान है जिस के द्वारा मनुष्य हर एक बात को कह सकता है और सुन सकता है । तीसरा अवधिज्ञान है कि जिस के द्वारा मनुष्य पांचों इंद्रियों से हजारों लाखों करोंडों यावत् असंख्य योजनों पर रही हुई वस्तु को भी अपने ज्ञान बल से देख सकता है और जान सकता है । चौथा मनःपर्यव ज्ञान है जिस से मनुष्य को ऐसी शक्ति पैदा हो जाती है कि वह एक दूसरे के मन की बातों को भी जान लेता है । पांचवां केवलज्ञान है यह ज्ञान पहले चार ज्ञानों से अत्यंत निर्मल लोकालोकप्रकाशक और सर्व भावों को चाहे वो रूपी या अरूपी हों देखने और जानने की ताकत रखता है । इस से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है । कुछ लोगों ने इसको ब्रह्मज्ञान माना है, कुछ मतावलंबिओंने इसको अलौकिक शक्ति माना है और कुछ शास्त्रकारों ने इसे योग शक्ति की पराकाष्ठा माना है । यह ज्ञान जिसको पैदा हो जाता है वो यथार्थवादी होता है, आप्त सर्वज्ञ कहा जाता है । उसके आगे लोकालोक की कोई चींज छानी नहीं रह जाती । सर्व हीं तीर्थंकर भगवंत घरबार छोडकर दीक्षा लेकर तपस्या कर के इस केवलज्ञान को हासिल करने की ही चेष्टा करते हैं । और जब उन्हें यह ज्ञान हासिल हो जाता है तभी वो संसार को मोक्ष का मार्ग बतलाते हैं । उनके कहे हुए मार्ग पर चलने वालों को भी आखीर जाकर केवलज्ञान होता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

For Private and Personal Use Only

गण कहते हैं और उस गण के नायक–सूरि वे गणधर कहलाते हैं । वे श्री पार्श्वनाथ के आठ गणधर थे, परन्तु आवश्यक सूत्र में दश गण और दश गणधर कहे हुए हैं । स्थानांग सूत्र में दो अल्पायुषी होने के कारण वे नहीं कथन किये, ऐसा टिप्पण में बतलाया है । उन आठों के नाम ये थे–शुभ, आर्यघोष, वशिष्ट, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र और यशस्वी ।

पुरूषप्रधान अर्हन् श्रीपार्श्वनाथ प्रभु के आर्यदिन्न आदि सोलह हजार (16000) साधुओं की उत्कृष्ट साधुसपंदा हुई । पुष्पचूला प्रमुख अड़तीस हजार (38000) साध्वियों की उत्कृष्ट साध्वीसंपदा हुई । सुव्रत प्रमुख एक लाख चोसठ हजार (164000) श्रावकों की उत्कृष्ट श्रावकसंपदा हुई । सुनन्दा प्रमुख तीन लाख सत्ताइस हजार (327000) श्राविकाओं की उत्कृष्ट श्राविकासंपदा हुई । केवली न होने पर भी केवली के समान साढ़े तीन सौ (350) ऐसे चौदह पूर्वियों की उत्कृष्ट संपदा हुई । चौदह सौ (1400) अवधि ज्ञानियों की, एक हजार (1000) केवलज्ञानियों की, ग्यारह सौ (1100) वैक्रिय लब्धिधारी मुनियों की और छहसौ (600) मनःपर्याय ज्ञानवाले मुनियों की संपदा हुई । एवं एक हजार (1000) साधु मोक्ष गये और दो हजार (2000) साध्वियां मुक्ति गई । आठसौ (800) विपुलमतियों की, छह सौ (600) वादियों की तथा बारह सौ (1200) अनुत्तर विमान में पैदा होनेवाले मुनियों की संपदा हुई ।

पुरूष प्रधान श्री पार्श्वनाथ प्रभु की दो प्रकार की अन्तगड़ भूमि हुई । पहली युगान्तकृत् भूमि और दूसरी

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पर्यायान्तकृत् भूमि । श्री पार्श्वनाथ भगवान से लेकर चार पट्टधर मोक्ष पधारे, यह युगान्तकृत भूमि जानना । तथा प्रभु को केवलज्ञान होने के तीन वर्ष पीछे मोक्षमार्ग प्रचलित हुआ यह पर्यायान्तकृत् भूमि जानना चाहिये ।

प्रभु का मोक्ष कल्याणक ।

उस काल और उस समय में पुरूषप्रधान अर्हन् श्रीपार्श्वनाथ प्रभु तीस वर्ष तक गृहस्थावास में रह कर, तिरासी दिन छद्मस्थपर्याय पाल कर और तिरासी दिन कम सत्तर वर्ष तक केवलीपर्याय पाल कर एवं सत्तर वर्ष चारित्रपर्याय पाल कर और एक सौ वर्ष का सर्व आयु पाल कर वेदनी, आयु, नाम एवं गोत्रकर्म के क्षय हो जाने पर इसी अवसर्पिणी काल में दुषमसुषम नामा चौथा आरा बहुतसा बीत जाने पर जो चातुर्मास काल का पहला महीना और दूसरा पक्ष था अर्थात् श्रावण मास की शुक्ला अष्टमी के दिन सम्मेतशिखर नामक पर्वत के शिखर पर तेतीस साधुओं के साथ चौविहार मासक्षमण का तप कर के विशाखा नक्षत्र में चंद्र योग प्राप्त होने पर प्रथम पहर में दोनों हाथ पसारे हुए कायोत्सर्ग ध्यानमुद्रा में मोक्ष सिधाएं, निवृत्ति पाये, यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

पुरूष प्रधान अर्हन् श्री पार्श्वनाथ प्रभु को निर्वाण हुए बारह सौ वर्ष बीत गये और तेरहसौवें सैके का यह तीसवां वर्ष जाता है । उसमें श्री पार्श्वनाथ प्रभु के निर्वाण से ढाई सौ वर्ष बाद श्री वीर निर्वाण हुआ और उसके बाद नवसौ अस्सी वर्ष बीतने पर पुस्तकवाचना हुई, इससे तेरहसौ सैंके का यह तीसवां वर्ष जाता है । श्री पार्श्वनाथ प्रभु

For Private and Personal Use Only

का चरित्र समाप्त हुआ ।

श्री नेमिनाथ भगवान् का चरित्र ।

उस काल और उस समय में अर्हन् श्रीनेमिनाथप्रभु के पांचों कल्याणक चित्रानक्षत्र में हुए हैं, सो इस प्रकार हैं :- चित्रानक्षत्र में प्रभु स्वर्ग से च्यव कर माता के गर्भ में उत्पन्न हुए, चित्रानक्षत्र में उनका जन्म हुआ, चित्रानक्षत्र में दीक्षा ली, चित्रानक्षत्र में केवलज्ञान और केवलदर्शन हुआ तथा चित्रानक्षत्र में ही प्रभु मोक्ष गये ।

श्री नेमिनाथ का च्यवन और जन्मकल्याणक ।

उस काल और उस समय में अर्हन् श्री नेमिनाथप्रभु चातुर्मास का जो चौथा महीना और सातवां पक्ष था-कार्तिक वदि द्वादशी के दिन बत्तीस सागरोपम की स्थितिवाले अपराजित नामक महाविमान से अन्तर रहित च्यव कर इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, सौर्यपुर नामा नगर में, समुद्रविजय नामक राजा की शिवादेवी नामा रानी की कुक्षि में मध्यरात्रि में, चित्रानक्षत्र के साथ चंद्रयोग प्राप्त होने पर गर्भतया उत्पन्न हुए । यहां पर माता को हुए स्वप्नदर्शन तथा व्यन्तर देवों से आया हुआ निधानादि सब कुछ पूर्ववत् कहना ।

उस काल और उस समय में अर्हन् श्रीनेमिनाथप्रभु वर्षाकाल के प्रथम मास और दूसरे पक्ष में श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन नव मास पूर्ण होने पर यावत् चित्रानक्षत्र में चंद्रयोग प्राप्त होने पर निरोग शरीरवाली शिवादेवी की कुक्षि से पुत्ररूप उत्पन्न हुए । यहां जन्ममहोत्सव समुद्रविजय राजा ने किया ऐसा जानना चाहिये ।

तथा हमारे इस कुमार का नाम अरिष्टनेमि हो, इस तरह कथन किया गया ।

प्रभु जब गर्भ में थे तब माता ने स्वप्न में अरिष्ट रत्नमय चक्र की धार देखी थीं इसी से प्रभु का अरिष्टनेमि नाम रक्खा गया । अरिष्ट में आदि का अमंगल दूर करने के लिये है, क्योंकि रिष्ट शब्द अमंगलवाची है । अरिष्टनेमि विवाहित न होने के कारण कुमार कहलाते हैं । वे विवाहित नहीं हुए सो प्रकरण इस प्रकार है । एक दिन शिवादेवी माता ने प्रभु को युवावस्था प्राप्त देख कर कहा – हे वत्स ! तू विवाह मंजूर करके हमारे मनोरथ पूर्ण कर । प्रभु ने कहा–माताजी ! जब योग्य कन्या मिलेगी तब विवाह करूंगा ।

भगवान का अतुल पराक्रम ।

एक दिन कौतुक रहित होने पर भी प्रभु मित्रकुमारों से प्रेरित हो क्रीड़ा करते हुए वासुदेव की आयुध (शस्त्र) शाळा में चले गये । वहां पर कुतहूल देखने की इच्छावाले मित्रों के आग्रह से उन्होंने ❖ वासुदेव का सुदर्शन चक्र उठा लिया और अंगुली के अग्रभाग पर कुंभार के चाक के समान उसे घुमाया । शार्ङ्ग धनुष्य भी कमलनाल के समान नमा दिया । कौमोदिकी नामा गदा को भी एक लकड़ी के तुल्य उठा लिया । तथा पांचजन्य शंख को उठा कर उसे मुख से लगा उस में जोर से फूंक मारी ।

❖ वासुदेव के प्रत्येक रत्न का ऐसा प्रभाव है कि उसकी हजार–हजार देवता रक्षा करते हैं । उन्हें उठाना तो दूर रहा, उनके नजदीक भी कोई नहीं आ सकता । मगर भगवान् तो अनंत शक्तिवाले थे इसलिये उनके लिये कोई असम्भव वान नहीं थी ।

For Private and Personal Use Only

प्रभु के मुखकमल से प्रगट हुए पवनद्वारा पांचजन्य शंख की आवाज से वासुदेव के हाथीयों का समूह अपने बन्धन स्तंभों को उखेड़कर घरों की पंक्तियों को तोडता हुआ भागने लगा । तथा वासुदेव के घोड़े भी तुरन्त ही अपने बन्धन तोड़ कर अश्वशाला से भागने लगे । उस वक्त उस शंखनाद से सारा शहर अति व्याकुलता के साथ बहरा सा हो गया । इस प्रकार के शंखनाद को सुनकर 'आज कोई शत्रु पैदा हो गया है' ऐसे विचार से व्याकुल चित्तवाले श्रीकृष्ण महाराज तुरन्त ही आयुधशाला में आये । वहां पर नेमिनाथ प्रभु को देखकर मन में आश्चर्य मनाते हुए अपनी भुजा के बल की तुलना करने के लिए श्रीकृष्ण महाराज ने प्रभु से कहा–हम दोनों अपने बल की परीक्षा करें । यों कह कर प्रभु को साथ ले वे मल्ल अखाड़े में आये । वहां पर प्रभु ने श्रीकृष्ण महाराज को कहा–हे भाई ! धुल में आलोट कर बल की परीक्षा करना अनुचित है । बल की परीक्षा करने के लिए तो आपस में एक दूसरे की भुजा का मोड़ना ही काफी है । दोनों ने यह बात मंजूर कर ली । प्रथम श्रीकृष्ण महाराज ने अपना हाथ पसारा । प्रभु नेमिने उस हाथ को बैंत के या कमलनाल के समान तुरन्त ही मोड़ दिया । फिर प्रभु ने अपना हाथ लंबा किया । कृष्ण से जब जोर लगाने पर भी प्रभु का हाथ न मुड़ा तब हाथ पर श्रीकृष्ण ऐसे लटक गये जैसे कोई वृक्ष की शाखा पर बंदर लटकता हो, उस वक्त खेद से मुख पर आई हुई दुगुनी श्यामता से हरिने यथार्थ ही अपना नाम हरि के (बन्दर के) समान कर दिया । जब अत्यन्त जोर लगाने पर भी प्रभु का हाथ जरा भी न मुड़ा तब मन में चिन्तातुर हो

कृष्ण महाराज विचारने लगे–यह नेमिकुमार तो सुखपूर्वक मेरा राज्य ले लेवेगा ! सचमुच ही स्थूल बुद्धिवाले मूर्ख मनुष्य केवल कष्ट के ही भागीदार बनते हैं और फल बुद्धिमान् ले लेते हैं । जैसे कि समुद्र का मंथन तो किया शंकरजी ने और उससे प्राप्त हुए रत्न देवों ने ले लिये । देखो खाद्य पदार्थ को चबा चबा कर कष्ट से रसदार तो दांत बनाते है और जीभ सहज में ही सटक लेती है ।

प्रभु को विवाह मंजूर कराने के लिए गोपीयों का प्रयत्न ।

फिर श्री कृष्ण बलभद्र के साथ विचार करने लगे कि ''अब हमे क्या करना चाहिये ? राज्य की इच्छावाला नेमिकुमार तो बहुत बलवान् है'' इतने ही में आकाशवाणी हुई–'हे हरे ! पूर्व में श्री नेमिनाथ प्रभु ने कहा हुआ है कि बाईसवां तीर्थंकर नेमि नामक कुमार अवस्था में ही दीक्षा ले लेगा,' इस देववाणी को सुन कर श्री कृष्ण निश्चिन्त हुए । तथापि निश्चयार्थ नेमिनाथप्रभु को साथ ले जलक्रीडा करने के लिए अपनी रानियों सहित तालाब पर गये । वहां प्रेम से नेमिकुमार का हाथ पकड़कर कृष्ण ने तुरन्त ही तालाब पर गये । वहां प्रेम से नेमिकुमार का हाथ पकड़कर कृष्ण ने तुरन्त हीं तालाब में प्रवेश किया । वहां नेमिनाथप्रभु को केशर का रंगवाला पानी सुवर्ण की पिचकारियों में भर कर सिंचित करने लगे । रूक्मिणी आदि गोपियों को कृष्ण ने पहले से हीं कहा हुआ था कि नेमिकुमार के साथ निःशंकतया क्रीड़ा करके उसे विवाह कि लिए तैयार करना । फिर उन गोपियों में से कितनी एक प्रभु पर केशरी उत्तम जलसमूह फेंकने लगीं । कितनी एक सुन्दर पुष्पसमूह की गेंद बना कर प्रभु की छाती पर मारने लगीं । कई एक उन्हें तीक्ष्ण कटाक्षों के बाणों

For Private and Personal Use Only

से बाँधने लगीं । कितनी एक कामकला के विलास में कुशलता रखनेवाली उन्हें हंसी से विस्मय करने लगीं । फिर वे सब मिल कर सुवर्ण की पिचकारीयों में सुगंधित जल भर कर प्रभु को व्याकुल करने का प्रयत्न करने लगीं । तथा क्रीडा से उल्लसित मनवाली हो सतत परस्पर हंसने लगीं । इतने ही में आकाश में देववाणी हुई और वह सबने सुनी । "हे मुग्धा स्त्रियों ! तुम्हें मालूम नहीं कि इन प्रभु को पैदा होते ही चौसठ इन्द्रों ने एक योजन प्रमाण चौड़े मुखवाले हजारों बड़े-बड़े कलशों से मेरूपर्वत पर स्नान कराया था उस वक्त उस असंख्य जल प्रवाह से भी जो प्रभु व्याकुल न हुए, तो क्या अब तुम्हारी इन पिचकारियों के जल से वो व्याकुल हो जायेंगे ? अब नेमिप्रभु भी गोपियों और श्री कृष्ण पर पिचकारी चलाने लगे तथा कमल पुष्प की गैंदें उनकी छाती पर मारने लगे । इस प्रकार जलक्रीड़ा कर वे सब तालाब के किनारे आये और वहां प्रभु को एक सिंहासन पर बैठा कर वे सब गोपीआं उनको घेर कर खड़ी हो गई । फिर उनमें से रूक्मिणी बोली-हे नेमिकुमार ! तुम निर्वाह चलाने के भय से विवाह नहीं कराते यह अयुक्त है, परन्तु तुम्हारे भाई समर्थ हैं, उन्होंने बत्तीस हजार स्त्रियो से विवाह किये हुए और वे सब का निर्वाह करते हैं। सत्यभामाने कहा-ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों ने भी विवाह कराया था । राज्य सुख भोगा, विषय सुख भोगे और उन्हें बहुत से पुत्र भी हुए थे एवं अन्त में वे मोक्ष भी गये; परन्तु तुम तो आज कोई नये ही मोक्षमार्गी बने हो, अतः हे अरिष्टनेमि ! तुम खूब विचार करो । हे देवर ! तुम गृहस्थपन की सुन्दरता को जान कर बन्धुजनों को शान्त करो । फिर जाम्बवती तुर्त

बोली–हे नेमिकुमार ! सुनो, पहले भी हरिवंश कुल में भूषण समान श्रीमुनिसुव्रतस्वामी बीसवें तीर्थंकर हुए उन्होंने भी गृहस्थावास में रह कर पुत्रोत्पत्ति होने के बाद दीक्षा अंगीकार की थीं और मोक्ष में गये थे । फिर पद्मावती ने कहा–हे कुमार ! इस संसार में निश्चय ही स्त्री बिना मनुष्य की कुच्छ शोभा नहीं है एवं स्त्री रहित मनुष्य का कोई विश्वास भी नहीं करता, क्योंकि स्त्रीरहित मनुष्य विट कहलाता है । इतने में गांधारी बोली–हे बुद्धिमान कुमार ! सज्जन यात्रा अर्थात् घर पर श्रेष्ठ मनुष्य मेहमान आवें उनकी मेहमानगीरी करना, संघ निकालना, पर्व का उत्सव करना, घर पर विवाह कृत्य हो, बारफेर और पर्षदा ये सब अच्छे काम स्त्री के बिना नहीं शोभते । फिर गौरी बोली–देखो ज्ञानरहित पक्षी भी सारा दिन जहां तहां भटक कर रात को अपने घौसले में जाकर अपनी स्त्री के साथ निवास करते हैं इसलिए हे देवर ! क्या तुम्हारे में पक्षियों जितनी भी समझ नहीं है ? लक्ष्मणा बोली–स्नान आदि सर्व अंग की शोभा में विचक्षण, प्रीतिरस से सुन्दर, विश्वास का पात्र और दुःख में सहाय करनेवाला स्त्री के बिना और कौन होता है ? अंत में सुसीमा कहने लगी–स्त्री बिना घर पर आये हुए महमानों की और मुनिराजों की सेवाभक्ति कौन करे और अकेला पुरूष शोभा भी कैसे प्राप्त कर सकता है ? इस तरह गोपियों के वचनों और यादवों के आग्रह से मौन रहे हुए और जरा सा मुस्कराते प्रभु को देखकर 'अनिषिद्धं अनुमतं' अर्थात् जिस बात का निषेध नहीं किया जाता उसकी रजामंदी समझी जाती है, इस न्याय से उन गोपियों ने यह घोषणा कर दी कि कि नेमिकुमार ने विवाह कराना मंजूर कर लिया है ।

For Private and Personal Use Only

अब श्रीकृष्ण महाराज ने अपने मनोरथ को सफल होता देख कर शीघ्र ही राजा उग्रसेन के राजमहल का रास्ता लिया और उनकी महान् रूपवती पुत्री राजीमति की मांग की । और क्रोष्टिक नामक ज्योतिषी से विवाह का शुभ दिन पूछा । उसने कहा–इस वर्षाकाल में अन्य भी शुभ कार्य नहीं करते तब फिर गृहस्थियों के लिए मुख्य कार्य विवाह की तो बात ही क्या ? समुद्रविजय राजा ने कहा–कालक्षेप की जरूरत नहीं है, क्योंकि कृष्णजी ने बड़ी मुश्किल से तो नेमिकुमार को विवाह करना मंजूर कराया है । इसलिए जिसमें कोई विघ्न न आवे ऐसा नजदिक का दिन बतलाओ । तब ज्योतिषी ने श्रावण सुदि छठ का दिन बतलाया ।

प्रभु का विवाहोत्सव ।

उत्तम श्रृंगार युक्त, प्रजा को हर्षित करनेवाले, रथ मे बैठे हुए, उत्तम छत्र धारण कराये हुए, समुद्रविजय आदि दश दशाई और केशव, बलभद्र आदि विशिष्ट परिवारवाले तथा शिवादेवी आदि स्त्रियों से जिस के धवल मंगल गीत गाये जा रहे हैं ऐसे श्रीनेमिकुमार व्याहने को चले ।

आगे जा कर नेमिकुमारने अपने रथवान से पूछा–यह पताकाओं से सुशोभित महल किस का है ? रथवान अंगुली उठा कर बोला–यह आप के ससुर राजा उग्रसेन का महल है और वे सामने खडी जो दो लडकियां परस्पर बातें कर रही हैं वे आप की पत्नी राजीमति की चंद्रानना और मृगलोचना नामा दोनों सहेलियां हैं । उस वक्त नेमिकुमार को देख मृगलोचना चंद्रानना को कहने लगी–हे सखी ! स्त्रियों में तो एक

राजीमती ही प्रशंसनीय है कि जिस का हाथ यह ऐसा दुल्हा पकड़ेगा ! चंद्रानना मृगलोचना से बोली-यदि विज्ञान में निपुण विधाता भी ऐसी अद्भूत रूपराशिवाली मनोहर राजीमती को बना कर ऐसे उत्तम वर के साथ उसका मेल न मिलावे तो वह क्या प्रतिष्ठा प्राप्त करें ?

इधर बाजों का नाद सुन कर राजीमती भी माता के घर से निकल कर वहां पर आ पहुंची । सहेलियों के बीच में आकर राजीमती बोली-सखियों ! आडम्बर सहित आते हुए वरराजा को तुम अकेली ही देख रही हो, क्या मैं नहीं देख सकती ? यों कह कर बलपूर्वक उनके बीच में खड़ी हो रथारूढ नेमिकुमार को आते देख आश्चर्यपूर्वक विचारने लगी-क्या यह पाताल कुमार है ? या स्वयं कामदेव है ? अथवा इंद्र है ? या मेरे पुण्यों का समूह ही मूर्तिमान् हो कर आया है ? जिस विधाताने सौभाग्यादि गुणराशिवाले इस वर का निर्माण किया है मैं उसके हाथों पर वारफेर करती हूं ।

इतने ही में मृगलोचना ने भली प्रकार राजीमती का मनोगत भाव जान कर प्रीतिपूर्वक हास्य से चंद्रानना से कहा-हे सखी चंद्रानना ! यद्यपि यह वर सर्वगुण संपन्न है तथापि इस में एक दूषण तो है ही, किन्तु इस वर को चाहनेवाली राजीमती के सुनते हुए वह कहा नहीं जा सकता । फिर चंद्राननाने भी कहा-हे सखी मृगलोचना ! मुझे भी वह दूषण मालूम है पर इस वक्त तो मौन ही रहना चाहिये । यह सुन राजीमती लज्जा से मध्यस्थता दिखलाती हुई बोली-हे सखियो ! भुवन में अद्भूत भाग्यवती किसी भी कन्या का यह भर्तार हो परन्तु सर्व

गुणसुन्दर ऐसे इस वर में जो दूषण बतलाया जाता है यह सचमुच ही दूध में पूरे बतलाने के समान है । फिर दोनों सखियां विनोदपूर्वक बोलीं–हे राजीमती ! प्रथम तो वर गौर वर्णमाला होना चाहिये, दूसरे गुण तो परिचय होने पर मालूम होते हैं, परन्तु वह गौरपन तो इसमें काजल के समान है ।

यह सुनकर ईर्ष्या सहित राजीमती सखियों को कहने लगी–आज तक मुझे यह भ्रम था कि तुम दोनों चतुर हो, परन्तु आज वह भ्रम दूर हो गया । क्यों कि सर्व गुणों का कारणरूप जो श्यामपणा है उसे भूषण होने पर भी तुम दूषणतया कथन करती हो । अब तुम सावधान होकर सुनो, श्यामता और श्याम वस्तुओं का आश्रय करने में कैसे गुण रहे हुए हैं और केवल गौरपणे में कैसे दूषण होते हैं । पृथवी, चित्रावेल, अगर, कस्तूरी, मेघ, आंख की कीकी, केश, कसोटी, स्याही तथा रात्रि ये सब काली वस्तुयें महाफलवाली होती हैं । ये श्यामता में गुण बतलाये हैं । तथा कपूर में कोयला, चन्द्र में चिन्ह, आंख में कीकी, भोजन में काली मिरच, और चित्र में रेखा; ये वस्तुयें यद्यपि श्याम रंगवाली हैं तथापि सफेद वस्तुओं की शोभा बढ़ानेवाली हैं । यह श्यामता के आश्रय में गुण समझना चाहिये । अब सफेद वस्तुओं के दूषण देखो–नमक खारा होता है, बरफ दहनकारी होता है, अति सफेद शरीरवाला रोगी होता है तथा चूना भी परवश ही गुणवाला है । क्योंकि वह पान में मिलने पर ही रंग देता है।

- पशुओं की पुकार और भगवन्त की करूणा -

जिस वक्त इन सखियों में यह वार्तालाप हो रहा था उस वक्त पशुओं की करूण पुकार सुनकर श्रीनेमिनाथ प्रभु तिरस्कार युक्त बोले-हे रथवान् ! यह कैसा आर्त्तनाद सुनाई देता है ? रथवान् बोला-महाराज ! आपके विवाह में भोजन के लिए एकत्रित किये पशुओं का यह वाड़ा है । सारथी की बात सुनकर प्रभु विचारने लगे-ऐसे विवाह महोत्सव को धिक्कार है जिसमें इन पशुओं का प्राण बलि हो । इधर उसी वक्त राजीमती का दाहिना नेत्र भी फुर्कने लगा और उसने अपनी सखियों से कहा । सखियों ने भी कहा-तेरा अपमंगल दूर हो यों कहकर थू-थूकार करने लगीं ।

उस वक्त नेमिनाथ प्रभुने रथवान् से कहा-हे सारथी ! तुम यहां से ही रथ को वापिस फिरा लो । इस वक्त नेमिनाथ प्रभु को देखकर वाडे में रहा हुआ एक हरिण अपनी गरदन एक हरिणी की गरदन पर रखकर खड़ा था, उस पर कवि घटता करता है-कि मानो प्रभु को देख हरिण कहता है-हे प्रभो ! मेरे हृदय को हरण करनेवाली इस हरिणी को मत मारो । हे स्वामिन् ! हमें अपने मरण से भी अपनी प्रियतमा का विरह दुःख अति दुःसह है । प्रभु का मुख देख मानो हरिणी भी हरीण से कहती है-ये तो प्रसन्न मुखवाले तीन लोक के नाथ हैं, अकारण बन्धु हैं इस लिए हे वल्लभ ! इन्हें सर्व जीवों के रक्षण की विनती करो । तब मानो पत्नी से प्रेरित हरिण नेमिनाथ प्रभु को कहने लगा-हे प्रभो ! हम झरनो को पानी पीनेवाले, जंगल का घास

For Private and Personal Use Only

खानेवाले और जंगल में हीं रहनेवाले ऐसे हम निरपराधियों के जीवन का रक्षण करो । इस प्रकार समस्त पशुओं ने प्रार्थना की । तब प्रभु ने कहा–हे पशुरक्षको ! इन पशुओं को छोड़ दो, छोड़ दो । मैं विवाह नहीं करूंगा । प्रभु श्रीनेमिनाथ के वचन से पशुरक्षकों ने उन पशुओं को छोड़ दिया । सारथी ने भी रथ को वापिस फेर लिया । यहां पर भी फिर कवि कहता है–जो कुरंग–हरिण चंद्रमा के कलंक में, राम सीता के विरह में तथा नेमिनाथ प्रभु से राजीमती के त्याग में कारणभूत बना सो सचमुच कुरंग कुरंग हीं–रंग में भंग करनेवाला है ।

इधर समुद्रविजय और शिवादेवी आदि स्वजनों ने तुरन्त हीं वहां आकर रथ को अटकाया । माता शिवादेवी आंखों में आंसु भरकर बोलीं–हे वत्स ! हे जननीं, वत्सल पुत्र ! मैं प्रथम प्रार्थना करतीं हूं कि तू किसी तरह विवाह करके मुझे अपनीं बहू का मुख दिखला दे । नेमिकुमार ने कहा–माताजीं आप यह आग्रह छोड़ दो । मेरा मन अब मनुष्य सम्बन्धीं स्त्रियों में नहीं है, परन्तु मुक्तिरूप स्त्रीं की उत्कंठावाला है । जो स्त्रियां रागी पर भीं राग रहित होतीं हैं उन स्त्रियों को कौन चाहे ? परन्तु मुक्तिरूप स्त्रीं जो विरक्त पर राग रखतीं है उसकीं मैं चाहना करता हूं ।

उस वक्त राजीमतीं हां हां कर बोलीं 'हा दैव हां देव ! यह क्या हुआ ? '' यों कह कर मूर्छित हो गई । सहेलियों द्वारा शीतोपचार करने पर मुस्किल से सुध में आई और उच्च स्वर से रूदन करने लगीं–हे यादवकुल में सूर्य समान ! हे निरूपम ज्ञानवाले ! हे जगत के शरणरूप तथा हे करूणाकर स्वामिन् ! आप मुझे छोड़कर कहां चले ? फिर

अपने हृदय को कहने लगी-अरे धृष्ट, निष्ठुर, निर्लज्ज हृदये ! जब तेरा स्वामी दूसरी जगह रागवान् हुआ है तब तू अभी तक भी इस जीवन को किसलिए धारण करता है ? फिर निःश्वास डालकर अपने स्वामी को उपालंभ देकर बोली-हे धूर्त ! यदि तू सर्व सिद्धों की भोगी हुई वेश्या में रक्त हुआ था तो फिर इस तरह विवाह के बहाने तूने मेरी क्यों विडम्बना की ? सहेलियों ने उस से रोष में आकर कहा-हे सखी !

लोक प्रसिद्धी वत्तड़ी, सहिये एक सुनिज । सरलो बिरलो शामलो, चुकीय विहि करिज्ज।।

अर्थात्-लोक प्रसिद्ध कहावत है कि श्याम रंग का आदमी सरल स्वभाववाला नहीं होता और कोई हो भी जाय तो यह माना जाता है कि विधाता की गलती से हो गया ।

हे प्रिय सखी ! ऐसे प्रेमरहित पर क्यों प्रीति रखती है ? तेरे लिए कोई प्रेमपूर्ण वर ढूंढ निकालेंगे । यह बात सुनकर राजीमती अपने दोनों कानों पर हाथ रखकर बोली-सखियों ! मुझे न सुनने के वचन क्यों सुनाती हो? यदि सूर्य पश्चिम में उदय होने लगे, मेरूपर्वत चलायमान हो जाय; तथापि मैं नेमिकुमार को छोड़कर दूसरे को पति नहीं बनाऊंगी । फिर नेमिनाथ प्रभु को लक्षकर कहती है-हे जगत के स्वामी ! व्रत की इच्छावाले आप घर आये हुए याचकों को इच्छा से अधिक दोगे, परन्तु इच्छा रखनेवाली मुझ को तो आपने मेरे हाथ पर अपना हाथ तक भी न दिया । अब विरक्त होकर बोलती है-हे प्रभो ! यद्यपि आपने अपना हाथ इस विवाहोत्सव में मेरे हाथ पर हाथ नहीं रक्खा तथापि दीक्षा महोत्सव में यह हाथ मेरे शिर पर होगा ।

इधर श्रीनेमिकुमार को परिवार सहित समुद्रविजय राजा कहने लगे–ऋषभदेव आदि जिनेश्वर भी विवाह करके मोक्ष गये हैं तो क्या हे कुमार ! तुम्हारा ब्रह्मचारी का पद कुछ उन से भी ऊंचा होगा ? यह सुन कर श्रीनेमिनाथ ने कहा–पिताजी ! मेरे भोगावली कर्म क्षीण हो गये हैं, तथा जिस में एक स्त्री के संग्रह में अनन्त जीव समूह का संहार होता है, जो संसार को दुःखमय बनाता है उस विवाह में आप को इतना आग्रह क्यों होता है ? यहां कवि उत्प्रेक्षा करता है–मैं मानता हूं कि स्त्रियों से विरक्त श्रीनेमिनाथ प्रभु विवाह के बहाने से यहां आकर पूर्व के प्रेम से राजीमती को मोक्ष लेजाने का संकेत कर गये थे ।

– प्रभु की दीक्षा और केवलज्ञान –

दक्ष श्रीनेमिनाथ प्रभु तीन सौ वर्ष तक कुमारपन में गृहस्थावास में रहे । इतने में ही लोकान्तिक देवों ने आकर इस प्रकार की इष्ट वाणियों से कहा–हे कामदेव को जीतनेवाले, सर्व जीवों को अभयदान देनेवाले प्रभो ! आप जयवन्ते रहो और सर्व के कल्याण के लिए तीर्थ की प्रवृत्ति करो । प्रभु वार्षिक दान देकर दीक्षा ले तीनों भुवन को आनन्द देवेंगे यों कहकर लोगों ने समुद्रविजय राजा आदि को उत्साहित किया । फिर सब संतुष्ट हुए, गोत्रियों को धन बांटकर दिया । संवत्सरी दानविधि श्रीवीर प्रभु के समान ही जान लेना ।

इस वर्षाकाल का पहला महीना था, दूसरा पक्ष था अर्थात् श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की छट्ठ के दिन प्रथम पहर में उत्तरकुरा नामक पालकी में बैठे हुए जिस के सामने देव, मनुष्य और असुरों का समूह चल रहा है,

यावत् द्वारवती-द्वारिका नगरी के मध्यभाग में से निकल कर रैवत नामक उद्यान की ओर जाते हैं । वहां जाकर अशोक वृक्ष के नीचे पालकी ठहरवा कर उससे नीचे उतरते हैं, फिर अपने हाथ से वस्त्राभूषण उतारते हैं और अपने ही हाथ से पंचमुष्टि लोच कर, चौवीहार छट्ठ की तपस्या कर के चित्रा नक्षत्र में चंद्र योग आजाने पर इंद्र का दिया एक देवदूष्य वस्त्र ले कर एक हजार पुरुषों के साथ गृह का त्याग कर श्री नेमिकुमार अणगारता को प्राप्त हो गये अर्थात् दीक्षित हो गये ।

अर्हन् श्री नेमिनाथ प्रभु चौपन अहोरात्र तक निरन्तर शरीर को वोसरा कर रहे थे । पंचावनवें दिनरात्रि में वर्तते हुए वर्षाकाल के तीसरे मास में, पांचवें पक्ष में, अर्थात् आश्विन मास की अमावस्या के दिन, दिन के पिछले पहर में, गिरिनार पर्वत के शिखर पर, वेतस नामक वृक्ष के नीचे चौवीहार अट्ठम का तप किये हुए, चित्रा नक्षत्र में चंद्र योग आने पर शुक्ल ध्यान के प्रथम के दो भेदों का ध्यान करते हुए प्रभु को केवलज्ञान और केवलदर्शन पैदा हुआ । अब वे सर्व जीवों के भावों को जानते और देखते हुए विचरने लगे ।

इस तरह जब प्रभु को रैवताचल पर सहस्त्रा भवन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तब उद्यानपालकने श्रीकृष्ण देव के पास जाकर बधाई दी । वे सुन कर श्रीकृष्ण महाराज बड़े भारी आडम्बर से प्रभु को वन्दन करने आये । उस वक्त राजीमती भी वहां आई । प्रभु की धर्मदेशना सुनकर वरदत्त राजा ने दो हजार राजाओं के साथ व्रत ग्रहण किया-दीक्षा ली । श्रीकृष्ण महाराज द्वारा राजीमती के स्नेह का कारण पूछने पर प्रभु ने धनवती के भव से

लेकर उसके साथ का अपना नव भव का सम्बन्ध कह सुनाया, जो इस प्रकार हैः–

पहले भव मैं धनकुमार नामा राजपुत्र था, तब वह धनवती नामक मेरी पत्नी थीं । दूसरे भवमें हम दोनों पहले देवलोक में देव देवीतया पैदा हुए थे । तीसरे भवमें मैं चित्रगति नामक विद्याधर था तब वह रत्नवती नामा मेरी पत्नी थीं । फिर चौथे भवमें हम दोनों देवलोक में देव हुए थे । पांचवे भवमें मैं अपराजित नामक राजा था और यह प्रियतमा नामा मेरी रानीं थीं । छट्ठे भव में हम दोनों ग्यारवें देवलोक में देव हुए थे । सातवें भवमें मैं शंख नामक राजा था और यह यशोमतीं नामक मेरी रानीं थीं । आठवें भवमें हम दोनों अपराजित देवलोक में देवतया पैदा हुए थे और नववें भव में नेमिनाथ हूं और यह राजीमती है ।

तत्पश्चात् प्रभु वहां से अन्यत्र विहार कर गये । जब क्रम से फिर रैवताचल पर आकर समवसरे तब अनेक राजकन्याओं सहित राजीमती और प्रभु के भाई रथनेमिने प्रभु के पास दीक्षा ली । एक दिन राजीमती प्रभु को वन्दन करने जा रहीं थीं, परन्तु मार्ग में वर्षा होने से वह एक गिरिगुफा में दाखल हो गई । उसी गुफा में पहले से हीं रहे हुए रथनेमि को न जानकर उसने भींगे हुए वस्त्र अपने शरीर पर से उतार कर सुकाने के लिए वहां फैला दिये ।

देवांगनाओं के रूप को भीं फींका करनेवालीं साक्षात् कामदेव कीं रमणीं के समान राजीमती को वस्त्र रहित देखकर मानो भाई के वैर से कामदेव के बाणों से पींडित हुआ हुवा रथनेमि कुललज्जा छोड़ कर धैर्य पकड़ राजीमती को कहने लगा–हे सुन्दरीं ! सर्वांग भोगसंयोग के योग्य और सौभाग्य के निधानरूप इस तेरे कोमल शरीर

को तू तप करके क्यों सुकाती है ? इस लिए हे भद्रे ! तू इच्छापूर्वक यहां आ और हम दोनों अपना जन्म सफल करें । फिर अन्त में हम तपविधि का आचरण कर लेंगे ।

महासती राजीमती यह सुन कर और उसे देख अद्‌भूत धैर्य धारण कर बोली–हे महानुभाव ! तू नर्क के मार्ग का अभिलाष क्यों करता है ? सर्व सावद्य का त्याग कर के फिर से उसकी इच्छा करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती ? अगन्धन कुल में जन्मनेवाले तिर्यच सर्प भी जब वमन किये पदार्थ को नहीं इच्छते तब फिर क्या तू उनसे भी अधिक नीच है ?

इस प्रकार के राजीमती के वचनों को सुनकर बोध को प्राप्त हो रथनेमि मुनि भी श्री नेमिनाथ प्रभु के पास जाकर अपने अतिचारों की आलोचना कर घोर तपस्या कर के मोक्ष गये । राजीमती भी चारित्र आराधन कर अन्त में मोक्षशय्या पर आरूढ हो गई और बहुत समय से प्रार्थित श्रीनेमि प्रभु के शाश्वत संयोग को उसने प्राप्त कर लिया। राजीमती चारसौ वर्ष तक गृहवास में रहीं, एक वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय में रहीं और पांचसौ वर्ष तक केवली पर्याय पालकर मुक्ति गई ।

– प्रभु का परिवार –

अर्हन् श्रीनेमिनाथ प्रभु के अट्ठारह गण और अट्ठारह ही गणधर हुए । वरदत्त आदि अट्ठारह हजार (18000) साधुओं की उत्कृष्ट संपदा हुई । आर्य यक्षिणी प्रमुख चालीस हजार (40000) उत्कृष्ट

For Private and Personal Use Only

साध्वियों की संपदा हुई । नन्द प्रमुख एक लाख उणत्तर हजार (169000) श्रावकों की उत्कृष्ट श्रावक संपदा हुई । महासुव्रत आदि तीन लाख छत्तीस हजार (336000) उत्कृष्ट श्राविकाओं की श्राविका संपदा हुई । केवली न होने पर भी केवली समान चारसौ (400) चौदह पूर्वियों की, पंद्रहसौ (1500) अवधिज्ञानियों की, पंद्रहसौ (1500) वैक्रिय लब्धिधारी मुनियों की, एक हजार (1000) विपुल मतिवाले मुनियों की, आठ सौ (800) वादियों की और सोलहसौ (1600) अनुत्तर विमान में पैदा होनेवाले मुनियों की संपदा हुई । तथा पंद्रहसौ (1500) साधु और तीन हजार (3000) साध्वियाँ मोक्ष गई ।

अर्हन् श्रीनेमिनाथ प्रभु की दो प्रकार की अन्तकृत् भूमि हुई । एक युगान्तकृत् भूमि और दूसरी पर्यायान्तकृत भूमि । प्रभु के बाद आठ पट्टधरों तक मोक्षमार्ग चलता रहा यह युगान्तकृत् भूमि और प्रभु को केवलज्ञान हुए बाद दो वर्ष पीछे मोक्षमार्ग शुरू हुआ सो पर्यायान्तकृत् भूमि जानना चाहिये ।

– परमात्मा का निर्वाण कल्याणक –

उस काल और उस समय अर्हन् श्रीनेमिनाथ प्रभु तीन सौ वर्ष कुमारावस्था में रहे । चौपन दिन छद्मस्थ पर्याय पालकर, चौपन दिन कम सातसौ वर्ष केवलीपर्याय पालकर, परिपूर्ण सातसौ वर्ष चारित्र पर्याय पालकर एवं एक हजार वर्ष का सर्वायु पालकर वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म के क्षय हो जाने पर इसी

अवसर्पिणी में दुषमसुषमा नामक चौथा आरा बहुत बीत जाने पर, ग्रीष्मकाल के चौथे महीने में, आठवें पक्ष में अर्थात् आषाढ़ शुक्ला अष्टमी के दिन गिरनार पर्वत के शिखर पर पांचसौ छत्तीस साधुओं सहित, चौविहार एक मास का अनशन कर के चित्रा नक्षत्र में चंद्र योग प्राप्त होने पर मध्यरात्रि के समय पद्मासन से बैठे हुए मोक्ष सिधारे । यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए । अब श्रीनेमिनिर्वाण से कितने समय बाद पुस्तक लेखनादि हुआ सो बतलाते हैं ।

अर्हन् श्रीअरिष्टनेमि निर्वाण पाये यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए । उन्हें चोरासी हजार वर्ष बीतने पर पचासी हजारवें वर्ष के नवसौ वर्ष बीते बाद दशवें सैके का यह अस्सीवां वर्ष जाता है । अर्थात् श्री नेमिनाथ के निर्वाण बाद चौरासी हजार वर्ष पीछे वीर प्रभु का निर्वाण हुआ और तिरासी हजार सातसौ पचास वर्ष पर श्रीपार्श्वनाथ निर्वाण हुआ यह अपनी बुद्धि से जान लेना चाहिये । इस प्रकार श्रीनेमिचरित्र पूर्ण हुआ ।

तीर्थंकर भगवन्तों का अन्तरकाल

१. श्रीपार्श्वनाथस्वामी के निर्वाण के बाद २५० वर्षे श्रीमहावीर देव का निर्वाण हुवा; बाद ६८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

२. श्रीनेमिनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, बाद ९८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

For Private and Personal Use Only

३. श्रीपार्श्वनाथस्वामी के निर्वाण के बाद २५० वर्षे श्रीमहावीर देव का निर्वाण हुवा; बाद ६८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

४. श्रीमुनिसुव्रतस्वामी के और श्रीमहावीरस्वामी के ११ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है; पश्चात् ६८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

५. श्रीमल्लिनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के एक हजार क्रोड ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, पश्चात् ६८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

६. श्रीअरनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के एक हजार क्रोड ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, पश्चात् ६८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

७. श्री कुन्थुनाथ और श्रीमहावीरस्वामी के पल्योपम का चौथा भाग और ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, पश्चात् ६८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

८. श्री शान्तिनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के पौन पल्योपम ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, पश्चात् ६८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

९. श्री धर्मनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के ३ सागर ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, पश्चात् ६८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

१०. श्रीअनन्तनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के ७ सागर ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है, पश्चात् ६८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

११. श्री विमलनाथजी और श्री महावीरस्वामी

For Private and Personal Use Only

के १६ सागर ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है; बाद ९८० वर्षे सिद्धांत लिखे गये ।

१२. श्रीवासुपूज्यस्वामी और श्रीमहावीरस्वामी के ४६ सागर ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है; बाद ९८० वर्षे सिद्धांत लिखे गये ।

१३. श्रीश्रेयांसनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के १०० सागर ६५ लाख ८४ हजार वर्ष का अन्तर है; बाद ९८० वर्षे सिद्धांत लिखे गये ।

१४. श्रीशीतलनाथजी और महावीरस्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८।। मास कम १ क्रोड सागर का अनतर है; तत्पश्चात् ९८० वर्षे सिद्धांत लिखे गये ।

१५. श्रीसुविधिनाथजी और श्रीमहावीरस्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८।। मास कम १० क्रोड सागर का अन्तर है; तदनन्तर ९८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये।

१६. श्रीचन्द्रप्रभुजी और महावीरस्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८।। मास कम १०० क्रोड़ सागर का अन्तर है; तदनन्तर ९८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

१७. श्रीसुपार्श्वनाथजी और श्रीमहावीर स्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८।। मास कम एक हजार क्रोड सागर का अन्तर है; उसके बाद ९८० वर्षे सिद्धांत लिखे गये ।

१८. श्रीपद्मप्रभुजी और श्रीमहावीर स्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८।। मास कम १० हजार क्रोड सागर का अन्तर है; उसके बाद ९८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

१९. श्रीसुमतिनाथजी और महावीर स्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८।। मास कम एक लाख क्रोड़

For Private and Personal Use Only

सागर का अन्तर है; पश्चात् ६८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

२०. श्रीअभिनन्दन स्वामी और महावीर स्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८।। मास कम १० लाख क्रोड सागर का अन्तर है; पश्चात् ६८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

२१. श्रीसम्भवनाथजी और श्रीमहावीर स्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८।। मास कम २० लाख क्रोड सागर का अंतर हैं; तदनन्तर ६८० वर्षे सिद्धांत लिखे गये ।

२२. श्रीअजितनाथजी और श्रीमहावीर स्वामी के ४२ हजार ३ वर्ष ८।। मास कम ५० लाख क्रोड सागर का अन्तर है; पश्चात् ६८० वर्षे सिद्धान्त लिखे गये ।

२३. श्रीऋषभदेव स्वामी और महावीर प्रभु के ४२ हजार ३ वर्ष ८।। मास कम एक क्रोड़ क्रोड़ी सागर का अंतर है; तत्पश्चात् ६८० वर्षे सिद्धांत पुस्कारूढ हुवे ।

इस तरह चौबीस तीर्थंकरों का अन्तर काल समाप्त हुआ ।

श्री ऋषभदेव भगवान का जीवन चरित्र

उस काल और उस समय में अयोध्या नगरी में जन्मे हुए अर्हन् श्रीऋषभदेव प्रभु के चार कल्याणक उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में हुए हैं और पांचवां कल्याणक अभिजित नक्षत्र में हुआ है सो इस प्रकार है–उत्तराषाढ़ा नक्षत्र से स्वर्ग से च्यवकर प्रभु गर्भ में आये, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में जन्म हुआ, उत्तराषाढ़ा में दीक्षा ली तथा उत्तराषाढ़ा में ही केवलज्ञान पाये और अभिजित नक्षत्र में प्रभु का निर्वाण हुआ ।

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

– प्रभु का च्यवन और जन्म कल्याणक –

उस काल उस समय में अर्हन् कौशलिक श्रीऋषभदेव प्रभु ग्रीष्मकाल के चौथे मासे में, सातवें पक्ष में, आषाढ़ मास की कृष्ण चौथ के दिन तैतीस सागरोपम की स्थितिवाले सर्वार्थसिद्ध नामक महाविमान से अंतर रहित च्यवकर इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, इक्ष्वाकु भूमि में, नाभि नामक कुलकर की मरूदेवा नामा स्त्री की कुक्षि में मध्य रात्रि के समय दिव्य आहारादि का त्याग कर गर्भरूप से उत्पन्न हुए ।

अर्हनृ कौशलिक श्रीऋषभदेव प्रभु गर्भ में भी तीन ज्ञान सहित थे । उसके द्वारा, मैं यहां से चवुंगा यह जानते थे । मरूदेवी माताने स्वप्न देखे सो गयवसह, इत्यादि गाथा कहकर, श्रीवीरप्रभु के चरित्र समान ही जान लेना चाहिये । परन्तु यहां इतना विशेष है कि मरूदेवी माता ने प्रथम वृषभ को मुख में प्रवेश करते देखा और दूसरे जिनेश्वरों की माता प्रथम हाथी को देखा था । वीर प्रभु की माता ने प्रथम सिंह को देखा था । मरूदेवी ने स्वप्नों की हकीकत नाभिकुलकर से कही, क्यों कि उस समय स्वप्नपाठक नहीं थे । इस से नाभि कुलकरने ही स्वयं स्वप्नों का फल कहा ।

उस काल और उस समय अर्हन् कौशलिक श्रीऋषभदेव प्रभु का ग्रीष्मऋतु के प्रथम मास में, पहले पक्ष में अर्थात् चैत्र मास की कृष्ण अष्टमी के दिन नव महीने परिपूर्ण होने पर यावत् उत्तराषाढा नक्षत्र में चंद्रयोग

1 कोशला–अयोध्या, वहां जन्मने से कौशलिक । 2. गुजराती जेट वदि 4 ।

For Private and Personal Use Only

प्राप्त होने पर जन्म हुआ ।

इसके बाद का सर्व वृत्तान्त–देव देवियोंने वसुधारा की वृष्टि की वहां तक, उसमें बन्दीजनों को छोड़ देने की, मानोन्मान के वर्धन की और दाण (महेसूल) छोड़ देने आदि कुलमर्यादा की हकीकत वर्ज कर बाकी का सब कुछ वृत्तांत पूर्वोक्त प्रकार से श्रीमहावीर प्रभु के जन्मसमय का कहा है उसी तरह कहना चाहिये ।

अब देवलोक से च्यवकर अद्भूत रूपवान्, अनेक देव–देवियों से परिवृत, सकल गुणों द्वारा युगलिक मनुष्यों से अति उत्कृष्ट, अनुक्रम से वृद्धि प्राप्त करते हुए श्रीऋषभदेव प्रभु आहार की इच्छा होने पर देवताओं द्वारा अमृत रस से सिंचित की हुई रसवाली, अंगुली–अंगुष्ठ मुख में रख कर चूंसते थे । इसी तरह दूसरे तीर्थकरों के लिए भी बाल्यकाल जानना चाहिये । दूसरे तीर्थंकरों की बाल्यावस्था बीतने पर वे अग्नि पर पके हुए आहार का भोजन करते थे, परन्तु श्री ऋषभदेव प्रभुने तो दीक्षा ली तब तक देवों द्वारा लाये हुए उत्तर कुरूक्षेत्र के कल्पवृक्ष के फलों का ही भोजन किया था ।

इक्ष्वाकु वंश की स्थापना

अब प्रभु की उम्र एक वर्ष से कुछ कम ही थी तब ''प्रथम जिनेश्वर के वंश की स्थापना करना यह इंद्र का आचार है'' ऐसा विचार कर और ''खाली हाथ से प्रभु के पास कैसे जाऊँ '' यह सोचकर इंद्र एक बड़ा ईखका गन्ना लेकर नाभिकुलकर की गोद में बैठे हुए प्रभु के पास आकर खड़ा हुआ । उस वक्त ईख का गन्ना देख

हर्षित हो प्रभु ने हाथ पसारा । आप गन्ना खायेंगे ? यों कह कर प्रभु के हाथ में गन्ना देकर ''इक्षु के अभिलाष से प्रभु का वंश इक्ष्वाकू हो, और उनके पूर्वज भी इक्षु के अभिलाषवाले थे अतः उनका गोत्र काश्यप हो'' यों कहकर इंद्र ने प्रभु के वंश की स्थापना की ।

प्रभु का विवाह और राज्याभिषेक

किसी युगल को उसकी माता ने तालवृक्ष के नीचे रक्खा था, उस वक्त ताल का फल पड़ने से युगल में से पुरूष की मृत्यु हो गई । इस तरह यह पहली ही अकाल मृत्यु हुई । जीवित रही उस कन्या के मातापिता की मृत्यु हुए बाद वह अकेली ही जंगल में फिरने लगी । उस सुन्दर स्त्री को देख युगलिये उसे नाभिकुलकर के पास ले गये । तब नाभिकुलकरने भी 'यह सुनन्दा नामा ऋषभदेव की पत्नी होगी,' यों जन समक्ष कह कर उसे अपने पास रख लिया । फिर सुनन्दा और सुमंगला के साथ बढ़ते हुए प्रभु युवावस्था को प्राप्त हुए । इंद्रने भी प्रथम जिनेश्वर का विवाह कृत्य कराना अपना कर्तव्य समझ कर करोड़ों देव देवियों सहित वहां आकर प्रभु का वर संबन्धी कार्य स्वयं किया और दोनों कन्याओं का वधू सम्बन्धी कार्य इंद्रानियों और देवियों ने किया । फिर उन दोनों स्त्रीयों के साथ भोग भोगते हुए प्रभु को छह लाख पूर्व बीतने पर सुमंगलाने भरत और ब्राह्मीरूप युगल को जन्म दिया, तथा सुनन्दाने बाहुबलि और सुन्दरीरूप युगल को जन्म दिया । फिर क्रम से सुमंगलाने उनंचास पुत्रयुगलों को जन्म दिया ।

For Private and Personal Use Only

अर्हन् कौशलिक ऋषभदेव प्रभु काश्यप गोत्री के पांच नाम इस प्रकार कहलाते हैं । ऋषभ, प्रथम राजा, प्रथम भिक्षाचर, प्रथम जिन और प्रथम तीर्थंकर (प्रथम राजा इस प्रकार हुए)

कालप्रभाव के कारण अनुक्रम से अधिकाधिक कषायों का उदय होन से परस्पर विवाद करते हुए युग युगलियों के लिए उसवक्त इस तरह की दंडनीति कायम की हुई थी । विमलवाहन और चक्षुष्मत् कुलकर के समय अल्प अपराध के लिए हक्काररूप हीं दंडनीति थीं । तथा यशस्वीं और अभिचंद्र के समय में अल्प अपराध के लिए हक्काररूप और बड़े अपराध के लिए मक्काररूप दंडनीति थी, फिर प्रसेनजित, मरूदेवा और नाभिकुलकर के समय में जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट अपराध के लिए अनुक्रम से हक्कार, मक्कार, धिक्काररूप दंडनीति कायम हुई । इस प्रकार की नीति का भी उल्लंघन होने पर भगवान को ज्ञानादि गुणों से अधिक जान कर युगलियों द्वारा उस बात का निवेदन करने पर प्रभुने कहा–''नीति को उल्लंघन करनेवालों को राजा ही सब तरह का दंड कर सकता है और वह राजा राज्याभिषेक युक्त होता है, और मंत्री सामन्तों सहित होता है ।'' प्रभु की यह बात सुनकर युगलिये बोले–''हमारा भी ऐसा हीं राजा हो'' प्रभुने कहा–''ऐसे राजा के लिए नाभिकुलकर के पास जाकर प्रार्थना करो'' युगलियों ने नाभिकुलकर के पास जाकर प्रार्थना की ।

---

1. हक्कार–हा ! तुमने अनुचित किया । 2. मक्कार– आयंदा ऐसा मत करना. 3. धिक्कार–धिक्कार है तुमको जो ऐसा अनुचित काम किया ।

नाभिकुलकरने कहा–''तुम्हारा राजा ऋषभ हो'' फिर वे युगलिये हर्षित हो अभिषेक के लिए पानी लेने तालाब पर गये । उस वक्त सिंहासन कंपित होने से इंद्र ने अपना आचार जानकर वहां आकर मुकुट कुंडल आभरणादि की शोभा करनेपूर्वक प्रभु का राज्याभिषेक किया । उस वक्त कमल के पत्तों में पानी लेकर आए हुवे युगलिये प्रभु को अलंकृत देख आश्चर्य में पड़ गये । थोड़ी देर विचार कर के उन्होंने वह पानी प्रभु के चरणों में डाल दिया । यह देख तुष्टमान हो इंद्र विचारने लगा कि–'अहो ! ये लोग कैसे विनयवान् हैं !' यह विचार कर इंद्र ने वैश्रमण को आज्ञा दी ''यहां पर बारह योजन विस्तारवाली और नवयोजन चौड़ी विनीता नाम की नगरी वसाओ ।'' इस तरह आज्ञा सुन कर वैश्रमणने रत्न और सुवर्णमय घरों की पंक्तिवाली और चारों और किले से सुशोभित नगरी बनाई । फिर प्रभुने अपने राज्य में हाथी, घोडे एवं गाय आदि का संग्रह करने पूर्वक उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रियरूप चार कुलों की स्थापना की । उसमें उग्रदंड करने के लिये उग्र कुलवाले आरक्षक के स्थान पर समझना चाहिये, भोग के योग्य होने से भोगकुलवाले वृद्ध–गुरूजन समझना चाहिये, समान वयवाले होने से राजन्य कुलवाले मित्रस्थानीय जानना चाहिये और शेष प्रधानादि क्षत्रियकुलवाले समझना चाहिये ।

गृहस्थ कर्म की शिक्षा

अब काल की उत्तरोत्तर हानि होने से ऋषभकुलकर के समय में कल्पवृक्ष के फल न मिल सकने के कारण

For Private and Personal Use Only

जो इक्ष्वाकु वंश के थे वे इक्षु–गन्ने खाते और दूसरे प्रायः अन्य वृक्षों के पत्र, पुष्प और फलादि खाते । इस प्रकार अग्नि के अभाव से कच्चे हीं चावल वगैरह धान्य खाते थे । परन्तु काल के प्रभाव से वह न पचने के कारण थोड़ा थोड़ा खाने लगे । फिर वह भीं न पचने से प्रभु के कहे मुजब चावल आदि को हाथ से मसल कर उनका छिलका उतार कर खाने लगे फिर वह भी न पचने से प्रभु के उपदेश से पत्तों के दौने में पानीं से भिगो कर चावलादि खाने लगे । इस तरह भीं न पचने से कितने एक समय तक पानीं में रखकर फिर हाथ में दबाया रखकर इत्यादि अनेक प्रकार से वे चावलादि अन्न खाने लगे । इस प्रकार गुजारा करते हुए एक दिन वृक्षों के परस्पर के संघर्षण से नवीनता उत्पन्न हुई, पूर्ण बलतीं ज्वालावाले और तृणसमूह को ग्रास करते हुए अग्नि को देख ''यह कोई नवीन रत्न है'' ऐसी बुद्धि से हाथ पसार कर के युगलिये उसे लेने लगे । हाथ जलजाने पर भयभीत हो प्रभु के पास जाकर फर्याद की । तब प्रभु ने अग्नि की उत्पत्ति जान कर कहा–''हे युगलिको ! यह अग्नि उत्पन्न हुई है । अब तुम चावलादि अन्न उसमें डालकर खाओ जिससे तुम्हे सुख से पचेगा '' प्रभु ने यह उपाय बतलाया तथापि पकाने का अभ्यास न होने से और उपाय अच्छीं तरह न जानने के कारण वे युगलिये अग्नि में अन्न डालकर फिर पहले जैसे कल्पवृक्ष से फल मांगा करते थे त्यों अग्नि से वापिस मागते हैं, परन्तु अग्निद्वारा उसकी राख हुई देख ''अरे ! यह तो राक्षस के समान अतृप्त हो स्वयं हीं सब कुछ भक्षण कर लेता है, हमें कुछ भीं वापस नहीं देता अतः इसका अपराध प्रभु से कह कर इसे दंड दिलायेंगे'' इस विचार

से वे प्रभु के पास जाते थे, इतने हीं में प्रभु को मार्ग में ही हाथी पर बैठे सन्मुख आते देख उन्होंने प्रभु से सब बात कहीं । प्रभु ने कहा किसी बरतन आदि में रख कर तुम्हें धान्यादि उस अग्नि पर रखना चाहिये । यों कह कर प्रभु ने उन्हीं के पास मिट्टी का पिंड मंगवा कर उसे हाथी के कुंभस्थल पर थपवा कर महावत से उसका बरतन बनवा कर प्रभु ने पहले पहल कुंभकार की कला प्रगट की और कहा-'इस प्रकार के बरतन बना कर उसे अग्नि में पका कर उसमें धान्य पकाओ'' प्रभु की बतलाई हुई कला को ठीकतया ध्यान में रख कर वे युगलिक उसी तरह करने लगे । इस तरह पहले कुंभार की कला प्रगटी । फिर लुहार की, चित्रकार की, जुलाहे की और नापित की कलारूप चार कलायें प्रगट कीं । इन पांच मूल कलाओं के प्रत्येक के बीस बीस भेद होने से एकसौ प्रकार का शिष्प होता है ।

पुरूष की बहत्तर कलायें

दक्ष-सत्य प्रतिज्ञावाले, सुन्दर रूपवाले, सर्व गुणवाले, सरल परिणामवाले और विनयवान् अर्हन कौशलिक श्री ऋषभदेव प्रभु बीस लाख पूर्व तक कुमार अवस्था में रहे । फिर त्रेसठ लाख पूर्ण तक राज्यावस्था में रहते हुए लेखनादि तथा जिसमें गणित मुख्य है और अन्त में पक्षियों के शब्द जानने की कलावाली पुरूष की उन्होंने बहत्तर कलायें बतलाई । वे लेखनादि बहत्तर कलायें निम्न प्रकार हैं । लेखन 1, गणित 2, गीत 3, नृत्य 4, वाद्य 5, पठन 6, शिक्षा 7, ज्योतिष 8, छंद 9, अलंकार 10, व्याकरण 11, निरूक्ति 12, काव्य 13,

For Private and Personal Use Only

कात्यायन १४, निघंटु, १५, गजारोहण १६, तुरगारोहण १७, उन दोनों की शिक्षा १८, शास्त्राभ्यास १९, रस २०, मंत्र २१, यंत्र २२, विष २३, खन्य २४, गंधवाद २५, संस्कृत २६, प्राकृत २७, पैशाचिकी २८, अपभ्रंश २९, स्मृति ३०, पुराण ३१, उसका विधि ३२, सिद्धान्त ३३, तर्क ३४, वैदक ३५, वेद ३६, आगम ३७, संहिता ३८, इतिहास ३९, सामुद्रिक ४०, विज्ञान ४१, आचार्यक विद्या ४२, रसायन ४३, कपट ४४, विद्यानुवाद के दर्शन ४५, संस्कार ४६, धूर्त्तसंबलक ४७, मणिकर्म ४८, तरूचिकित्सा ४९, खेचरीकला ५०, अमरीकला ५१, इंद्रजाल ५२, पातालसिद्धि ५३, यंत्रक ५४, रसवती ५५, सर्वकरणी ५६, प्रासादलक्षण ५७, पण ५८, चित्रोपल ५९, लेप ६०, चर्मकर्म ६१, पत्रछेद ६२, नखछेद ६३, पत्रपरीक्षा ६४, वशीकरण ६५, काष्ठघटन ६६, देश भाषा ६७, गारूड़ ६८, योगांग ६९, धातुकर्म ७०, केवलिविधि ७१, और शकुनरूत ७२, ये पुरूष की बहत्तर कलायें समझनी चाहिये ।

इसमें लेखन–लिखित हंस लिपि आदि अठारह प्रकार की लिपि समझनी चाहिये । उनका विधान प्रभुने दाहिने हाथ से ब्राह्मी को सिखलाया था । तथा एक, दश, सौ, हजार, अयुत–दश हजार, लाख, प्रयुत, (दश लाख) कोटि, अर्बुद,–(दश कोटि) अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, शंकू, जलधि, अन्त्य, मध्य और पशर्ध । इस प्रकार अनुक्रम से दश दश गुणी संख्यावाला गणित बांये हाथ से प्रभु ने सुन्दरी को सिखलाया । भरत को काष्ठ कर्मादि कर्म और बाहुबलि को पुरुषादि के लक्षण सिखलाये ।

स्त्री की ६४ कला

स्त्रियों की चौसठ कला निम्न प्रकार हैं:- नृत्य १, औचित्य २, चित्र ३, वादित्र ४, मंत्र ५, तंत्र ६, धनवृष्टि ७, फलाकृष्टि ८, संस्कृतवाणी ९, क्रियाफल १०, ज्ञान ११, विज्ञान १२, दंभ १३, अंबुस्तंभ १४, गीतमान १५, तालमान १६, आकारगोपन १७, आरामरोपण १८, काव्यशक्ति १९, वक्रोक्ति २०, नरलक्षण २१, गजपरीक्षा २२, अश्वपरीक्षा २३, वास्तुशुद्धि २४, लघुबुद्धि २५, शकुनविचार २६, धर्माचार २७, अंजन योग २८, चूर्णयोग २९, गृहिधर्म ३० सुप्रसादन कर्म ३१, कनकसिद्धि ३२, वर्णिकावृद्धि ३३, वाक्पाटव ३४, करलाघव ३५, ललितचरण ३६, तैलसूरभिता करण ३७, भृत्योपचार ३८, गेहाचार ३९, व्याकरण ४०, परनिराकरण ४१, वीणावादन ४२, वितंडावाद ४३, अंकस्थिति ४४, जनाचार ४५, कुंभक्रम ४६, सारिश्रम ४७, रत्नमणिभेद ४८, लिपिपरिच्छेद ४९, वैद्यक्रिया ५०, कामाविष्करण ५१, रंधन ५२, रसोई ५३, चिकुरबंध ५४, मुखमंडन ५५, कथाकथन ५६, कुसुमग्रंथन ५७, सर्वभाषाविशेष ५८, भोज्य ५९, यथास्थान आभरण धारण ६०, अंत्याक्षरिका ६१, प्रश्नप्रहेलिका ६२, शालिखंडन ६३ और वाणिज्य ६४ । इत्यादि ये स्त्रियों की कलायें हैं ।

कर्म से खेति, वाणिज्यादि और कुंभार आदि के प्रथम कथन किये कर्म सौ शिल्प समझना चाहिये । इन शिल्पों का प्रभुने उपदेश किया । इसका तात्पर्य यह हैं कि जो बातें आचार्य अर्थात् गुरूद्वारा सिखी जाती है उनका नाम शिल्प है और जो बातें काम करते करते आ जाती है उनका नाम कर्म है । पुरूष के बहत्तर और

स्त्रियों की चौसठ कला तथा सौ प्रकार का शिल्प, इन तीन वस्तुओं का प्रजा के हितार्थ प्रभुने उपदेश किया । उपदेश देकर सौ पुत्रों को सौ देश के राज्यों पर स्थापित किया । उसमें विनीता का मुख्य राज्य भरत को दिया। तथा बाहुबली को बहली देश में तक्षशिला का राज्य दिया । शेष अट्ठानवें पुत्रों के जुदे जुदे देश बांट दिये । ऋषभदेव प्रभु के सौ पुत्रों के नाम निम्न प्रकार हैं :-

भरत १, बाहुबलि २, शंख ३, विश्वकर्मा ४, विमल ५, सुलक्षण ६, अमल ७, चित्रांग ८, ख्यातकीर्ति ६, वरदत्त १०, सागर ११, यशोधर १२, अमर १३, रथवर १४, कामदेव १५, ध्रुव १६, वत्स १७, नन्द १८, सूर १६, सुनन्द २०, कुरू २१, अंग २२, बंग २३, कौशल २४, वीर २५, कलिंग २६, मागध २७, विदेह २८, संगम २६, दशार्ण ३०, गंभीर ३१, वसुवर्मा ३२, सुवर्मा ३३, राष्ट्र ३४, सौराष्ट्र ३५, बुद्धिकर ३६, विविधिकर ३७, सुयश ३८, यशास्कीर्ति३६, यशस्कर ४०, कीर्तिंकर ४१, सूरण ४२, ब्रह्मसेन ४३, विक्रान्त ४४, नरोत्तम ४५, पुरूषोत्तम ४६, चंद्रसेन ४७, महासेन ४८, नभःसेन ४६, भानु ५०, सुकान्त ५१, पुष्पयुत ५२, श्रीधर ५३, दुर्द्धर्ष ५४,सुसुमार ५५, दुर्जय ५६, अजेयमान ५७, सुधर्मा ५८, धर्मसेन ५६, आनन्दन ६०, आनन्द ६१, नन्द ६२, अपराजित ६३, विश्वसेन ६४, हरिषेण ६५, जय ६६, विजय ६७, विजयन्त ६८, प्रभाकरं ६६, अरिदमन ७०, मान ७१, महाबाहु ७२, मेघ ७३, सुघोष ७४, विश्व ७५, वराह ७६, सुसेन ७७, सेनापति ७८, कपिल ७६, शैलविचारी ८०, अ रिजय ८१, कुंजरबल ८२, जयदेव ८३, नागदत्त ८४

काश्यप ८५, बल ८६, वीर ८७, शुभमति ८८, सुमति ८९, पद्मनाभ ९०, सिंह ९१, सुजाति ९२, संजय ९३, सुनाभ ९४, नरदेव ९५, चित्तहर ९६, सुस्वर ९७, दृढरथ ९८, दीर्घबाहु ९९ और प्रभंजन १०० ।

अब राज्य या देशों के नाम निम्न प्रकार जानना चाहिये ।

अंग, बंग, कुलिंग गौड़, चौड़, कर्नाट, लाट, सौराष्ट्र, काश्मीर, सौभीर, आभीर, चींन, महाचीन, गुजरात, बंगाल, श्रीमाल, नैपाल, जहाज़, कौशल, मालव, सिंहल, मरूस्थल इत्यादि ।

प्रभु का दीक्षा कल्याणक

अब जीत कल्पवाले लोकान्तिक देवों के इष्टवाणी द्वारा प्रभु को प्रार्थना करने पर, दीक्षा समय जान कर शेष धन गोत्रीयों को बांट दिया । वहां तक सब कुछ पूर्ववत् समझना चाहिये । जो ग्रीष्म काल का पहला मास था, पहला पक्ष था, चैत्र के कृष्णपक्ष में चैत्र वदि अष्टमी के दिन, दिन के पिछले पहर सुदर्शना नामा शिबिका में बैठकर जिनके आगे देव, मनुष्यों तथा असुरों का समूह चल रहा है ऐसे प्रभु विनीता नगरी के मध्य भाग से निकल कर सिद्धार्थवान नामक उद्यान में जहां अशोक नाम वृक्ष है वहां आये । शिबिका से उतर अशोक वृक्ष के नींचे स्वयं चार मुष्टि लोच करते हैं । चार मुष्टि लोच करने के बाद एक मुष्टि केश जब बाकी रहे तब वह भगवान् के सुवर्ण वर्णे शरीर पर इधर उधर चिकुराते हुए ऐसे सुन्दर मालूम होने लगे कि जैसे सोने के कलश पर नील कमलों की माला हो । उसकी सुंदरता को देख कर इंद्र महाराज ने प्रभु से प्रार्थना की कि इतने केश

For Private and Personal Use Only

ऐसे ही रहने दीजीये । भगवान ने वैसा ही किया ।

फिर चौविहार छठ का तप कर के उत्तराषाढा नक्षत्र में चंद्रयोग प्राप्त होने पर उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय कुल के कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार पुरूष ''जिन्होंने यह निश्चय किया हुआ था कि जैसा प्रभु करेंगे वैसा हीं हम करेंगे'' के साथ प्रभुने इंद्र का दिया हुआ एक देवदूष्य वस्त्र लेकर दीक्षा ग्रहण की ।

अर्हन् कौशलिक श्री ऋषभदेव प्रभु एक हजार वर्ष तक नित्य शरीर को वोसरा कर–उसका ममत्व छोड़कर विचरे थे । दीक्षा लेकर प्रभु घोर अभिग्रह धारण कर ग्रामोग्राम विचरने लगे । उस समय लोगों के पास अत्यन्त समृद्धि होने के कारण भिक्षा क्या होती है ? यह कोई भी नहीं जानता था । इससे जिन्होंने प्रभु के साथ दीक्षा लीं थीं वे क्षुधापीड़ित होकर प्रभु से उपाय पूछने लगे । परन्तु मौन धारण किया होने से प्रभु ने उन्हें कुछ भी उत्तर न दिया । इसलिए उन्होंने फिर कच्छ महाकच्छ से प्रार्थना की । वे बोले–आहार का विधि तो हमें भी मालूम नहीं है और आहार कि बिना कैसे रहा जाय ? हमने पहले प्रभु से इस विषय में कुछ पूछा भी नहीं । इसलिए विचार करने पर वनवास हीं श्रेष्ठ है । इस प्रकार विचार कर वे प्रभु का हीं ध्यान धरते हुए गंगा के किनारे पडे हुए पत्ते वगैरह खानेवाले और साफ न किये हुए केश के गुच्छेवाले जटाधारी तापस बन गये ।

इधर कच्छ और कहाकच्छ के नमि विनमि नाम के दो पुत्र थे जो प्रभु के दीक्षासमय कहीं बाहर गये

हुए थे और जिन्हें प्रभु ने अपने पुत्र समझ कर रक्खा था, वे जब देशान्तर से आये तब भरत उन्हें राज्य का हिस्सा देने लगा । परन्तु वे उसकी अवगणना कर पिता के वचनानुसार प्रभु के पास आये और प्रतिमा धारण कर रहे हुए प्रभु के आगे कमलपत्रों में पानी लाकर चारों तरफ भूमि को सिंचित कर तथा पुष्पों का ढेर लगा कर पंचांग नमस्कार पूर्वक ''प्रभो ! हमें राज्य दो'' इस प्रकार सदैव प्रार्थना करने लगे । एक दिन प्रभु को वन्दन करने आये हुए धरणेंद्र ने उनका ऐसा आचरण और प्रभु के प्रति अतिभक्ति देख संतुष्ठ होकर कहा ''अरे ! प्रभु तो निःसंग हैं, उनके पास मत मांगो, प्रभु की भक्ति से तुम्हें मैं ही दूंगा'' यों कह कर उन्हें अड़तालीस हजार विद्यायें दीं । उनमें गौरी, गांधारी, रोहिणी और प्रज्ञप्तिरूप चार महाविद्यायें पाठसिद्ध दीं । विद्यायें देकर कहा-इन विद्याओं द्वारा विद्याधर की ऋद्धि को प्राप्त कर तुम अपने सगे संबन्धियों को लेकर वैताढय पर्वत पर चले जाओ, वहां दक्षिण श्रेणि में गौरेय गांधार, प्रमुख आठ निकायों को तथा रथनुपुरचक्रवाल आदि पचास नगरों को और उत्तर श्रेणि में पंडक, वंशात आदि आठ निकायों को तथा गगनवल्लभादि नगरों को वसा कर रहो । फिर कृतार्थ होकर वे दोनों भाई अपने पिताओं और भरत को अपना सर्व वृत्तान्त सुना कर दक्षिण श्रेणि में नमि और उत्तर में विनमि चले गये ।

श्रेयांसकुमार का दान

अब अन्न-जल देने में अकुशल समृद्धिवाले लोग प्रभु को वस्त्र, आभरण तथा कन्या आदि दान देने लगे,

For Private and Personal Use Only

परन्तु योग्य भिक्षा न मिलने पर भी अदीन मनवाले प्रभु विचरते हुए कुरुदेश के हस्तिनापुर नगर में पधारे । वहां पर बाहुबलि के पुत्र सोमप्रभ का पुत्र श्रेयांस नामक युवराज था । उस श्रेयांस ने रात्रि में ऐसा स्वप्न देखा कि-''मैंने श्यामवर्ण के मेरू को अमृत के कलशों से सिंचित किया जिससे वह अत्यन्त शोभने लगा ।'' वहां के सुबुद्धि नामक नगरसेठ ने भी ऐसा स्वप्न देखा ''सूर्यमंडल से खिसक पड़ी हुई हजार किरणों को श्रेयांसने फिर से वहां स्थापित कर दिया है इससे वह सूर्य शोभने लगा है ।'' वहां के राजा सोमप्रभने भी उस रात को ऐसा स्वप्न देखा कि ''एक महापुरूष शत्रु सैन्य के साथ लड़ रहा है वह श्रेयांस की सहायता से विजयी हुआ ।'' उन तीनों से सुबह राजसभा में एकत्रित होकर परस्पर अपने-अपने स्वप्न कहे । उन पर से आज श्रेयांस को कोई बड़ा लाभ होना चाहिये, राजाने यह निर्णय कर सभा विसर्जन की । श्रेयांसकुमार अपने घर जाकर बारी में बैठा हीं था कि इतने में ही ''प्रभु कुछ भी नहीं लेते'' लोगों को इस प्रकार कहते सुना । उसने उधर देखा तो प्रभु पर दृष्टि पड़ी । प्रभु को देखते हीं उसके मन में तुरन्त यह विचार उत्पन्न हुआ कि ''मैने पहिले ऐसा विष कहीं पर देखा है इस तरह उहापोह करते हुए श्रेयांस को जाति स्मरण ज्ञान पैदा हुआ उसने स्वयं जान लिया कि ''मैं तो पूर्वभव में प्रभु का सारथीं (रथवान्) था और प्रभु के साथ मैंने दीक्षा लीं थीं । उस वक्त श्री वज्रसेन प्रभु ने कहा था कि-यह वज्रनाभ भरतक्षेत्र में पहला तीर्थंकर होगा' वहीं ये प्रभु हैं । इधर उसीं समय कोई एक मनुष्य श्रेयांस के वहां इक्षुरस के घडे भर कर भेंट देने आया था।

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उनमें से एक घड़ा उठा कर श्रेयांस प्रभु के समक्ष हो कर बोला-''प्रभो ! यह योग्य भिक्षा ग्रहण करो'' उस वक्त प्रभु ने भी हाथ पसार दिये । श्रेयांस ने घड़े का सारा रस बोहरा दिया परन्तु एक भी बूंद नीचे नहीं गिरी । इसकी शिखा ऊपर को ही बढ़ती गई । कहा भी है कि ''जिसके हाथों में हजारों घड़े समा जायें या समुद्र समा जाय ऐसी लब्धि जिसे प्राप्त हो वही करपात्र होता है । एक वर्ष तक प्रभु ने भिक्षा ग्रहण नहीं की उस पर कवि घटना करता है-कि प्रभु ने अपने दाहिने हाथ से कहा-अरे ! तू भिक्षा क्यों नहीं लेता ? तब वह कहता है कि-हे प्रभो ! मैं देनेवाले के हाथ नीचे किस तरह रक्खूं ? क्यों कि पूजा, भोजन, दान शान्तिकर्म, कला, पाणिग्रहण, कुंभ स्थापना, शुद्धता, प्रेक्षणादि कामों में मैं वरता जाता हूं । यों कह कर जब दाहिना हाथ चुप रहा तब प्रभुने बांये हाथ को कहा-भाई ! तूं ही भिक्षा ले । जवाब में बांया हाथ बोला-महाराज ! मैं तो रणसंग्राम में सन्मुख होनेवाला हूं, अंक गिनने में और बांई करवट से सोना हो तब सहाय करनेवाला हूं । यह दाहिना हाथ तो जुए आदि व्यसनवाला है । फिर दाहिना बोला-'मैं पवित्र हूं, तूं पवित्र नहीं है । फिर प्रभु ने दोनों को समझाया कि-तुम दोनों ने मिलकर ही राज्यलक्ष्मी उपार्जन की है, तथा अर्थीजनों के समूह को दान देकर कृतार्थ किया है अतः तुम निरन्तर संतुष्ट हो तथा दान देनेवालों पर दया लाकर अब दान ग्रहण करो । इस प्रकार प्रभुने एक वर्ष तक दोनों हाथों को समझा कर श्रेयांसकुमार से ताजा इक्षु रस ग्रहण किया । ऐसे श्री ऋषभप्रभु तुम्हारा रक्षण करो ।

For Private and Personal Use Only

श्रेयांसकुमार के दान के समय नेत्र से आनन्द के आंसुओं की धारा, वाणीरूप दूध की धारा और इक्षुरस की धारा स्पर्धा से बढ़ती थी, उसी विशुद्ध भावनारूप जल से सिंचित धर्मरूप वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होने लगा । उस रस से प्रभु ने वर्षी तप का पारणा किया । उस वक्त वसुधारा (धन) की वृष्टि 1, चेलोत्क्षेप (वस्त्र की वृष्टि) 2, आकाश में देवदुंदुभि 3, गंधोदक पुष्पवृष्टि, सुंगधमय जल और पुष्पों की वर्षा 4 और अहो दान अहो दान इस प्रकार की आकाश में घोषणा हुई 5। इस तरह पंच दिव्य प्रगट हुए । तब सब लोग वहां एकत्रित हुए । श्रेयांसकुमार ने कहा-हे सज्जनों ! सद्गति की इच्छा से इस प्रकार साधुओं को शुद्ध आहार की भिक्षा दी जाती है । इस तरह इस अवसर्पिणी में प्रथम श्रेयांसकुमार ने दान की प्रवृत्ति की । लोगों ने श्रेयांस से पूछा कि-तुमने कैसे जाना ऐसा दान देना चाहिये ? श्रेयांसने प्रभु के साथ अपना आठ भवों का सम्बन्ध कह सुनाया-जब प्रभु दूसरे देवलोक में ललितांग नामक देव थे तब मैं पूर्वभव की इनकी स्वयंप्रभा नामादेवी हुई थी, फिर जब ये पूर्वविदेह में पुष्कलावती विजय में लोहार्गल नामक नगर में वज्रजंध नामक राजा थे तब मैं श्रीमती नामा इनकी रानी थी । वहां से उत्तरकुरु में भगवान् युगलिक थे तब मैं इनकी युगलनी थी । वहां से पहले देवलोक में हम दोनों देव हुए । वहां से प्रभु पश्चिम महाविदेह में वैद्यपुत्र थे तब मैं केशव नामक जीर्ण शेठ का पुत्र इनका मित्र था । वहां से हम दोनों बारहवें देवलोक में देव हुए । वहां से पुंडरीकिणी नगरी में प्रभु वज्रनाम नामा चक्रवर्ती थे उस वक्त मैं इनका सारथी था और वहां से हम दोनों 26 वें देवलोक में देव

हुए तथा यहां पर मैं प्रभु का प्रपौत्र हूं । यह वृत्तान्त सुन कर सब लोग कहने लगे-''ऋषभदेव समान पात्र, इक्षुरस के समान निरवद्य दान और श्रेयांस के समान भाव, पूर्वकृत पूर्ण पुण्य से प्राप्त होता है'' इत्यादि स्तुति करते अपने अपने घर चले गये ।

प्रभु का कैवल्य कल्याणक

इस प्रकार दीक्षा के दिन से एक हजार वर्ष तक प्रभु का छद्मस्थ काल जानना चाहिये । उसमें सब मिलाकर प्रमाद काल सिर्फ एक रातदिन का था । इस तरह आत्मभावना भाते हुए एक हजार वर्ष पूर्ण होने पर जो शरद् ऋतु का चौथा महीना था, सातवां पक्ष-फाल्गुन मास की कृष्ण एकादशी के दिन सुबह के वक्त पुरिमताल नामक विनीता नगरी के शाखानगर से बाहिर शकटमुख नामक उद्यान में बड़ के वृक्ष के नीचे चौविहार अट्ठम तप किये हुए उत्तराषाढा नक्षत्र में चंद्र योग प्राप्त होने पर ध्यानान्तर में वर्तते हुए प्रभु को अनन्त केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ । यावत् सर्व प्राणियो के भाव को जानते और देखते हुए विचरने लगे ।

इस तरह एक हजार वर्ष बीतने पर विनीता नगरी के पुरिमताल नामक शाखानगर में प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ उसी समय उधर भरत राजा को चक्ररत्न प्राप्त हुआ । उस वक्त विषयतृष्णा की विषमता के कारण 'प्रथम पिता की पूजा करूं या चक्र की ?'' भरत इस तरह के विचार में पड़ गये, परन्तु विचार से निश्चय किया कि इस लोक और परलोक में सुख देनेवाले पिता की पूजा करने से सिर्फ इस लोक में ही सुख देनेवाले

For Private and Personal Use Only

चक्र की पूजा तो हो ही गई, यूं सोच कर प्रतिदिन प्रभु को देखने की इच्छावाली मरूदेवी माता को हाथी की अंबाडी पर आगे बैठा कर आगे चल कर अपनी सर्व ऋद्धि सहित भरत राजा प्रभु को वन्दन करने चला। समवसरण के पास आकर भरत ने कहा कि–'माता ! आप अपने पुत्र की ऋद्धि तो देखो' हर्ष से रोमांचित अंगवाली और आनन्द के अश्रुजल से निर्मल नेत्रवाली हुई मरूदेवी माता प्रभु की छत्र–चामरादि प्रातिहार्य की लक्ष्मी देख कर विचारने लगी कि–''अहो ! मोह से विह्वल हुए सर्व प्राणियों को धिक्कार है ! सब स्वार्थ के लिए ही स्नेह करते हैं, ऋषभ के दुःख से रूदन करते हुए मेरे नेत्र भी तेजहीन हो गये, परन्तु ऋषभ तो देव–देवेंद्रों से सेवित होने पर भी और ऐसी दिव्य समृद्धि प्राप्त करने पर भी मुझे कभी अपनी कुशलता का संदेश भी नहीं भेजता ! ऐसे स्नेह को धिक्कार है ! ऐसे एकत्व भावना भाते हुए मरूदेवी माता को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और उसी वक्त आयु क्षय होने से (अंतकृत्केवली होकर) मोक्ष को प्राप्त हो गई। यहां पर कवि घटना करता है 'जगत् में युगादि–ऋषभदेव समान पुत्र नहीं है, क्योंकि जिसने एक हजार वर्ष तक पृथ्वी पर भटक–भटक कर जो केवलज्ञानरूप उत्तम रत्न प्राप्त किया था वह तुरन्त ही मातृस्नेह से माता को समर्पण कर दिया। मरूदेवी माता समान अन्य माता भी जगत् में नहीं है कि जो अपने पुत्र के लिए मुक्तिरूप कन्या को देखने वास्ते पहले ही मोक्ष में चली गई। प्रभु ने समवसरण में बैठ कर धर्मदेशना दी। उस वक्त वहां पर भरत के ऋषभसेन आदि पांच सौ पुत्रों ने और सातसौ पौत्रों ने दीक्षा ग्रहण की। इनमें से प्रभु ने ऋषभसेन आदि चौरासी गणधर स्थापे।

ब्राह्मी ने भी दीक्षा ली और वह मुख्य साध्वी बनी । भरत राजा श्रावक बना । यह स्त्रीरत्न बनेगी यह समझ कर सुंदरी को दीक्षा लेने से रोकी हुई सुन्दरी श्राविका बनी । इस प्रकार चतुर्विध संघ की स्थापना हुई । फिर कच्छ और महाकच्छ के सिवा सर्व तापसोंने प्रभु के पास आकर दीक्षा ग्रहण की । इंद्र के प्रतिबोध से मरूदेवी माता का शोक निवारण कर भरत राजा अपने स्थान पर चला गया ।

अब भरत राजा चक्ररत्न की पूजा कर शुभ दिन में प्रयाण कर साठ हजार वर्ष में भरतक्षेत्र के छह खंडो को साध कर अपने घर वापिस आया । परन्तु चक्ररत्न आयुधशाला के बाहर ही रहा । कारण समझ भरत ने अपने अठाणवें भाईयों को कहा कि-मेरी आज्ञा मानो । यह समाचार एक दूत के मुख से कहलवाया था । उन सबने एकत्रित होकर इस बात पर विचार किया कि -भरत की आज्ञा मानना था उसके साथ युद्ध करना । विचार कर सब के सब प्रभु की आज्ञानुसार वर्तने के लिए यह पूछने उनके पास आये । प्रभु ने भी बैतालिक अध्ययन की प्ररूपणा द्वारा उन्हें प्रतिबोधित कर वहां ही दीक्षा दे दी । अब भरत ने बाहुबलि पर भी दूत भेजा । वह भी क्रोध से अन्ध हो और अहंकार से उद्धत हो अपना सैन्य साथ ले भरत के सामने आ ड़टा । बारह वर्ष तक भरत के साथ्ञ युद्ध करता रहा, परन्तु हार न खाई । जनसमूह का अधिक संहार होता देख इंद्र ने आकर दृष्टि,

---

सुन्दरी ने प्रभु से जब यह सुना कि जो स्त्रीरत्न होता है वह नरकगामी होता है तो उसने भयभीत हो साठ हजार वर्ष तक आयंबिल की तपश्चर्या की तपश्चर्या करके भरतचक्रवर्ती की आज्ञा ले कर दीक्षा ले ली ।

For Private and Personal Use Only

फिर उन्होने वाग् और मुष्टि तथा दंडरूप यह चार प्रकार का युद्ध नियत किया । उसमें भी भरतचक्री का पराजय हुआ । फिर क्रोधांध होकर भरतने बाहुबलि पर चक्र छोड़ा, परन्तु एक गोत्री पर चक्र न चलने के कारण उस चक्रने उसका अनिष्ट न किया । उस वक्त क्रोधित हो भरत को मार डालने की इच्छा से मुक्का उठा कर सन्मुख दौड़ते हुए बाहुबलि ने विचार किया ''अरे ! पिता तुल्य बड़े भाई को मारना मेरे लिए सर्वथा अनुचित है, और उठाया हुआ हाथ निष्फल भी न जाना चाहिये'' यों विचार कर हाथ को अपने मस्तक पर रख कर केशलुंचन कर और सर्व सावद्य का त्याग कर दीक्षित हो वहां पर हीं ध्यान लगा दिया । यह देख कर भरतने उनके पैरों में पड़कर अपने अपराध की क्षमायाचना की और फिर वे अपने घर चले गये । बाहुबलि भी ''दीक्षापर्याय से बड़े, छोटे भाईयों को कैसे नमूं ? इसलिए जब केवलज्ञान हो जायगा तब ही प्रभु पास जाउंगा'' यों विचार कर एक वर्ष तक वहां पर कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े रहे । वर्ष के बाद प्रभु द्वारा भेजी गई अपनी बहिनों ने ''हे भाई ! हाथी से नीचे उतरो'' ऐसे कह कर प्रतिबोधित किया । फिर बाहुबलिने ज्यों पैर उठाया त्यों हीं उन्हें तुरन्त केवलज्ञान उत्पन्न हो गया । वहां से प्रभु के पास जाकर लंबे समय तक विचर कर प्रभु के साथ ही मोक्ष पधारे । इधर भरत चक्रवर्ती भी बहुत समय तक चक्रवर्ती लक्ष्मी को भोग कर एक दिन सीसमहल (आरिसाभवन) में अंगूठी रहित अपनी अंगूली को देख अनित्यता की भावना भाते हुए केवलज्ञान प्राप्त कर दश हजार राजाओं के साथ देवता द्वारा दिये हुए मुनिवेश को ग्रहण कर भरत राजा चिरकाल तक विचर कर मोक्ष सिधारें ।

For Private and Personal Use Only

अर्हन् कौशलिक श्री ऋषभदेव प्रभु के चौरासी गण और चौरासी ही गणधर हुए । ऋषभसेन आदि चौरासी हजार साधुओं की उत्कृष्ट साधुसंपदा हुई । ब्राह्मी सुन्दरी प्रमुख तीन लाख साध्वियों की उत्कृष्ट साध्वी संपदा हुई। श्रेयांसादि तीन लाख और पांच हजार श्रावकों की उत्कृष्ट श्रावकसंपदा हुई । सुभद्रा आदि पांच लाख चौपन हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट श्राविकासंपदा हुई । केवली नहीं किन्तु केवली के तुल्य चार हजार सातसौ पचास चौदहपूर्वियों की उत्कृष्ट संपदा हुई । नव हजार अवधिज्ञानियों की, बीस हजार केवलज्ञानियों की, बीस हजार और छह सौ वैक्रियलब्धिधारियों की, ढाई द्वीप और दो समुद्र के बीच संज्ञी पंचेंद्रिय जीवों के मनोगत भाव को जाननेवाले बारह हजार छह सौ पचास विपुळमतियों की, बारह हजार छह सौ पचास ही वादियों की उत्कृष्ट संपदा हुई । अर्हन् कौशलिक श्रीऋषभदेव प्रभु के बीस हजार साधु मोक्ष गये । चालीस हजार साध्वियां मोक्ष गई । अर्हन् कौशलिक श्रीऋषभदेव प्रभु के अनुत्तर विमान में पैदा होनेवालों और आगामी मनुष्य गति से मोक्ष जानेवाले बीस हजार नवसौ मुनियों की उत्कृष्ट संपदा हुई ।

अर्हन् कौशलिक श्री ऋषभदेव प्रभु की दो प्रकार की अंतकृत्भूमि हुई । युगान्तकृत् और पर्यायान्तकृत् । भगवान् के बाद असंख्यात पुरूषयुग मोक्ष गये वह युगान्तकृत्भूमि और प्रभु को केवलज्ञान पैदा होने पर अन्तर्मुहूर्त में मरूदेवी माता अन्तकृत्केवली होकर मोक्ष गई यह पर्यायान्तकृतभूमि समझना चाहिये ।

उस काल और उस समय में अर्हन् कौशलिक श्री ऋषभदेव प्रभु बीस लाख पूर्व कुमारावस्था में

For Private and Personal Use Only

रह कर, त्रेसठ लाख पूर्व राज्यावस्था में रह कर तिरासीलाख पूर्व गृहस्थावस्था में रह कर एक हजार वर्ष छद्मस्थ पर्याय पाल कर, एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक केवलीपर्याय पाल कर, एक लाख पूर्व चारित्र पर्याय पाल कर और चौरासी लाख पूर्व का सर्वायु पाल कर वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म के क्षय हो जाने पर इसी अवसर्पिणी में सुषमदुषम नामक तीसरा आरा बहुतसा बीत जाने पर –तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने शेष रहने पर अर्थात् तीसरे आरे के नवासी पक्ष शेष रहने पर, शरद् ऋतु के तीसरे महीने और पांचवें पक्ष में– माघ मास की कृष्ण त्रयोदशीके दिन अष्टापद पर्वत के शिखर पर दश हजार साधुओं के साथ चौवीहार छह उपवास का तप कर के अभिजित नामक नक्षत्र में चंद्रयोग प्राप्त होने पर प्रातः समय पल्यंकासन से बैठे हुए निर्वाण को प्राप्त हुए । यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हो गये ।

जिस वक्त श्रीऋषभदेव प्रभु मोक्ष सिधारे उस वक्त कंपितासन इन्द्र अवधिज्ञान से प्रभु का निर्वाण जान कर अपनी अग्रमहिषी सहित, लोकपालादि सर्व परिवार सहित प्रभु के शरीर के पास आकर तीन प्रदक्षिणा दे कर निरानन्द अश्रुपूर्ण नेत्र से न अति दूर और न अति नजदीक रह कर हाथ जोड़ पर्युपासना करने लगा । इसी प्रकार प्रकंपितासन ईशानादि समस्त इंद्र प्रभु का निर्वाण जान कर अष्टापद पर्वत पर अपने परिवार सहित वहां आते हैं जहां प्रभु का शरीर था । पूर्ववत् निरानन्द हो हाथ जोड़ कर खड़े रहते हैं । फिर इन्द्रने भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों से नन्दनवन से गोशीर्षचंदन मंगवा कर तीन

For Private and Personal Use Only

चितायें कराई । एक तीर्थंकर के शरीर के लिए, एक गणधरों के शरीर के लिए, और एक शेष मुनियों के लिए । फिर आभियोगिक देवों से क्षीरसमुद्र से जल मंगवाया । उस क्षीरसमुद्र के जल से इन्द्रने प्रभु के शरीर को स्नान कराया । ताजे गोशीर्षचंदन के द्रव से विलेपन किया, हंस लक्षणवाला वस्त्र ओढाया और सर्व अलंकारों से विभूषित किया । इसी तरह अन्य देवों ने गणधरों तथा मुनियों के शरीर को भी किया । फिर इन्द्र ने विचित्र प्रकार के चित्रों से चित्रित तीन शिविकाऐं बनवाई । आनन्द रहित दीन मनवाले तथा अश्रुपूर्ण नेत्र वाले इंद्रने प्रभु के शरीर को शिबिका में पधराया । दूसरे देवों ने गणधरों और मुनियों के शरीरों को शिबिका में पधराया । इंद्रने तीर्थंकर के शरीर को शिबिका में से नीचे उतार कर चिता में स्थापन किया । दूसरे देवो ने गणधरों और मुनियों के शरीरों को चिता में स्थापन किया । फिर इंद्र की आज्ञा से आनन्द और उत्साह रहित हो अग्निकुमार देवों ने चिता में अग्नि प्रदीप्त किया । वायुकुमार ने वायु चलाया और शेष देवों ने उन चिताओं में कालागुरू, चंदनादि उत्तम काष्ठ डाला तथा सहद और घी के घड़ों से चिताओं को सिंचन किया । जब उनके शरीर की सिर्फ हड्डियां शेष रह गई तब इंद्र की आज्ञा से मेघकुमार ने उन चिताओं को ठंडी कर दी । सौधर्मेन्द्रने प्रभु की दाहिनी तरफ की उपर की दाढ ग्रहण की । ईशानेंद्रने उपर की बांई तरफ दाढ ग्रहण की । चमरेंद्र नीचे की दाहिनी दाढ और बलींद्रने नीचे की बांई दाढ ग्रहण की । अन्य देवों ने भी किसी ने भक्तिभाव से, किसीने अपना आचार समझ कर और किनते एकने धर्म समझ कर शेष रही हुई अंगोपांग अस्थियां ग्रहण की।

For Private and Personal Use Only

फिर इंद्र ने एक तीर्थंकर की चिता पर, एक गणधरों की चिता पर और एक शेष मुनियों की चिता पर एवं तीन रत्नमय स्तूप करवाये । ऐसा करके शक्र आदि देव नन्दीश्वर द्वीप में अट्ठाई महोत्सव कर के अपने अपने विमान में जाकर अपनी अपनी सभा में वज्रमय डब्बों में उन दाढा आदि को रख कर गंधमालादि से उनकी पूजा करने लगे ।

सर्व दुःख से मुक्त हुए अर्हन् कौशलिक श्री ऋषभेदव प्रभु के निर्वाण बाद तीन वर्ष साढ़े आठ महीने बीतने पर –बैतालीस हजार वर्ष तथा तीन वर्ष और साढ़े आठ मास अधिक इतना काल कम एक सागरोपम कोटाकोटि बीतने पर श्रमण भगवान् श्री महावीर प्रभु निर्वाण पाये । उसके बाद नवसौ अस्सी वर्ष पर पुस्तक वाचना हुई । यह श्री ऋषभदेव प्रभु का चरित्र पूर्ण हुआ ।

For Private and Personal Use Only

आठवां व्याख्यान ।

अब गणधरादि की स्थविरावलीरूप आठवां व्याख्यान कहते हैं ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर प्रभु के नव गण और ग्यारह गणधर हुए । शिष्य पूछता है कि–हे भगवान ! आप किस हेतु से ऐसा कहते हैं कि श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु के नवगण और ग्यारह गणधर हुए ? क्यों कि–अन्य सब तीर्थकरों के जितने गण उतने ही गणधर हुए हैं । शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य महाराज कहते हैं कि–श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर के गौतम गोत्रवाले बड़े इंद्रभूति नामक अणगार पांचसौ मुनियों को वाचना देते थे । (मतलब इतने उनके मुख्य शिष्य थे, सब जगह ऐसा ही समझना चाहिये) भारद्वाज गोत्रवाले आर्य व्यक्त नामा स्थवीर पांचसौ मुनियों को वाचना देते थे । अग्नि वैश्यायन गोत्रवाले स्थविर आर्य सुधर्मा पांचसौ मुनियों को वाचना देते थे । वासिष्ठ गोत्रवाले आर्य मंडितपुत्र साढ़े तीनसौ मुनियों को पाठ देते थे । काश्यप गोत्रवाले आर्य मौर्यपुत्र साढ़े तीनसौ मुनियों को वाचना देते थे । गौतम गोत्रवाले स्थविर अकंपित और हारितायन गोत्रवाले स्थविर अचलभ्राता ये दोनों तीनसौ तीनसौ मुनियों को वाचना पढाते थे । कौडिन्य गौत्र वाले स्थवीर मैनार्य और स्थवीर प्रयास ये दोनों तीन सौ तीन सौ मुनियों वाचना देने थे इसी हेतु से है आर्य ! ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु के नव गण

For Private and Personal Use Only

और ग्यारह गणधर थे । क्यों कि अकंपित और अचलभ्राता की एक वाचना थीं । तथा मेतार्य और प्रभास की भी एक वाचना थीं, इसीसे नव गण और ग्यारह गणधर थे यह युक्तसिद्ध है ।

इंद्रभूति आदि जो श्रमण भगवन्त महावीर प्रभु के ग्यारह गणधर थे वे द्वादशांगी अर्थात् आचारांग से लेकर दृष्टिवाद पर्यन्त बारह अंगों को जाननेवाले थे । द्वादशांगी के ज्ञाता मात्र कहने से चौदहपूर्वी पन उसमें आही जाता है, तथापि उन अंगों में चौदह पूर्वो की प्रधानता बतलाने के लिए उन्हे पृथक ग्रहण किया है । वह प्रधानता प्रथम रचना होने से, अनेक विद्या, मंत्रादि के अर्थमय होने के कारण एवं उनका बड़ा प्रमाण होने से है । द्वादशांगीपन और चौदह पूर्वीपन तो सिर्फ सूत्र के ज्ञाता कहने से भी आजाता है । इस शंका को दूर करने के लिए कहा है कि--समस्त गणिपिटक को धारक करनेवाले थे, जिसका गण हो वह गणी अर्थात् भावाचार्य, और उसकी मानो पिटक कहने से पेटी ही हो । अर्थात् द्वादशांगीरूप गणिपिटक को धारण करनेवाले थे । उस द्वादशांगी को भी स्थूलिभद्रजी के समान देश से नहीं, किन्तु सर्व अक्षर के संयोग जानने के कारण उन्हें सूत्र और अर्थ से धारण करनेवाले थे । वे ग्यारह ही गणधर राजगृह नगर में चौविहार मासभक्त की तपस्या से याने एक मास तक भोजन का परित्याग करके पादोपगमन अनशन द्वारा मोक्ष को गये । यावत्

श्री स्थूलिभद्रजी जिनशासन में छट्ठे चौदहपूर्वधर कहे जाते हैं किन्तु वे दशपूर्व अर्थ सहित और चार मूल मात्र के ज्ञाता थे । इसका विशेष वर्णन इनके चरित्र से देखो ।

सर्व दुःखों से मुक्त हो गये । श्रीमहावीर प्रभु मोक्ष गये बाद स्थविर इंद्रभूति और स्थवीर सुधर्मास्वामी ये दोनों मोक्ष गये । ग्यारह गणधरों में से नव तो प्रभु के जीतेजी ही मोक्ष पधार गये थे । इस वक्त जो साधु विचरते हैं उन सब को आर्य सुधर्मा अणगार के शिष्यसंतान समझना चाहिये । शेष गणधर शिष्यसंतान रहित हैं । क्यों कि वे अपने निर्वाण समय अपने अपने गण को सुधर्मस्वामी को सौप कर मोक्ष गये हैं । कहा हैं कि सर्व गणधर समस्त लब्धियों से संपन्न, वज्रऋषभनाराच संहननवाले और समचतुरस्त्र संस्थानवाले, एक मास के पादोपगमन से मुक्ति गये ।

श्री सुधर्मास्वामी– श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु काश्यप गौत्रीय थे । उन काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवन्त महावीर प्रभु के अग्निवैश्यापन गोत्रवाले आर्य सुधर्मा स्थवीर शिष्य थे । श्रीवीर प्रभु की पाट पर श्री सुधर्मास्वामी पांचवें गणधर थे । उनका स्वरूप इस प्रकार है–कोल्लांग संनिवेश में धम्मिल नामक ब्राह्मण के भद्दिला नामा स्त्री थीं । उसकी कुक्षी से एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ जिसका नाम सुधर्म रक्खा गया । उसने चौदह विद्या के पारगामी होकर पचास वर्ष की वय में दीक्षा ली । तीस वर्ष तक वीर प्रभु की सेवा की । वीर प्रभु के निर्वाण बाद बारह वर्ष के अन्त में, जन्म के बाणवें वर्ष के अन्त में उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । फिर आठ वर्ष तक केवलीपर्याय पालकर सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर और अपनी पाट कर श्रीजम्बूस्वामी को स्थापित

कोलापुर शहर

For Private and Personal Use Only

कर मोक्ष पधारे ।

श्री जम्बूस्वामी– अग्निवैश्यायन गोत्रीय आर्य (स्थवीर) सुधर्मास्वामी के काश्यप गोत्रीय आर्य जम्बूनामक स्थविर शिष्य हुए । श्री जम्बूस्वामी का चरित्र इस तरह है–राजगृह नगर में ऋषभदत्त और धारिणी के पुत्र जम्बूकुमार ने श्री सुधर्मास्वामी के पास धर्म सुनने पूर्वक शील और सम्यक्त्व प्राप्त करेन पर भी माता पिता के दृढ आग्रह से कन्याओं से विवाह किया । परन्तु उनकी प्रेमगर्भित वाणी से मोहित न हुए । क्यों कि सम्यक्त्व और शीलरूप दो तूंबे जिनसे कि संसाररूप समुद्र तरा जा सकता है उन दो तूंबों को धारण करनेवाले जम्बूकुमार स्त्रीरूप नदी में कैसे डूब सकते थे ? विवाह की रात्रि को ही उन स्त्रियों को प्रतिबोध करते समय चोरी करने को आये हुए चारसौ निन्नाणवें परिवार वाले प्रभव को भी प्रतिबोधित किया । सुबह पांच सौ चोर, आठ स्त्रियां, उन स्त्रियों के मातापिता और अपने मातापिता के साथ स्वयं पांचसौ सत्ताईसव होकर निन्नाणवें करोड़ सुवर्ण त्याग कर जम्बूकुमार ने दीक्षा धारण की । अनुक्रम से केवली हुए, सोलह वर्ष तक गृहवास में रहे, बीस वर्ष छद्मस्थावस्था में और चवालीस वर्ष केवलीपर्याय में रहकर सर्व आयु अस्सी वर्ष का पूर्ण कर और अपनी पाट पर श्री प्रभवस्वामी को स्थापन कर मोक्ष गये । यहां कवि घटना करता है कि–जम्बू समान अन्य कोई कोतवाल न हुआ और न होगा, जिसने चोरों को भी मोक्षमार्गी साधु बना दिया । प्रभव प्रभु भी जयवन्त रहो जिसने बाह्य धन की चोरी करते करते अभ्यन्तर धन रत्नत्रय को चुरालिया यानि प्राप्त कर लिया ।

For Private and Personal Use Only

श्रीवीर प्रभु के निर्वाण से आठ वर्ष पीछे गौतम स्वामी, वीस वर्ष पीछे सुधर्मास्वामी और चौंसठ वर्ष पीछे जम्बूस्वामी मोक्ष गये । उस वक्त दस वस्तु विच्छेद हो गई अर्थात् भारतवर्ष में से नष्ट हो गई । मन:पर्यव ज्ञान, 1 परमावधि-जिसके होने पर अन्तर्मुहूर्त पीछे केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है 2 पुलाकलब्धि जिससे मुनि चक्रवर्ती के सैन्य को भी चूर्ण कर देने के लिए समर्थ होता है 3 आहारक शरीर लब्धि 4 क्षपकश्रेणि 5 उपशमश्रेणि 6 जिनकल्प 7 संयमत्रिक-परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यात चारित्र 8 केवलज्ञान 9 और मोक्ष मार्ग 10 यहां भी कवि कहता है-महामुनि जम्बूस्वामी का सौभाग्य लोकोत्तर है कि-जिस पति को प्राप्त कर के मुक्तिरूप स्त्री (भरतक्षेत्र से) अभी तक दूसरे स्वामी की इच्छा नहीं करती ।

श्री प्रभवस्वामी- काश्यप गोत्रीय आर्य जम्बूस्वामी के कात्यायन गोत्रीय स्थवीर आर्य प्रभव शिष्य हुए । कात्यायन गोत्रिय स्थविर आर्य प्रभाव के वच्छ गोत्रिय मनकपिता स्थविर शय्यंभव शिष्य हुए ।

एक दिन प्रभव मुनिने अपनी पाट पर स्थापन करने के लिए अपने गण में एवं संघ में उपयोग दिया, परन्तु वैसा योग्य पुरूष न देखने से, परतीर्थ में उपयोग देने पर राजगृह नगर में यज्ञ कराते हुए श्री शंय्यंभव भट्ट देखने में आये । फिर वहां भेजे हुए दो साधुओं ने निम्न वाक्य उच्चारण किया -''अहो कष्टमहोकष्टं तत्वं न ज्ञायते परं'' अर्थात्-अहो ! यह तो कष्ट ही कष्ट है, इसमें तत्व तो कुछ मालुम नहीं होता । यह वाक्य सुन शय्यंभवने तलवार दिखाकर अपने ब्राह्मण गुरू से जोर देकर पूछा तब उसने यज्ञस्तंभ के नीचे से निकाल कर श्रीशान्ति

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नाथ प्रभु की प्रतिमा दिखलाई जिसके दर्शन से प्रतिबोधित हो उसने श्री प्रभवस्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की। फिर प्रभवस्वामीजी श्री शय्यंभवसूरि को अपनी पाट पर स्थापन कर स्वर्ग गये।

श्री शय्यंभवसूरि– श्रीशय्यंभवने भी सगर्भा तजी हुई अपनी स्त्री से जन्मे हुए मनक नामक पुत्र के हितार्थ श्रीदशवैकालिक सूत्र की रचना की। श्रीयशोभद्रसूरि को अपनी पाट पर स्थापित कर वे भी श्रीवीरसे अठानवें वर्ष बाद स्वर्ग सिधारे।

श्री यशोभद्रसूरि– वच्छगोत्रीय मनक पिता स्थवीर आर्य शय्यंभव के तुंगीकायन गोत्रीय स्थवीर आर्य यशोभद्र शिष्य थे। श्री यशोभद्रसूरि भी श्री भद्रबाहु तथा संभूतिविजय इन दो शिष्यों को अपनी पाट पर स्थापन कर स्वर्ग गये।

श्री संभूतिविजय तथा भद्रबाहुस्वामी– अब यहां पर संक्षिप्त वाचना से स्थविरावली कहते हैं। संक्षिप्त वाचना से आर्य यशोभद्र से आगे स्थविरावली इस प्रकार कही है। तुंगीकायन गोत्रीय स्थविर आर्य यशोभद्र के दो स्थविर शिष्य थे। एक माढर गोत्रीय स्थविर संभूतिविजय और दूसरे प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु। श्री यशोभद्र की पाट पर श्री संभूतिविजय और आर्य भद्रबाहु नामक दो पट्टधर हुए। उसमें श्री भद्रबाहु का सम्बन्ध इस तरह है–प्रतिष्ठानपुर में वराहमिहिर और भद्रबाहु नामा दो ब्राह्मणों ने दीक्षा ली। उसमें भद्रबाहु को आचार्य पद देने से गुस्से होकर वराहमिहिरने ब्राह्मण का वेश धारण कर वराहसंहिता बना कर

---

1 दक्षिण का पेठण शहर

For Private and Personal Use Only

निमित्त (जोतिष) की प्ररूपणा आदि से अपना गुजारा करना प्रारंभ किया । लोगों में कहने लगा कि – मैंने जंगल में एक जगह शिला पर सिंह लग्न लिखा था । सोते समय मुझे याद आया कि मैंने उस लग्न को मिटाया नहीं । मैं उसी वक्त रात को ही वहां गया, परन्तु उस पर मैंने सिंह बेठा देखा । तथापि नीडर हो उसके नीचे हाथ डाल करके मैंने उस लग्न को मिटा दिया । इस से संतुष्ट हुआ सिंह लग्न का अधिपति सूर्य प्रत्यक्ष होकर मुझे अपने मंडल में ले गया । और वहां सर्व ग्रहों का सार मुझे दिखलाया ।

एक दिन वराहमिहिरने एक मांडला बना कर राजा से कहा कि–इस मांडले के मध्य भागमें आकाश से बावन पल प्रमाणवाला एक मच्छ पड़ेगा, परन्तु भद्रबाहु स्वामिने कहा कि ''अर्ध पल प्रमाण वजन उसका मार्ग में हीं सूख जायगा, इससे साढ़े एकावन पल प्रमाणवाला और मध्य भाग में न पड़कर वह एक किनारे पर पड़ेगा । घटना इसी प्रकार हीं हुई । अपनी बात झूठी साबित होने से वराहमिहिर का मन बड़ा दुःखित हुआ । वह दूसरा अवसर देखने लगा ।

एक दिन राजा के घर पुत्ररत्न का जन्म हुआ । वराहमिहिरने उसका सौ वर्ष का आयु बतलाया और लोगों में यह बात फैलाई कि भद्रबाहु तो व्यवहार को भी नहीं जानते कि जो राजा को पुत्र की बधाई देने तक भी नहीं आये । जब श्रीसंघ के आगेवानों ने यह बात श्री भद्रबाहुस्वामी से अर्ज की तब उन्होंने फरमाया कि हमें पुत्र बधाई देने जाने में कोई हर्ज नहीं है परन्तु सातवें दिन हमें पुनः शोक प्रकट करने जाना पड़ेगा इस

For Private and Personal Use Only

लिए हमने मौनावलंबन की श्रेयस्कर समझा । संघ ने बड़े आश्चर्य से पूछा कि–हे ज्ञानी गुरूदेव ! ऐसा क्यों ? तब आचार्य महाराज ने फरमाया कि–राजकुमार की सातवें दिन बिल्ली से मृत्यु हो जायगी । राजा को यह बात मालूम हुई तो राजाने शहर में से तमाम बिल्लियां निकलवा दी तथापि सातवें दिन दूध पीते बालक के मस्तक पर बिल्ली कि मुखाकारवाली अर्गला टूट पड़ने से उसकी मृत्यु हो गई । इससे भद्रबाहुस्वामी के ज्ञान की प्रशंसा और वराहमिहिर की सर्वत्र निन्दा हुई । वराहमिहिर क्रोध में मरकर व्यन्तर देव हुआ अतः उसने मरकी आदि से संघ में उपद्रव करना शुरू किया । भद्रबाहुस्वामीने उपसर्गहर स्तोत्र रचकर संघ का कल्याण किया । ऐसे श्री भद्रबाहु गुरू जयवन्ते रहें ।

श्री स्थूलभद्रजी– माढर गोत्रीय स्थविर आर्य संभूतिविजय के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलभद्र शिष्य थे । स्थूलभद्र का सम्बन्ध इस प्रकार है– पाटलीपुर में शकडाल मंत्री के पुत्र श्री स्थूलभद्र बारह वर्ष तक

❖ शास्त्रकारों का ऐसा फरमान है कि ''रज्जुगाह 1 विषभक्खण 2 जल 3 जलण 4 पवेस तन्ह 5 छुह 6 दुहिया । गिरिसिर पडणाओ मुआ सुहभावा 7 हुंति वंतरिया ।।1।।

❖ अर्थात्– कोई मनुष्य फांसा खाकर, विष भक्षण कर, जल में डूब कर, अग्नि में जल कर, क्षुधा और तृषा से पीडित होकर, पर्वत के शिखर से गिर कर मरे और यदि मरते समय उसको कुछ लेश मात्र भी शुभ भावना आजाय तो वो जींव मर कर व्यंतर जाति का देव होता है । पटना

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोशा नामा वेश्या के घर रहे थे । वररूचि ब्राह्मण के प्रयोग से उनके पिता की मृत्यु हुए बाद नन्द राजाने बुला कर मंत्रीपद देने के लिए कहा तब अपने चित्त में उसी मंत्रीपद से पिता की मृत्यु विचार कर उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली । गुरूमहाराज की आज्ञा लेकर प्रथम चातुर्मास कोशा के घर पर रहे । अत्यंत हावभाव करनेवाली वेश्या को भी प्रतिबोध कर गुरू म. के पास चातुर्मास के बाद जब आये तब गुरूजी ने भी उठकर संघ के समक्ष ''दुष्करकारक दुष्करकारक'' कह कर उन्हें सन्मानित किया । इस वचन को सुनकर सिंहगुफा के पास, सर्प की बंबी के पास और कुवे के काठे पर चातुर्मास करनेवाले तीनों मुनियों को बड़ा दुःख हुआ । उनमें से दूसरे चातुर्मास में सिंह गुफावासी साधु स्थूलभद्रजी की ईर्ष्या से गुरूमहाराज के निषेध करने पर भी कोशा के घर चोमासा करने गये तो दिव्य रूप धारण करनेवाली कोशा को देख वह मुनि तुरंत ही चलचित्त हो गया । उस वेश्या ने नेपाल देश से मुनिद्वारा रत्नकंबल मंगवा कर उसे गटर में फेंक कर उस मुनि को प्रतिबोध किया । फिर वह गुरूमहाराज के पास आकर कहने लगा कि-''सचमुच तमाम साधुओं में स्थूलभद्र तो स्थूलभद्र एक ही है, उसको गुरूजी ने दुष्कर दुष्करकारक कहा है सो युक्त ही है,'' पुष्प, फल, शराब, मांस और महिलाओं के रस को जानते हुए भी जो उनसे विरक्त रहते हैं ऐसे दुष्करकारक मुनियों को मैं नमस्कार करता हूं ।

एक समय का जिक्र है कि राजा अपने रथवान पर तुष्टमान हुआ और उससे कुछ मांगने को कहा । उसने कोशा वेश्या की मांगणी की, राजा ने उसे स्वीकार किया । रथवान वेश्या के घर गया और वेश्या को

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपनी चतुराई बतलाते हुए उसने एक बाण के मूल भाग में दूसरा बाण मार कर, उसके मूल भाग में फिर तीसरा बाण मार कर, इस तरह कितनेक बाणों से वहां ही बैठे हुए आमों का गुच्छा तोड़कर कोशा को अर्पण किया और अपनी इस विद्या पर गर्वित होने लगा । परन्तु कोशा को इस पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ । उसने सरसों का एक ढ़ेर करवाया और उस पर सुईयां खडी कर उन पर पुष्प रख कर उस पर नाच करते हुए गाना शुरू किया । गातीं हुई कहने लगी–

''न दुक्करं अंबयलुंबितोड़णं, न दुक्करं सरिसवणच्चि याए । तं दुक्करं जंच महाणुभावं, जं सो मुणी पमयवणंमि वुच्छो ।।1।। अर्थात्– आम की लुंब को तोडना यह कोई दुष्कर नहीं है, एवं सरसव पर नाचना भी कुछ दुष्कर नहीं है, परन्तु वहीं दुष्कर है जो उस महानुभाव मुनि ने प्रमदा (स्त्री) रूप वन में मूर्छित न हो कर बतलाया है ।'' यहां पर कवि कहता है–पर्वतों पर, गुफाओं में और निर्जन वन में वस कर हजारों मुनिओं ने इंद्रियों को वश किया है परन्तु अति मनोहर महल में मनोनुकूल सुन्दर स्त्री के पास रहकर इंद्रियों को वश करनेवाला शकडालनंदन हीं है । जिसने अग्नि में प्रवेश करने पर भी अपने आप को जलने न दिया, तलवार की धार पर चल कर भी इजा न पाई, भयंकर सर्प के बिल पर रहकर भी जो डसा न गया तथा कालिमा की कोठड़ी में रहकर भी जिसने दाग लगने न दिया । वेश्या रागवती थी, सदैव उनकी आज्ञा में चलने वाली थी, षट् रसयुक्त भोजन मिलता था, सुन्दर चित्रशाला थी, मनोहर शरीर था, नवीन

For Private and Personal Use Only

वय का मनोज्ञ समागम था, दोनों की युवावस्था थी और समय भी वर्षाकाल का था तथापि जिसने आदरपूर्वक काम विकार को जींता ऐसे, कोशा को प्रतिबोध करनेवाले श्री स्थूलिभद्रमुनि को मैं वंदन करता हूं। हे कामदेव ! मनोहर नेत्रवाली स्त्री तो तेरा मुख्य अस्त्र हैं, वसन्त ऋतु, कोयलनाद, पंचम स्वर तथा चंद्र ये तेरे मुख्य योद्धा हैं और विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव आदि तो तेरे सेवक हैं तथापि हे हताश ! तू इस मुनि से कैसे मारा गया ? हे मदन ! तूने नंदिषेण, रथनेमि और मुनीश्वर आर्द्रकुमार के समान ही इस मुनि को भी देखा होगा ? तू यह नहीं समझा कि नेमिनाथ, जम्बूस्वामी और सुदर्शन सेठ के बाद मुझे रणसंग्राम में पछाडनेवाला चौथा यह मुनि होगा ? विचार करने पर श्री नेमिनाथ प्रभु से भी शकडालसुत श्री स्थूलभद्र अधिक मालूम होते हैं क्यों कि श्री नेमिनाथ प्रभु ने तो पर्वत पर जाकर मोह को वश किया था परन्तु इस अनोखे सुभट ने तो मोह के घर में रहकर मोह का मर्दन किया हैं।

एक समय बारहवर्षीय दुष्काल के अन्त में संघ के आग्रह से श्री भद्रबाहुस्वामी पांचसो मुनियों को दृष्टिवाद की सदैव सात वाचना देते थे। सात वाचनाओं से भी अतृप्त रहते हुए अन्य सब मुनि उद्विग्न होकर अन्यत्र विहार कर गये। श्री स्थूलभद्रजी ही अकेले रह गये। वे दो वस्तु कम दश पूर्वतक पढ़े। एक दिन वन्दन के लिये आई हुई यक्षा आदि साध्वियों को जो उनकी सगी बहनें थीं सिंह का रूप दिखलाने की बात से नाराज हुए थीं श्री भद्रबाहुस्वामीने स्थूलभद्र से कहा – ''वाचना के लिये तुम अयोग्य हो, अतः वाचना

For Private and Personal Use Only

न मिलेगी'' फिर संघ के अत्याग्रह से 'तुमने अन्य को वाचना न देनी' यों कहकर शेष चार पूर्व की फक्त मूल सूत्र से वाचना दी । कहा है कि–जम्बूस्वामी अन्तिम केवली हुए तथा प्रभव प्रभु, शय्यंभव, यशोभद्र, संभूतिविजय, भद्रबाहु और स्थूलभद्र ये छह श्रुतकेवली हुए हैं ।

श्री आर्य महागिरि तथा श्री सुहस्तिसूरि ।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलभद्रजी के दो शिष्य थे । एक एलापत्य गोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि और दूसरे वासिष्ट गोत्रीय स्थवीर आर्य सुहस्तिसूरि । उनका संबन्ध इस प्रकार हैः– जिनकल्प विच्छेद होने पर भी जिस धीर पुरुष ने जिनकल्प की तुलना की, ऐसे मुनियों में वृषभ के समान और श्रेष्ठ चारित्र को धारण करने वाले महामुनि आर्य महागिरि को मैं वंदन करता हूं । जिसने जिनकल्प की तुलना की, और सेठ के घर में आर्य सुहस्तिने जिस की स्तवना की ऐसे आर्य महागिरि को मैं वन्दन करता हूं । जिनके कारण संप्रतिराजा सर्व प्रसिद्ध ऋद्धि पाये और परम पवित्र जैनधर्म को पाये उन मुनि प्रवर आर्य सुहस्तिगिरि को मैं वन्दन करता हूं । जिस आर्य सुहस्ति महाराजने साधुओं के पास से भिक्षा मांगते हुए भिक्षुक को दीक्षा दी थी । वह भिक्षु मर कर कहां पैदा हुआ सो कहते हैं । श्रेणिक का पुत्र कोणिक, उस का पुत्र उदायी, उसकी पाट पर नव नन्द, उनकी पाट पर चंद्रगुप्त, उसका पुत्र बिन्दुसार, उसका अशोक, उसका कुणाल और उसका पुत्र यह संप्रति हुआ । उसे जन्मते ही उस के दादा ने राज्य दे दिया था । एक दिन रथयात्रा में फिरते हुए श्री आर्यसुहस्तिगिरि को

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देख उसे जातिस्मरण ज्ञान पैदा हुआ । जिस से उसने सवा लाख जिनालय, और सवा करोड़ नवीन जिनबिम्ब बनवाये । तथा छत्तीस हजार मंदिरों का जीर्णोद्धार कराकर, पंचानवें हजार पीतल की प्रतिमायें भरवाकर तथा हजारों दानशालाएं खोल कर तीन खंड पृथ्वी को जैनधर्म से विभूषित कर दिया । अनार्य देशों को भी करमुक्त कर के धर्मानुयायी बनाया साधुवेष धारण करनेवाले सेवकों को अनार्य जैसे देशों में भेज कर साधुओं के विहार करने योग्य बनाये और अपने सेवक राजाओं को जैन धर्म में अनुरक्त किया । जो प्रासुक वस्तु वस्त्र, पात्र, अन्न, दही आदि बेचते थे उन्हें संप्रति राजाने कह रक्खा था कि तुम आते-जाते मुनिओं के सामने अपनी चीजें रखना और वे पूज्य जो चीज ग्रहण करें खुशी से उन्हें देना । हमारा खजानची तुम्हें उन चीजों का मूल्य तथा इच्छित लाभ गुप्ततया देगा। वे राजा की आज्ञा से वैसा करने लगे और साधु उन चीजों के अशुद्ध होने पर भी शुद्ध बुद्धि से ग्रहण करने लगे।

वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्तिगिरि के व्याघ्रापत्य गोत्रीय सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध नाम के कोटिक एवं काकंदी ऐसे दो स्थविर शिष्य हुए । एक करोड़ दफा सूरिमंत्र का जाप करने से सुस्थित मुनि कोटिक कहलाते थे, और काकंदी नगरी में जन्म होने के कारण सुप्रतिबुद्ध मुनि काकंदित कहलाते थे । व्याघ्रापत्य गोत्रीय सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध स्थविर कोदिक और काकंदिक के कौशिक गोत्रिय स्थविर आर्य इंद्रदिन्न शिष्य थे कौशिक गौत्रीय स्थविर आर्यइन्द्रदिन्न कैश्यैनम गौत्रिय स्थविर जार्यदिन्न शिष्य थे ।गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यदिन्न शिष्य थे । गौतम गोत्रीय

1 प्राचीन ग्रंथों में से इनका जिकर बृहस्त्कल्प में मिलता है ।

For Private and Personal Use Only

स्थविर आर्यदिन्न के कौशिक गोत्रीय और जातिस्मरण ज्ञानधारी स्थविर आर्यसिंहगिरि शिष्य थे । कौशिक गोत्रीय और जाति स्मरण ज्ञानधारी स्थविर आर्यसिंहगिरि के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवज्र शिष्य थे । गौतम गोत्रीय आर्यवज्र के उत्कौशिक गोत्रीय स्थवीर आर्यवज्रसेन शिष्य थे । उत्कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्यवज्रसेन के चार स्थविर शिष्य थे । स्थविर आर्यनागिल, स्थविर आर्यपौमिल, स्थविर आर्यजयन्त और स्थविर आर्य तापस । स्थविर नागिल से आर्यनागिला शाखा निकली, स्थविर आर्यपौमिल से आर्यपौमिला शाखा निकली, स्थविर आदजयन्त से आर्यजयन्ती शाखा निकली और स्थविर आर्यतापस से आर्यतापसी शाखा निकली ।

अब विस्तृत वाचनाद्वारा स्थविरावली कहते हैं :–

इस विस्तृत वाचना में आर्य यशोभद्र से स्थविरावली इस प्रकार जाननी । इसमे बहुत से भेद तो लेखकदोष के हेतुभूत समझना चाहिये । शेष स्थविरों की शाखायें और कुल प्रायः आज एक भी मालूम नहीं होते । उनको जानने वालों का मत है कि वे दूसरे नामों से तिरोहित (हो गये) होंगे । कुल एक आचार्य का परिवार समझना चाहिये । और गण एक वाचना (क्लास) लेनेवाला मुनिसमुदाय जानना चाहिये । कहा है कि ''एक आचार्य की संतति को कुल जानना चाहिये और दो या उससे अधिक आचार्यों के मुनि एक दूसरे से सापेक्ष वर्तते हों तो उनका एक गण समझना चाहिये । शाखा एक आचार्य की संतति मे ही उत्तम पुरूषों के जुदे जुदे वंश या विवक्षित आद्यपुरूष की संतति जानना चाहिये । जैसे कि वज्रस्वामि के नाम से हमारी वज्री शाखा है ।

तुंगिकापन गोत्रीय स्थविर आर्ययशोभद्र के ये दो स्थविर शिष्य पुत्र समान थे । जिस के पैदा होने से पूर्वज अयशरूप कीचड़ में न पड़ें उसे अपत्य-पुत्र कहते हैं और उसके समान हो उसे यथापत्य-पुत्र के समान कहते हैं ।) वह इस तरह-एक प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु और दूसरे माढर गोत्रीय स्थविर आर्य संभूतिविजय । प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु के ये चार स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे । स्थविर गोदास, स्थविर अग्निदत्त, स्थविर यज्ञदत्त और स्थविर सोमदत्त । ये चारो ही काश्यप गोत्री थे । काश्यप गोत्रीय स्थविर गोदाससे गोदास नामक गण निकला । उसकी चार शाखायें इस तरह कहलाती हैं- तामलिप्तिका 1, कोटिर्षिका 2, पुंडवर्धनिका 3, और दासीखरबटिका । माढर गोत्रीय स्थविर संभूतिविजय के बारह स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे । नन्दनभद्र 1, उपनन्द 2, तिष्यभद्र 3, यशोभद्र 4, सुमनोभद्र 5, मणिभद्र 6, पूर्णभद्र 7, स्थूलभद्र 8, ऋजुमति 9, जम्बू 10, दीर्घभद्र 11, और पाडुंभद्र 12 । माढर गोत्रीय स्थवीर आर्य संभूतिविजय की सात शिष्यायें पुत्री समान प्रसिद्ध थीं । यक्षा 1, यक्षदिन्ना 2, भूता 3, भूतदिन्ना 4, सेणा 5, वेणा 6, और रेणा ये सातों स्थूलभद्र की बहिनें थीं । गौतम गोत्रीय स्थविर शिष्य आर्य स्थूलभद्र के दो स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे । एलापत्य गोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि 1 और वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्तिगिरि 2 । एलापत्य गोत्रीय स्थवीर आर्य महागिरि के आठ स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे । स्थविर उत्तर 1, स्थविर बलिस्सह 2, स्थविर धनाढय 3, स्थविर श्रीभद्र 4, स्थविर कौडिन्य

For Private and Personal Use Only

5, स्थविर नाग 6, स्थविर नागमित्र 7, और कौशिक गोत्रीय स्थविर षडुलूक रोहगुप्त 8 । द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय, इन छह पदार्थों की प्ररूपणा करने से षड् और उलूक गोत्र में पैदा होने से उलूक, इस षड् उलूक का कर्मधारय समास करने से षडुलूक होता है; इस लिए षडुलूक रोहगुप्त कहे जाते थे । कौशिक गोत्रीय स्थविर रोहगुप्त से त्रैराशिक मत निकला । जीव, अजीव और नोजीव नामक तीन राशि की प्ररूपणा करने वाले उस के शिष्य प्रशिष्य त्रैराशिक कहलाते हैं । उस की उत्पत्ति इस प्रकार हैः– श्री वीर प्रभु के निर्वाण बाद पांच सौ चवालिसवें वर्ष में अंतरंजिका नामक नगरी में भूतगृह जैसे व्यन्तर के चैत्य में रहे हुए श्री गुप्ताचार्य को वन्दन करने के लिए दुसरे ग्राम से आते हुए उसके रोहगुप्त नामक शिष्य ने एक वादी द्वारा बजवाए हुए पटह का ध्वनि सुनकर उस पटह को स्पर्श किया और वहां आ कर आचार्य से बात की । फिर बिच्छू, सर्प, चूहा, मृगी, वराही, काकी, और शकुनिका नामक परिवाजक की विद्याओं को उपघात करनेवाली मयूरी, नकुली, बिल्ली, व्याघ्री, सिंही, उलूकी और श्येनी नाम की सात विद्यायें और सर्व उपद्रव को शान्त करनेवाला मंत्रित रजोहरण गुरू के पास से लेकर बलश्री नामक राजा की सभा में आकर पोट्टशाल नामक परिव्राजक के साथ वाद आरंभ किया । उस परिव्राजकने जीव अजीव, सुख दुःख आदि दो राशियां स्थापन की । तब तीन देव, तीन अग्नि, तीन शक्ति, तीन स्वर, तीन लोक, तीन पद, तीन पुष्कर, तीन ब्रह्म, तीन वर्ण, तीन गुण, तीन पुरुष, संध्यादि तीन काल, तीन वचन, तथा तीन ही अर्थ

कहे हैं, इस प्रकार कहते हुए रोहगुप्तने जीव, अजीव और नोजीव इत्यादि तीन राशि स्थापन की । फिर उसकी विद्याओं को अपनी विद्याओं से जीतने पर उसने छोड़ी हुई रासभी विद्या को रजोहरण से जीत कर महोत्सव पूर्वक गुरू महाराज के पास आकर सर्व वृत्तान्त सुनाया । तब गुरूजी ने कहाकि-''हे वत्स ! तूने उसे जीता यह अच्छा किया, परन्तु जीव, अजीव और नोजीव जो तीन राशि की प्ररूपणा की यह उत्सूत्र है, अतः इसके संबन्ध में वहां जाकर मिच्छामि दुक्कडं दे आ'' । सभा में इस तरह स्थापन किये अपने मत को मैं स्वयं ही वहां जाकर अप्रमाण कैसे करूं ? इस प्रकार अहंकार पैदा होने से उसने वैसा नहीं किया । फिर गुरूजी ने राजसभा में उस के साथ 6 मास तक वाद कर के अन्त में कुत्रिकापण (करियाणे वाले) से नोजीव वस्तु मांगी । वहां पर न मिलने से चवालिस सौ प्रश्न कर के उसे परास्त किया । तथापि उसने अपन आग्रह (हट) न छोड़ा, तब तंग आकर गुरूजी ने क्रोध से थूकने के पात्र में से उसके मस्तक पर भस्म डालकर उसे संघ बाहिर कर दिया । फिर उस त्रैराशिक छठवें निहनव निहनवे वैशेषिक मत प्रगट किया । यद्यपि रोहगुप्त को सूत्र में आर्य महागिरि का शिष्य कहा हुआ है, परन्तु उत्तराध्ययनं वृत्ति में श्री गुप्ताचार्य का शिष्य कहा होने को कारण हमने भी वैसे ही लिखा है । तत्व तो बहुश्रुत जानें।

कुत्रिक अर्थात् तीन लोक, आपण अर्थात् दुकान । तीन लोक के अंदर की सब वस्तुएं जिस दुकान पर मिल सकती हो-उसे कुत्रिकापण कहते हैं । वैसी राजगृही नगरी में देवाधिष्ठित दुकान थी, वहां भी नोजीव न मिला ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्थविर उत्तरबलिस्सह से उत्तरबलिस्सह नामक गण निकला, उसकी चार शाखायें इस प्रकार है ! कौशांबिका, सौरितिका, कौटुंबिनी और चंदनागरी । वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ति के बारह स्थविर शिष्य पुत्रसमान प्रसिद्ध थे । स्थविर आर्य रोहण 1, भद्रयश 2, मेघ 3, कामर्द्धि 4, सुस्थित 5, सुप्रतिबुद्ध 6, रक्षित 7, रोहगुप्त 8, ऋषिगुप्त ९, श्रीगुप्त 10, ब्रह्मा 11 और सोम 12 । इस तरह सुहस्ती के गच्छ को धारण करने वाले ये बारह शिष्य थे । काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्य रोहण से उदेह नामक गण निकला । उसमें से चार शाखा और छह कुल निकले जो इस प्रकार हैं:- उडुंबरिका शाखा 1, मास पूरिका 2, मतिपत्रिका 3, पूर्णपत्रका 4, ये शाखायें । और पहला नागभूत, दूसरा सोममूह तीसरा उल्लगच्छ, चौथा हस्तलिप्त, पांचवां नंदिज्ज और छठवां पारिहासक । ये छह कुल हैं । हारित गोत्रीय स्थविर श्रीगुप्त से चारण नामक गण निकला । उसकी चार शाखायें और सात कुल इस प्रकार हैं:- हारितमालागारी 1, संकासिका 2, गवेधुका 3, तथा वज्रनागरी 4, यें शाखायें और वत्सलिज्ज और 1, प्रीतिधार्मिक 2, हालिज्ज 3, पुष्पमित्रिक 4, मालिज्ज 5, आर्यवेड़क 6 और कृष्णसख 7 । ये कुल हैं । भारद्वाज गोत्रीय स्थविर भद्रयशा से उडुवाटिक नामक गण निकला, उसकी चार शाखायें और तीन कुल इस प्रकार हैं:- चंपिज्जिया 2, भदिज्ज्या 2, काकंदिका 3, और मेघहलिज्ज्यि 4, ये चार शाखायें हैं । भद्रयशिक 1, भद्रगुप्तिक 2 और यशोभद्र 3 ये तीन कुल हैं । स्थविर कामर्द्धिसे वेसवाटिक नामक गण निकला और उसकी चार शाखायें एवं चार ही कुल इस प्रकार कहे जाते हैं:-

For Private and Personal Use Only

श्रावस्तिक 1, राज्यपालिका 2, अन्तरिंज्जिया 3 और क्षेमलिज्जिया 4, ये चार शाखायें और गणिक 1, मेधिक 2, कामर्द्धिक 3 और इंद्रपूरक 4 , ये चार कुल हैं । वासिष्ट गोत्रीय स्थविर ऋषिगुप्त काकंदिक से माणव नामक गण निकला और उसकी चार शाखायें एवं तीन कुल इस प्रकार कहे जाते हैः- काश्यपिका 1, गौतमिका 2, वाशिष्टिका 3, और सौराष्ट्रिका 4, ये चार शाखायें और ऋषिगुप्तक 1, ऋषिदत्तिक 2 और अभिजयन्त 3, ये तीन कुल हैं । व्याघ्रापत्य गोत्रीय तथा कौटिक काकंदिक उपनामवाले स्थविर सुस्थित और स्थविर सुप्रतिबुद्ध से कौटिक नामक गण निकला । उसकी चार शाखायें और चार ही कुल इस प्रकार हैं । उच्चनागरी 1, विद्याधरी 2, वज्री 3 और मध्यमिका 4 ये चार शाखायें और बंभलिप्त 1, वस्त्रलिप्त 2, वाणिज्य 3 और प्रश्नवाहनक 4 ये चार कुल हैं । व्याघ्रापत्य गोत्रीय एवं कौटिक काकंदिक उपनामवाले स्थविर सुस्थित और स्थविर सुप्रतिबुद्ध के ये पांच स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे, स्थविर आर्य इंद्रदिन्न 1, स्थविर प्रियग्रंथ 2, काश्यप गोत्रवाले स्थविर विद्याधर गोपालक 3, स्थविर ऋषिदत्त 4 और स्थविर अरिहदत्त 5 ।

यहां पर स्थविर प्रियग्रंथ का सम्बन्ध कहते हैः- तीनसौ जिन भवन, चारसौ लौकिक प्रासाद, अठारह सौ ब्राह्मणों के घर, छत्तीस सौ बनियों के घर, नव सौ बगींचे, सात सौ बावडी, दो सौ कुवे और सातसौ दानशालाओं से विराजित अजमेर के नजीक सुमरपाल राजा के हर्षपुर नामक नगर में एक समय श्री प्रियग्रंथसूरि पधारे एक दिन वहां पर ब्राह्मणों ने यज्ञ में बकरा होम करना शुरू किया । तब प्रियग्रंथसूरि ने एक श्रावक को वास-

क्षेप देकर और वह उस बकरे पर डला कर उसे अंबिका अधिष्ठित किया । इस से बकरा आकाश में जाकर बोलने लगा कि–''अरे ब्राह्मणों ! तुम मुझे बांध कर लाये हो परन्तु यदि मैं भी तुम्हारे जैसा निर्दय हो जाउं तो क्षणवार में हीं तुम्हें मार डालूं । लंका के किले में क्रोधित हुए हनुमानने ज्यों राक्षसों के लिए किया था वैसे ही यदि दया बीच में न आतीं तो आकाश में रह कर हीं मैं तुम्हारे लिए करता । हिंसा में धर्म नहीं । कहा भी है कि–''हे भरत ! पशु के शरीर में जितने रोम कूप हैं उतने हजार वर्ष तक पशुघातक नरक में जापडना हैं । यदि कोई सुवर्ण का मेरू या सारी पृथ्वी दान में देवे और दूसरा मनुष्य किसी प्राणी को जीवितदान देवे तो उनमें जीवितदान का दाता बढ़ता है । बड़े बड़े दानों का फल भी क्षीण हो जाता है परन्तु भयभीत हुए जीव को अभयदान देनेवाले मनुष्य का पुण्य क्षीण नहीं होता ।'' फिर लोगों ने कहा–तू कौन है ? अपने आत्मा को प्रगट कर । वह बोला–''मैं अग्निदेव हूं । तुम मेरे वाहनरूप इस बकरे को क्यों मारते हो ? यदि धर्म की जिज्ञासा है तो यहां आये हुए श्री प्रियग्रंथसूरि के पास जाकर शुद्ध धर्म पूछो और मानसिक शुद्धिपूर्वक उसकी आराधना करो । जैसे राजाओं में चक्रवर्ती और धनुष्धारियों में धनंजय–अर्जुन है त्यों सत्यवादियों में वह एक हीं धुरीण हैं '' । फिर ब्राह्मणों ने वैसा हीं किया ।

स्थविर प्रियग्रंथ से मध्यमा शाखा निकली । काश्यप गोत्रीय स्थविर विद्याधर गोपाल से विद्याधरी शाखा निकली । काश्यप गोत्रीय आर्य इंद्रदिन्न के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यदिन्न शिष्य थे । गौतम गोत्रीय स्थविर

आर्यदिन्न के दो स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे । माढर गोत्रीय आर्य शान्तिसेनिक 1 और जातिस्मरण ज्ञानधारी तथा कौशिक गोत्रीय आर्यसिंहगिरि 1 । माढर गोत्रीय स्थविर आर्यशान्तिसेनिक से यहां पर उच्च नागरी शाखा निकली । माढर गोत्रीय स्थविर आर्यशान्तिसेनिक के चार स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे । स्थविर आर्यसेनिक 1, स्थविर आर्यतापस 2, स्थविर आर्यकुबेर 3 और स्थविर आर्यऋषिपालित 4 । स्थविर आर्यसेनिक से आर्यसेनिका शाखा निकली, स्थविर आर्यतापस से आर्यतापसी शाखा निकली, स्थविर आर्य कुबेर से आर्यकुबेरी शाखा निकली और स्थविर आर्यऋषिपालित से आर्यऋषिपालिका शाखा निकली । जाति स्मरण ज्ञानवाले और कौशिक गोत्रीय आर्यसिंहगिरि के चार स्थविर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे । स्थविर धनगिरि 1, स्थविर आर्यवज्र 2, स्थविर आर्यसमित 3 और स्थविर अर्हदिन्न 4 ।

यहां पर स्थविर आर्यवज्र का सम्बन्ध कहते हैं–तुंबवन नामक ग्राम में अपनी सुनन्दा नामा सगर्भा स्त्री को छोड़ कर धनगिरिने दीक्षा ग्रहण की । सुनन्दा को पुत्र पैदा हुआ । उस पुत्र को अपने जन्म समय ही पिता की दीक्षा की बात सुनकर जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ । फिर माता का मोह कम करने के लिए वह निरन्तर रोने लगा । इस से कंटाल कर उसकी माता ने जब वह 6 मास का हुआ तब ही उसे धनगिरि को दे दिया । उसने झोली में लेजा कर गुरू को सोंप दिया । गुरू म. ने अति भारी जान कर उसका नाम वज्र रखा और वह पालन – पोषण के लिए एक गृहस्थ को दे दिया गया, श्राविकाओं की निगरानी में साध्वियों के उपा–

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रय में पालने में रहा हुआ ही ग्यारह अंग पढ़ गया । फिर जब वह तीन साल का हुआ तब उसकी माता ने राजसभा समक्ष विवाद में अनेक खाने की चीजें और खिलौने आदि से बहुविध ललचाया तथापि उसकी कुछ भी चीज न लेकर धनगिरि का दिया हुआ रजोहरण ले लिया । फिर निराधार हो माता ने भी दीक्षा ले ली । वज्र को भी गुरू ने दीक्षित किया । एक दिन आठ वर्ष के अन्त में उसके पूर्व भव के मित्र जृंभक देवोंने उज्जयिनी के मार्ग में वृष्टि विराम पाने पर उसे कुष्मांड पाक की (पेठा पाक) भिक्षा देनी शुरू की परन्तु उन देवों की आंखें न टिम टिमाने के कारण उसे देवपिण्ड समझ कर और देवपिण्ड मुनियों को अकल्प्य होने से ग्रहण नहीं किया । इस से संतुष्ट हो उन देवों ने उसे वैक्रियलब्धि दी । इसी प्रकार दूसरी दफा घेवर न लेने से देवों ने उसे आकाशगामिनी विद्या दी । उसी मुनिने पाटलीपुर में धन नामक शेठ द्वारा करोड़ धन सहित दी जाती हुई उसकी रुक्मिणी नामा पुत्री को ''जिसने साध्वियों के मुख से वज्र के गुण सुनकर यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं वज्र से ही ब्याह कराउंगी'' प्रतिबोध देकर दीक्षा दी । यहां कवि कहता है कि जिस वज्रर्षिने बाल्यावस्था में ही सहज ही में मोहरूप समुद्र को एक घुट कर लीया उसे स्त्रीरूप नदी का प्रवाह कैसे भिगो सकता है ? वह वज्रस्वामी एक समय दुष्काल में संघ को पट पर कर बैठा कर सुकालवाली नगरी में ले गये । वहां पर बौद्ध राजाने जिनमंदिरों में पुष्पों देने का निषेध कर दिया था । पर्युषणों में श्रावकों के विनती करने पर आकाशगामिनी विद्याद्वारा

1 पुरी नाम से प्रसिद्ध

For Private and Personal Use Only

माहेश्वरीपुरी में अपने पिता के मित्र एक माली को पुष्प एकत्रित करने को कह कर स्वयं हिमवत् पर्वत पर लक्ष्मीदेवी द्वारा मिला हुआ महापद्म ले तथा हुताशन वन में से बीस लाख पुष्पों सहित जृंभक देवों ने बनाये हुए विमान में बैठ कर महोत्सवपूर्वक वहां आकर जिनशासन की प्रभावना की और बौद्ध राजा को भी जैन बनाया। एक दिन श्रीवज्रस्वामी ने कफ के उपशमन के लिए भोजन के बाद खाने के उद्देश से कान पर रक्खी हुई सूंठ की गांठ प्रतिक्रमण के समय जमीन पर गिरने से स्मरण हुआ। इस प्रमाद के कारण अपनी मृत्यु नजदीक जान कर श्रीवज्रस्वामीने अपने शिष्य से कहा कि ''अब बारह वर्ष का दुष्काल पड़ेगा और जिस दिन मूल्यवाले भोजन में से तुझे भिक्षा मिले उससे अगले दिन सुबह ही सुभिक्ष हो जायगा, यह निश्चय समझना चाहिये।' यों कहकर उन्हें अन्यत्र विहार करा दिया और स्वयं अपने साथ रहे मुनियों सहित रथावर्त पर्वत पर जाकर अनशन ग्रहण कर के देवलोक गये। उस वक्त संघयणचतुष्क और दशवां पूर्व विच्छेद हो गया। फिर बारह वर्षी दुष्काल पड़ा। उसके अन्त में सोपारक नगर में जिनदत्त श्रावक के घर लक्ष मूल्यवाला अन्न पका, उसकी ईश्वरी नामा स्त्री इस हेतु से कि सारा कुटुंब साथ मर जाय उसमें विष डालने की तैयारी कर रही थी। मालूम होने से उसे गुरू का वचन सुनाकर श्रीवज्रसेन ने रोका दिया। दूसरे दिन सुबह ही किसी जहाज द्वारा धान्य आजाने से सुकाल हो गया। उस वक्त जिनदत्त ने अपनी स्त्री तथा नागेंद्र, चंद्र, निवृति और विद्याधर नामक

For Private and Personal Use Only

चार पुत्रों सहित दीक्षा ग्रहण कर ली । उन चार शिष्यों के नामसे चार शाखायें निकलीं ।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यसमित से ब्रह्मदीपिका नामा शाखा निकली है जिसका सम्बन्ध इस प्रकार है–आभीर देश में अचल पुल के नजदीक और कन्ना तथा बेन्ना नामक दो नदियों के बीच ब्रह्मद्वीप में (टापु में) पांच सौ तापस रहते थे । उनमें से एक पैरों में लेप कर के स्थल के समान जल पर चल कर जल से पैर भीजे बिना ही बेन्ना नदी में उतर कर पारणा के लिए जाया करता था । यह देख 'अहो ! इसके तप की शक्ति कैसी प्रबल है ! जैनियों में ऐसा कोई भी प्रभावशाली नहीं है' ऐसी बातें सुन कर श्रावकों ने श्री वज्रस्वामी के मामा आर्य समितसूरि को बुलवाया । उन्होंने फरमाया कि–यह तापस के तप की शक्ति नहीं, किन्तु पादलेप की शक्ति हैं । एक दिन तापस को श्रावकोंने भोजन के लिए निमंत्रित किया और आने पर उसके पैर पादुकायें खूब मसल कर धो डालीं। भोजन किये बाद नदी तक श्रावक साथ गये । धृष्टता का अवलंबन ले उसने नदी में प्रवेश किया परन्तु तुरन्त ही वह डूबने लगा, इससे तापसों की बड़ी अपभ्राजना हुई । उसी समय आर्य समितसूरिने आकर लोगों को प्रतिबोध करने के लिए नदी में योगचूर्ण डालकर कहा–हे बेन्ना ! मुझे उस पार जाना है । इतना कहते ही दोनों किनारे अलग अलग हो गये यानि रास्ता दे दिया यह देख लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ । फिर सूरिजी ने उन तापसों के आश्रम में जाकर उन्हें उपदेश देकर दीक्षित किया । उनसे ब्रह्मद्वीपिका शाखा निकली है ।

आर्य महागिरि, आर्यसुहस्ती, श्रीगुणसुन्दरसूरि, श्यामाचार्य, स्कंदिलाचार्य, रेवतीमित्र सूरीश्वर, श्रीधर्म,

भद्रगुप्त, श्रीगुप्त और वज्रसूरीश्वर ये दश दशपूर्वी युगप्रधान हुए हैं ।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवज्र से आर्यवज्री शाखा निकली । गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवज्र के तीन स्थवीर शिष्य पुत्र समान प्रसिद्ध थे । स्थविर आर्यवज्रसेन, स्थविर आर्यपद्म और स्थविर आर्यरथ । स्थविर आर्य वज्रसेन से आर्य नागिला शाखा निकली, स्थविर आर्य पद्म से आर्य पद्म शाखा निकली और स्थविर आर्य रथसे आर्य जयन्ती शाखा निकली । वच्छ गोत्रीय स्थविर आर्य रथ के कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य पुष्पगिरि शिष्य थे । कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य पुष्पगिरि के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य फल्गुमित्र शिष्य थे । गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य फल्गुमित्र के वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य धनगिरि शिष्य थे । वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य धनगिरि के कुच्छ गोत्रीय स्थविर आर्य शिवभूति शिष्य थे । कुच्छ गोत्रीय स्थविर आर्य शिवभूति के काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्य भद्र शिष्य थे काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यनक्षत्र शिष्य थे । काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्य नक्षत्र के काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यरक्ष शिष्य थे । काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्य रक्षके गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यनाग शिष्य थे । गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यनाग के वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य जेहिल शिष्य थे । वासिष्ट गोत्रीय स्थविर आर्य जेहिल के माढर गोत्रीय स्थविर आर्य विष्णु शिष्य थे । माढर गोत्रीय स्थविर आर्य विष्णु के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य कालिक शिष्य थे । गौतम गोत्रिय स्थविर आर्य

1 आज भी साधु-साध्वी की दीक्षा के समय यही शाखा बोली जाती है ।

For Private and Personal Use Only

कालिक के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य संपालित और स्थविर आर्यभद्र नामक दो शिष्य थे । गौतम गोत्रीय इन दो स्थविरों के गौतम स्थविर आर्यवृद्ध शिष्य थे । गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवृद्ध के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य संघपालिक शिष्य थे । गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यसंघपालित के काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यहस्ती शिष्य थे । काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यहस्ती के सुव्रत गोत्रीय स्थविर आर्यधर्म शिष्य थे । सुव्रत गोत्रीय स्थविर आर्यधर्म के काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यसिंह शिष्य थे । काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यसिंह के काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यधर्म शिष्य थे । काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्यधर्म के स्थविर आर्यसंडिल शिष्य थे ।

(अब यहां से 'वन्दामि फग्गुमित्तं' इत्यादि जो चौदह गाथायें आती हैं उनका अर्थ बहुतसा ऊपर आ चुका है तथापि उसे पद्य में संग्रहित की हुई होने से उनका अर्थ भी फिर से किया है, अतः इससे पुनरुक्ति दोष न समझना चाहिये । गौतम गोत्रीय फल्गुमित्र को, वासिष्ट गोत्रीय धनगिरि को, कुच्छ गोत्रीय शिवभूति को और कौशिक गोत्रीय दुर्जय कृष्ण को वन्दन करता हूं । उन्हें मस्तक से नमन कर काश्यप गोत्रीय भद्र को, काश्यप गोत्रीय नक्षत्र को और काश्यप गोत्रीय दक्ष को नमस्कार करता हूं । गौतम गोत्रीय आर्य नाग को, वासिष्ट गोत्रीय आर्यजेहिल को, माढर गोत्रीय विष्णु को और गौतम गोत्रीय कालिक को वन्दन करता हूं । गौतम गौत्रीय कुमार संपालित को, तथा आर्यभद्र को नमता हूं एवं गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवृद्ध को वन्दन करता हूं । उन्हें मस्तक से नमन कर स्थिर सत्व, चारित्र और ज्ञान से संपन्न काश्यप गोत्रीय स्थविर संघ–

पालित को वन्दन करता हूं । क्षमा के सागर, धीर और जो ग्रीष्मकाल के प्रथम मास में फागन के शुक्ल पक्ष में स्वर्ग गये ऐसे काश्यप गोत्रीय आर्यहस्ती को मैं वन्दन करता हूं । शीललब्धिसंपन्न और जिस के दीक्षा महोत्सव में जिस पर देवों ने छत्र धारण किया था ऐसे सुव्रत गोत्रवाले आर्यधर्म को वन्दन करता हूं । काश्यप गोत्रीय आर्यहस्ती को तथा मोक्षसाधक आर्यधर्म को नमन करता हूं । काश्यप गोत्रीय आर्यसिंह को नमन करता हूं । उन्हें मस्तक से नमन कर स्थिर सत्व, चारित्र और ज्ञान से संपन्न गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य जम्बू को वन्दन करता हूं । सरलता से संयुक्त तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र से संपन्न ऐसे काश्यप गोत्रीय स्थविर नंदित को भी नमन करता हूं । फिर स्थिर चारित्रवाले तथा उत्तम सम्यक्त्व एवं सत्व से भूषित माढर गोत्रीय देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को वन्दन करता हूं । अनुयोग धारक धीर, मतिसागर और महासत्वशाली वच्छगोत्रीय स्थिरगुप्त क्षमाश्रमण को वन्दन करता हूं । ज्ञान, दर्शन और चरित्र में सुस्थित गुणवन्त ऐसे स्थविर कुमारधर्म गणि को वन्दन करता हूं । सूत्रार्थरूप रत्नों से भरे हुए तथा क्षमा, दम, मार्दवादि गुणों से संपन्न ऐसे काश्यप गोत्रीय देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को वन्दन करता हूं ।

मालूम न होनेवाली यह है– जिसमें चातुर्मास के योग्य पीठ फलकादि प्राप्त करने पर भी कल्प में कथन किये मुजब द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप स्थापना की जाती है और वह भी आषाढ पूर्णिमा के भीतर ही की जाती है । परन्तु योग्य क्षेत्र के अभाव में पांच पांच दिन की वृद्धि से दश पर्वतिथि के क्रमद्वारा श्रावण वदी अमावस्या तक ही की जाती है । गृहीज्ञाता–गृहस्थी को मालूम होनेवाली भी दो प्रकार की है । एक वार्षिक कृत्यों से युक्त और दूसरी गृही ज्ञात मात्रा–सिर्फ गृहस्थो को मालूम होनेवाली । उसमें भी वार्षिक प्रतिक्रमण, लोच, अट्ठम का तप, सर्व जिनेश्वरो की भक्ति पूजा और परस्पर संघ से क्षमापना, ये सांवत्सरिक कृत्य है । इन कृत्यों सहित पर्युषणा भादरवा सुदी पंचमी के दिन ही और कालिकाचार्य के उपदेश से चतुर्थी के दिन भी की जाती है । सिर्फ गृहस्थों को मालूम होनेवाली यह है–जिस वर्ष में अधिक मास हो उस वर्ष में चातुर्मास दिन से लेकर बीस दिन बाद मुनि 'हम यहां रहे हैं' पूछनेवाले गृहस्थों के आगे ऐसा कहते हैं । सो भी जैन पंचांग के अनुसार है । क्यों कि उसमें युग के मध्य में पौष तथा युग के अन्त में आषाढ मास की वृद्धि होती है, किन्तु अन्य किसी मास की वृद्धि नहीं होती । वह पंचांग आज कल बिल्कुल प्राप्त नहीं होता । इस कारण आषाढ पूर्णिमा से पचास दिन पर पर्युषण करना युक्त है ऐसा वृद्ध आचार्य कहते है । यहां पर कोई कहता है कि श्रावण मास की वृद्धि हो तब दूसरे श्रावण सुदी चौथ को ही पर्युषणा करना युक्त है पर भादरवा सुदी चौथ को युक्त नहीं, क्यों कि इससे अस्सी दिन होने के कारण 'वासाणं सवींसइराए मासे विइक्कंते'

।। अथ नवम व्याख्यानं ।।

अब सामाचारीरूप तीसरा अधिकार कहते हुए पर्युषणा पर्व कब करना चाहिये प्रथम यह बतलाते हैं ।

उस काल और उस समय वर्षाकाल के एक मास और बीस दिन बीतने पर श्रमण भगवान् श्री महावीरने चातुर्मास में पर्युषण पर्व किया है ।1। हे पूज्य ! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि वर्षाकाल के एक मास और बीस दिन बीतने पर श्रमण भगवान् श्री महावीर ने चातुर्मास में पर्युषण किया है ? इस प्रकार शिष्य की तरफ से प्रश्न होने पर गुरू उत्तर देने के लिए सूत्र कहते हैं । जिस कारण प्रायः गृहस्थियों के घर चटाई से ढके हुए होते हैं, चूने से धवलित होते हैं, घास वगैरह से आच्छादित किये होते हैं, गोबर आदि से लीपे हुए होते हैं,चार दिवारों की वृत्ति-बौंडरी करने आदि से सुरक्षित किये हुए होते हैं, विषम भूमि को खोद कर सम किये हुए होते हैं, पत्थर के टुकड़ों से घिस कर कोमल किये हुए होते हैं, सुगन्ध के लिए धूप से वासित किये हुए होते हैं, परनालारूप पानी जाने के मार्गवाले किये हुए होते हैं, तथा नालियां खुदवाई हुई होती हैं, इस तरह अपने घर अचित्त किये हुए होते हैं, इसी कारण हे शिष्य ! ऐसा कहा जाता है कि वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन बितने पर श्रमण भगवान् श्री महावीर ने चातुर्मास में पर्युषण पर्व किया है ।2। इसी तरह गणधरों ने भी वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन बीतने पर श्रमण भगवान् श्री महावीर ने चातुर्मास में पर्युषण पर्व किया है । ।3।

For Private and Personal Use Only

जिस तरह गणधरों ने वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन गये बाद पर्युषणा पर्व किया, उसी प्रकार गणधरों के शिष्यों ने एक मास और बीस दिन गये बाद पर्युषणा पर्व किया ।4। जिस तरह गणधरों के शिष्यों ने एक मास और बीस दिन गये बाद पर्युषणा पर्व किया उसी तरह स्थविरों ने भी एक मास और बीस दिन गये बाद पर्युषणा पर्व किया ।5। जिस तरह स्थविरों ने एक मास और बीस दिन गये बाद पर्युषण पर्व किया उसी तरह आर्यता से या व्रतस्थिरता से वर्तते हुए आधुनिक श्रमण निर्ग्रंथ विचरते हैं वे भी वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन गये बाद पर्यषणा पर्व करते है ।6। जिस तरह आधुनिक समय में श्रमण निर्ग्रंथ भी वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन गये बाद चौमासी पर्युषणा पर्व करते हैं उसी तरह हमारे आचार्य और उपाध्याय भी पर्युषणा पर्व करते हैं ।7। उसी तरह हमारे आचार्य और उपाध्याय भी पर्युषणा पर्व करते हैं उसी तरह हम भी वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन गये बाद चातुर्मास में पर्युषणा पर्व करते हैं । भाद्रपद सुदी 5 से पहले भी पर्युषणा पर्व करना कल्पता है परन्तु भादवा सुदी 5 की रात्रि उल्लंघन करनी नहीं कल्पती ।8।

परि- उषणं-पर्युषण-चारों तरफ से आकर एक जगह रहना इसे पर्युषणा कहते हैं । वह पर्युषणा दो प्रकार की है । एक गृहस्थों को मालूम होने वाली और दूसरी गृहस्थों को मालूम न होने वाली । उसमें गृहस्थों को

यह पर्युषणा वार्षिक पर्वरूप समझना चाहिये ।

अर्थात्– वर्षा काल का एक मास और बीस दिन गये बाद इस वचन को बाधा पहुचती है । हे देवानुप्रिय ! यदि विचार करें तो ऐसा नहीं है, क्योंकि यों तो आश्विन मास की वृद्धि होने से चातुर्मासिक कृत्य दूसरे आश्विन मास की शुक्ल चतुर्दशी को ही करना चाहिये, क्यों कि कार्तिक मास की शुक्ल चतुर्दशी को करने से सौ दिन हो जाते हैं और इससे 'समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते सित्तरि राइंदिएहिं सेसेहिं' अर्थात ! श्रमण भगवान् श्री महावीर ने वर्षाकाल का एक मास और बीस दिन गये बाद और सत्तर दिन शेष रहने पर पर्युषणा की, समवायांग सूत्र के इस वचन को बाधा आती है । यह भी नहीं करना चाहिये कि चातुर्मास आषाढ आदि मास से प्रतिबद्ध है, इससे कार्तिक चातुर्मास का कृत्य कार्तिक मास की शुक्ल चतुर्दशी को ही करना युक्त है और दिनों की गिनती के विषय में अधिक मास कालचूला के तौर पर होने से उसकी अविवक्षा को लेकर सत्तर ही दिन होते हैं तो फिर समयायांग सूत्र के वचन को कैसे बाधा आती है ? उत्तर देते हैं कि जैसे चातुर्मास आषाढ आदि मास से प्रतिबद्ध है वैसे ही पर्युषणा भी भादवा मास से प्रतिबद्ध है इस कारण भादवे में ही करना चाहिये । दिनों की गिनती के विषय में अधिक मास कालचूला के तौर पर है इस से उन्हें गिनती में न लेने से पचास ही दिन होते हैं, अब फिर अस्सी की तो बात ही कहां ? पर्युषणा भाद्रमास से प्रतिबद्ध है यों कहना भी अयुक्त नहीं है, क्यों कि ऐसा ही बहुत से आगमों में प्रतिपादन किया हुआ है । दृष्टांत के तौर पर 'अन्यदा पर्युषणा का दिन आने पर आर्यकालसूरि ने शालिवाहन को कहा कि

For Private and Personal Use Only

भादवा सुदी पंचमी को पर्युषणा है' इत्यादि पर्युषणाकल्प की चूर्णि में है । तथा शालिवाहन राजा जो श्रावक था वह कालकसूरिजी का आया सुन कर उनके सन्मुख जाने को निकला और श्रमण संघ भी निकला । बड़े आडम्बर से कालकसूरिजी ने नगर प्रवेश किया और प्रवेश कर के कहा कि भाद्रपद पंचमी के पर्युषणा करना है, श्रमण संघ ने यह मंजूर किया, तब राजा ने कहा–उस दिन लोकानुवृत्ति से इंद्र महोत्सव होने के कारण पर्युषणा नहीं हो सकेगी, अतः छठके दिन पर्युषणा करें । आचार्य ने कहा–पंचमी को उल्लंघन न करना चाहिये । फिर राजा ने कहा–तो फिर चौथ के दिन पर्युषणा करें, तब आचार्य ने कहा कि ऐसा ही हो, फिर चौथ को पर्युषणा की । इस प्रकार युगप्रधान ने कारण से चौथ की प्रवृत्ति की और वह सर्व मुनियों को मान्य है । इत्यादि निशीथचूर्णि के दशवें उद्देशे में कहा है । इस तरह जहां कहीं पर पर्युषणा का निरूपण आवे वहां भाद्रपद सम्बन्धी ही समझना चाहिये । किसी भी आगम में 'भद्दवय सुद्धपंचमीए पज्जोसविज्ज इति' अर्थात् भाद्रव सुदी पंचमी को पर्युषणा करना इस पाठ के समान अभिवर्धित वर्ष में श्रावण सुदि पंचमी को पर्युषणा करना ऐसा पाठ उपलब्ध नहीं होता । इस लिए कार्तिक मास से प्रतिबद्ध पर्युषण करने में अधिक मास प्रमांण नहीं है । इस लिए भाई ! कदाग्रह को छोड़ दे । क्या अधिक मास को कौवा खा गया ? क्या उस मास में पाप नहीं लगता था उस में भूख नहीं लगती ? इत्यादि उपहास्य कर के तू अपना पागलपन प्रगट न कर । क्यों कि तू भी अधिक मास होने पर

याने तेरह मास होने पर सांवत्सरिक क्षमापना में 'बारसण्हं मासाणं' इत्यादि बोलते हुए अधिक मास को अंगीकार नहीं करता । इसी तरह चातुर्मासिक क्षमापना में भी अधिक मास हो तथापि 'चउण्हं मासाणं' इत्यादि और पाक्षिक क्षमापना में अधिक तिथि होने पर भी 'पन्नरसण्हं दिवसाणं' इस तरह ही तू भी बोलता है । इसी तरह नव कल्पविहार आदि लोकोत्तर कार्य में भी बोला जाता है । तथा 'आषाढे मासे दुपया' इत्यादि, सूर्यचार कि विषय में भी ऐसे ही कहा जाता है । लोक में भी दीपावली, अक्षय तृतीया आदि पर्व के विषय में एवं ब्याज गिनने आदि में भी अधिक मास नहीं गिना जाता यह तू स्वयं जानता है । तथा अधिक मास नपुंसक होने से ज्योतिष शास्त्र उसमें तमाम शुभ कार्य करने का निषेध करता है । दूसरा मास कोई अधिक हो उसकी तो बात ही दूर रही परन्तु यदि भाद्रव मास भी अधिक हो भी पहला भाद्रव अप्रमाण ही है । अर्थात् दूसरे ही भाद्रव में पर्युषणा की जाती है । जैसे चतुर्दशी अधिक होने पर पहली चतुर्दशी को न गिन कर दूसरी चतुर्दशी को ही पाक्षिक कृत्य किया जाता है वैसे ही यहां पर भी समझ लेना चाहिये । और यदि तू यह कहे कि अधिक मास अप्रमाण होने से देवपूजा, मुनिदान और आवश्यकादि शुभ कार्य भी न करने चाहियें तो इस दलील को यहां स्थान नहीं मिलता क्यों कि दिन प्रतिबद्ध देवपूजा, मुनिदान वगैरह जो कृत्य हैं वे तो प्रतिदिन होने ही चाहियें, और संध्या आदि समयप्रतिबद्ध जो आवश्यक आदि कृत्य हैं वे भी हरेक संध्या समय पाकर करने ही चाहिये एवं भाद्रपद आदि मास से प्रतिबद्ध जो कृत्य हैं वे दो भाद्रपद होने पर कौन

For Private and Personal Use Only

से मास में करना ? इस विषय में प्रथम मास को न गिन कर दूसरे में करना ऐसा भली प्रकार विचार कर, अचेतन वनस्पतियां भी अधिक मास को प्रमाण नहीं करतीं, जिसे अधिक मास को छोड़ कर वे दूसरे मास में पुष्पित होतीं हैं । इसके लिए आवश्यकनिर्युक्ति में कहा है कि 'जइफुल्ला कणियारा' चूअगणा अहिमासयंमि धुट्ठंमि । तुह न खमं फुल्लेउं, जइ पंच्चंता करिंति उमराइं ।।1।। भावार्थ-हे आम्रवृक्ष ! अधिक मास की उद्घोषणा होने पर कदाचित् कनियर के फूल तो फूलें परन्तु तुझे फूलना नहीं घटता, क्यों कि इससे तुच्छ, जाति के वृक्ष तेरी हंसी करेंगे । तथा कोई 'अभिवड्डियंमि वीसा इअरेसु सवीसइ मासे' इस वचनद्वारा अधिक मास हो तब बीस दीन पर ही लोच आदि कृत्य सहित पर्युषणा करते हैं, यह भी अयुक्त है । क्यों कि 'अभिवड्डियंमि वीसा' यह वचन गृहिज्ञात पर्यूषणा मात्र की अपेक्षा से है । अन्यथा 'आसाढमासिए पज्जोसविंति एस उस्सगो, सेसकालं पज्जोसविंताणं अववाउत्ति' याने आषाढ मास में पर्युषणा करना यह उत्सर्ग है और शेष काल में पर्युषणा करना यह अपवाद है ऐसा श्री निशीथ चूर्णि के दशम उद्देशे का वचन होने से आषाढ़ पूर्णिमा को हीं लोचादि कृत्य सहित पर्युषणा करनी चाहिये । ''यह चातुर्मास रहने की अपेक्षा से कथन किया गया है परन्तु कृत्यविशिष्ट पर्युषणा करने के लिए नहीं इसी कारण ऐसा नहीं किया जाता '' ।

कल्प में कही हुई द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप स्थापना इस प्रकार है-द्रव्य स्थापना-तृण, डगल, छार,

मल्लक आदि का परिभोग करना और सचित्तादि का परित्याग करना । उसमें सचित्त द्रव्य–अति श्रद्धावान् राजा और राजा के मंत्री सिवा शिष्य को दीक्षा न देना । अचित द्रव्य–वस्त्रादि ग्रहण न करना । मिश्र द्रव्य–उपधि सहित शिष्य ग्रहण न करना । क्षेत्र–स्थापना–एक योजन और एक कोस–पांव कोस तक आना जाना कल्पता है । बीमार के लिये वैद्य 'औषधि के कारण चार या पांच योजन तक कल्पता है । काल स्थापना–चार महीने तक रहना और भावस्थापना क्रोधादि का परित्याग और ईर्यासमिति आदि में उपयोग रखना ।।8।।

चातुर्मास रहे साधु साध्वियों को चारों दिशा और विदिशाओं में एक योजन और एक कोस तक अर्थात् पांच कोस तक का अवग्रह कल्पता है । अवग्रह कर के 'अहालंदमिव' जो कहा है उसमें अथ यह अव्यय है और लंद शब्द से काल समझना चाहिये । उसमें जितने समय में भीना हुआ हाथ सूक जाय उतने कालको जघन्य लंद कहते हैं पांच अहोरात्रि पांच समग्र रातदिन को उत्कृष्ट लंद कहते है और इसके बीच का काल मध्यम लंद कहलाता है । लंदकाल तक भीं अवग्रह के अन्दर रहना कल्पता है, पर अवग्रह से बाहर रहना नहीं कल्पता है, परन्तु अवग्रह के बाहर रहना नहीं कल्पता अपिशब्द से याने अलंदमपि अधिक कालतक छः मास तक एक साथ अवग्रह मे रहना कल्पता है परन्तु अवग्रह के बाहर रहना नहीं कल्पता गजेन्द्र पद आदि पर्वत की मेखला के ग्रामों में रहे हुए साधु साध्वियों को उपाश्रय से छः हीं दिशाओं में जाने का ढाई कोस और आने जाने का पांच कोस का अवग्रह होता है । अटवी, जलादि से व्याघात होने पर तीन दिशाओं का, दो दिशाओं का या एक दिशा का अवग्रह जानना

For Private and Personal Use Only

चाहिये ।9।

3 चातुर्मास रहे हुए साधु या साध्वियों को चारों दिशा और विदिशाओं में एक योजन और एक कोस तक भिक्षाचर्या के लिए आना जाना कल्पता है ।10। जहां पर नित्य ही अधिक पानी वाली नदी हो और नित्य बहती हो वहां सर्व दिशाओं में एक योजन और एक कोस तक भिक्षाचर्या के लिए जाना आना नहीं कल्पता ।11। कुणाला नामा नगरी के पास ऐरावती नामा नदी हमेशा दो कोश प्रमाण में बहती है । वैसी नदी थोड़ा पानी होने से उल्लंघन करनी कल्पती है, परन्तु निम्न प्रकार से नदी उतरना कल्पता है ।

एक पैर जल में रक्खे और दूसरा पैर पानी से ऊपर रख कर चले । यदि इस प्रकार नदी उतर सकता हो तो चारों दिशा और विदिशाओं में एक योजन और एक कोस तक भिक्षा के निमित्त जाना आना कल्पता है ।12। जहां पूर्वोक्त रीति से न जासके वहां साधुओं को चारों दिशा और विदिशाओं में इतना जाना आना नहीं कल्पता । यदि जंघा तक पानी हो तो वह दकसंघट्ट कहलाता है । नाभि तक पानी हो तो लेप कहाता है और नाभि से उपर हो तो वह लेपोपरि कहलाता है । शेषकाल में तीन दफा दकसंघट्ट होने पर क्षेत्र नहीं हना जाता इसलिए वहां जाना कल्पता है । वर्षाकाल में सात दफा दकसंघट्ट होने पर क्षेत्र नहीं हना जाता । शेषकाल में चौथा और वर्षाकाल में आठवां दकसंघट्ट होने पर क्षेत्र हना जाता है । लेप तो एक भी क्षेत्र को हनता है । इससे नाभि तक पानी हो तो उतरना नहीं कल्पता । नाभि से ऊपरपानी होने पर तो सर्वथा ही नहीं कल्पता ।13।

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चार चातुर्मास रहे हुए किसी साधु को पहले से हीं गुरूने कहा हुआ हो कि हे शिष्य ! बीमार साधु को अमुक वस्तु ला देना तब उस साधु को वस्तु ला देनी कल्पती है परन्तु उसे वह बरतनी (वापरनी)नहीं कल्पती ।14। चातुर्मास रहे साधु को यदि प्रथम से गुरूने कहा हुआ हो कि हे शिष्य ! अमुक वस्तु तू स्वयं लेना तो उसे लेनी कल्पती है । पर उसे दूसरे को देनी नहीं कल्पती ।15। चातुर्मास रहे साधु को गुरू ने प्रथम से कहा हुआ हो कि हे शिष्य ! तू ला देना और तू स्वयं भी बरतना हो वह वस्तु उसे कल्पती है ।16।

5 (पांच) चातुर्मास रहे साधु और साध्वियों को विगय लेना नहीं कल्पता । किन साधुओं को नहीं कल्पता ? जो हष्टपुष्ट हैं, तरूण अवस्था से समर्थ हैं, निरोगी हैं, आरोग्य बलवान् साधुओं को जो आगे कथन की जानेवाली रस से प्रधान विगय है बारंबार खाना नहीं कल्पता । वे विगय ये समझना चाहिये–दूध 1, दहीं 2, घीं 4, तेल 5, गुड़ 6, कडाविगय के ग्रहण करने से कारण पड़ने पर भक्षण करने योग्य विगय कल्पती हैं, ऐसा समझना चाहिये । और छः के ग्रहण करने से किसी दिन पक्वान भी ग्रहण किया जाता है । पूर्वोक्त विगय सांचयिक और असांचयिका ऐसे दो प्रकार की हैं । उसमें दूध, दहीं और पक्वान ये नामवाली बहुत समय तक नहीं रक्खी जा सकती सो असांचयिका जानना चाहिये । रोगादि के कारण गुरू बाल आदि को उपग्रह करने के निमित्त या श्रावक के निमंत्रण से वह लेना कल्पता है । घीं, तेल, और गुड़ ये तीन विगय सांचयिका समझना चाहिये । उन तीन विगयों को लेने समय श्रावक से कहना कि अभी बहुत समय तक

For Private and Personal Use Only

रहना है इससे हम बीमार आदि के लिए ग्रहण करेंगे । वह गृहस्थ कहे कि-चातुर्मास तक लेना वह बहुत है तब वह लेकर बालादि को देना । परन्तु जवान साधु को न देना ।

ता.क. माह विगय बिलकुल त्याज्य है मध (शहद), मक्खन, मद्य (शराब) और मांस, मनुष्य मात्र के लिये त्याज्य है ।

छट्ठा चातुर्मास रहे हुए साधुओं में वैयावच्च-सेवा करने वाले मुनि ने प्रथम से हीं गुरुमहाराज को यों कहा हुआ हो कि-हे भगवन् ! बीमार मुनि के लिए कुछ वस्तु कीं जरूरत है ? इस प्रकार सेवा करने वाले किसीं मुनि के पूछने पर गुरू कहे कि-बीमार को वस्तु चाहिये ? चाहिये तो बीमार से पूछो कि-दूध आदि तुम्हें कितनीं विगय कीं जरूरत है ? बीमार के अपनी आवश्यकतानुसार प्रमाण बतलाने पर उस सेवा करनेवाले मुनि को गुरू के पास आकर कहना चाहिये कि बीमार को इतनीं वस्तु कीं जरूरत है । गुरू कहे-जितना प्रमाण वह बीमार बतलाता है, उतने प्रमाण में वह विगय तुम ले आना । फिर सेवा करनेवाला वह मुनि गृहस्थ के पास जा कर मांगे । मिलने पर सेवा करनेवाला मुनि जब उतने प्रमाण में वस्तु मिल गई हो जितनीं बीमार को जरूरत है तब कहे कि बस करो, गृहस्थ कहे-भगवन् ! बस करो ऐसा क्यों कहते हो ? तब मुनि कहे -बीमार को इतनीं हीं जरूरत है, इस प्रकार कहते हुए साधु को कदाचित् गृहस्थ कहे कि - हे आर्य साधु ! आप ग्रहण करो, बीमार के भोजन करने के बाद जो बचे सो आप खाना, दूध वगैरह पीना । कचित पाहिंसित्ति के बदले दाहिंसित्ति

देखने में आता है, तब ऐसा अर्थ करना चाहिये, बीमार के भोजन किये बाद जो बचे वह आप खाना और दूसरों को देना, ऐसा गृहस्थ के कहने पर अधिक लेना कल्पता है । परन्तु बीमार की निश्राय से लोलुपता से अपने लिए लेना नहीं कल्पता । बीमार के लिए लाया हुआ आहारादि मंडली में न लाना चाहिए ।18।

सातवां चातुर्मास रहे साधुओं को उस प्रकार के अनिन्दनीय घर जो कि उन्होंने या दूसरों ने श्रावक किये हों, प्रत्ययवन्त या प्रीति पैदा करनेवाले हों, या दान देने में स्थिरवाले हों, यहां मुझे निश्चय ही मिलेगा ऐसे विश्वासवाले हों, जहां सर्व मुनियों का प्रवेश सम्मत हो, जिन्हे बहुत साधु सम्मत हों, या जहां घर के बहुत से मनुष्यों को साधु सम्मत हों, तथा जहां दान देने की आज्ञा दी हुई हो, या सब साधु समान है ऐसा समझ कर जहां छोटा शिष्य भी इष्ट हो, परन्तु मुख देखकर तिलक न किया जाता हो, वैसे घरों में आवश्यकीय वस्तु के लिए बिन देखे ऐसा कहना नहीं कल्पता कि हे आयुष्मन् ! यह वस्तु है ? इस तरह बिन देखी वस्तु को पूछना नहीं कल्पता । शिष्य प्रश्न करता है कि-हे भगवान् ! ऐसा विधान किस लिए ? गुरू कहते हैं-श्रद्धावान् गृहस्थ उस वस्तु को मूल्य देकर लावे यदि मूल्य से भी न मिले तो वह अधिक श्रद्धा होने से चोरी भी करे । कृपण के घर बिन देखी वस्तु मांगने में भी दोष नहीं है ।19।

आठवां चातुर्मास रहे हुए सदैव एकासना करनेवाले साधु को सूत्रपौरूषी किये बाद काल में एक दफा गोचरी जाना गृहस्थ के घर कल्पता है अर्थात् भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में जाना आना कल्पता है । परन्तु दूसरी

For Private and Personal Use Only

दफा जाना नहीं कल्पता । आचार्य आदि की वैयावच्च करनेवाले साधुओं को वर्ज कर यह अर्थ समजना चाहिये । यदि वे एक दफा भोजन करने से अच्छी तरह सेवा भक्ति नहीं कर सकते तो दो दफा भी भोजन कर सकते हैं, क्योंकि वैयावच्च–सेवा श्रेष्ठ है । आचार्य की वैयावच्च करनेवाले एवं बीमार की वैयावच्च करनेवाले साधुओं को वर्ज कर दूसरे एक दफा भोजन करें । जब तक मूछ, दाढ़ी, बगल आदि के बाल न आये हों तब तक शिष्य और शिष्याओं को भी दो दफा भोजन करने में दोष नहीं है । वैयावच्च करनेवाले को भी दो दफा भोजन करना कल्पता है ।

बीसवां चातुर्मास रहे हुए एकान्तरे उपवास करनेवाले साधुओं को जो अब कहेंगे सो विशेष है । वह सुबह गोचरी जाने के लिए उपाश्रय से निकल कर पहले ही शुद्ध प्रासुक आहार लाकर खाकर, छास आदि पीकर, पात्रों को निर्लेप करके–वस्त्र से पोंछ कर, प्रमार्जित कर के, धोकर यदि वह चला सके तो उतने ही भोजन में उस दिन रहना कल्पना है यदि वह साधु आहार कम होने से न चला सहन हो तो उसे दूसरी दफा भी भात पानी के लिए गृहस्थ के घर जाना आना कल्पता है । चातुर्मास रहे नित्य अट्ठम करनेवाले साधु को गृहस्थ के घर भात पानी के लिए दो दफा आना जाना कल्पता है । चातुर्मास रहे नित्य अट्ठम करने वाले साधु को गृहस्थ के घर भात पानी के लिए तीन दफा जाना आना कल्पता है । चातुर्मास रहे नित्य अट्ठम उपरान्त तप करनेवाले साधु को गृहस्थ के घर भात पानी के लिए गोचरी के सर्वकाल में जाना आना कल्पता है । अर्थात्

रख नहीं सकता । क्यों कि इससे संयम, जीवसंसक्ति, सर्पाघ्राण X आदि दोषों का संभव होता है । इस प्रकार आहार विधि कह कर अब पानी के पदार्थो का विधि कहते हैं ।

नवां चातुर्मास रहे हुए नित्य एकासना करनेवाले साधु को सर्व प्रकार का प्रासुक पानी कल्पता है । अर्थात् आचारांग में कहे हुए इक्कीस प्रकार का या यहां पर जो कहा जायगा नव प्रकार का पानी समझना चाहिये । आचारांग में निम्न प्रकार का पानी बतलाया है–उत्स्वेदिम, संस्वेदिम, तंडुलोदक, तुणोदक, तिलोदक, जवोदक, आयाम, सोवीर, शुद्धविकट, अंबय, अंबाडक, कविठ, कपित्थ, मउलिंग, मातुलिंग, द्राक्ष, दाडिम, खजुर, नालिकेर, कयर, बोरजल, आमलग और चिंचाका पानी । इनमें से प्रथम के नव तो यहां पर भी कहे हुए हैं । चातुर्मास रहे हुए एकान्तरे उपवास करनेवाले साधु को तीन प्रकार का पानी कल्पता है । जो इस प्रकार है– उत्स्वेदिम–आटा वगैरह से खरड़े हुए हाथों के धोवन का पानी, संस्वेदिम–पत्ते वगैरह उबल कर ठंडे पानी द्वारा जो पानी सिंचन किया जाता है और चावलों के धोवन का पानी । चातुर्मास रहे हुए नित्य छट्ठ करनेवाले साधु को तीन प्रकार का पानी लेना कल्पता है, तिल के धोवन का पानी, धानों के धोवन का पानी और जौं के धोवन का पानी । चातुर्मास रहे नित्य अट्ठम करनेवाले साधु को तीन प्रकार का पानी

X सर्प सूंग जाने से उसका विष संक्रमित होता है । इसके अलावा कालातिक्रम दोष भी है ।

For Private and Personal Use Only

लेना कल्पता है, आयामा–ओसामण, सोवीर–कांजी का पानी और शुद्ध विकट गरम पानी । चातुर्मास रहे अट्ठम अधिक तप करनेवाले साधु को एक गरम पानी ही लेना कल्पता है, सो भी सिक्थ ❖ रहित हो तो कल्पता है । चातुर्मास रहे अनशन करनेवाले साधु को एक गरम पानी ही लेना कल्पता है, सो भी सिक्थ रहित हो तो कल्पता है, सिक्थु सहित नहीं और वह भी छाना हुआ हो, परन्तु तृण आदि लगने से बिन छाना न कल्पे, सो भी परिमित कल्पे, सो भी कुछ कम लेना परन्तु बहुत कम भी नहीं क्यों कि उससे तृष्णा विराम नहीं पाती ।25।

दशवां चातुर्मास रहे दत्ति की संख्या– अभिग्रह करने वाले साधु को भोजन की पांच दत्ति और पानी की पांच दत्ति, या भोजन की चार दत्ति और पानी की पांच दत्ति अथवा भोजन की पांच दत्ति और पानी की चार दत्ति लेना कल्पता है । थोड़ा या अधिक जो एक दफा दिया जाता है उसे दत्ति कहते हैं । उसमें नमक की एक चुकटी प्रमाण भोजनादि ग्रहण करते हुए एक दत्ति समझना चाहिये । क्यों कि प्रायः नमक बहुत ही कम लिया जाता है, यदि उतने ही प्रमाण में वह भात पानी ग्रहण करे तो वह दत्ति गिनी जाती है । पांच यह उपलक्षण है, इससे चार, तीन, दो, एक, छह या सात, जितना अभिग्रह किया हो उस प्रकार कहना । सारे सूत्र का यह भाव है कि भात पानी की जितनी दत्ति रक्खी हों उतनी ही उसे कल्पती हैं, परन्तु परस्पर

❖ सिक्थ – आटे, चावल अन्य अन्नादि का अंश मात्र ।

समावेश करना नहीं कल्पता । एवं दत्ति से अधिक लेना भी नहीं कल्पता । उस दिन उसे उतने ही भोजन से रहना कल्पता है, परन्तु आहार पानी के लिए गृहस्थ के घर उसे दूसरी दफा जाना नहीं कल्पता ।26।

ग्यारवां चातुर्मास रहे हुए साधु साध्वियों को आगे कथन किये स्थानों में भिक्षार्थ जाना नहीं कल्पता । शय्यातर-उपाश्रय के मालिक का घर और दूसरे छः घर त्यागने चाहियें । क्यों कि वे नजदीक होने से साधु के गुणानुरागी होने के द्वारा उद्गमादि दोष की संभावना होती है । किसको जाना न कल्पे ? निषिद्ध घर से पीछे लौटनेवाले साधु को न कल्पे, अर्थात् निषिद्ध किये घर से उसे दूसरी जगह जाना चाहिये यह भाव है । यहां भिक्षा के लिए जाने में बहुवचन के बदले एक वचन उपयुक्त किया है, पर बहुतपन इस प्रकार दिखलाते हैं । सात घर में मनुष्यों से भरपूर जीमन हो तो वहां जाना नहीं कल्पता । यहां अर्थ में सूत्रकार के जुदे जुदे भात हैं । एक आचार्य कहते हैं कि निषिद्ध घर से अन्यत्र जाते हुए साधुओं को अपने जीवन में उपाश्रय से लेकर सात घर तक भिक्षा के लिए जाना नहीं कल्पता । दूसरे कहते हैं कि निषेध किये घर से दूसरी जगह जाते हुए साधुओं को अपने जीवन में उपाश्रय से लेकर पहले सात घर भिक्षा कि लिए जाना नहीं कल्पता । यहां दूसरे मत में उपाश्रय से शय्यातर और दूसरे पहले सात घर त्यागना यह भाव है ।27।

बारहवां चातुर्मास रहे पाणहपात्री जिनकल्पी आदि साधु को ओस, धुंध एसी वृष्टिकाय-अप्काय पड़ने पर गृहस्थ के घर भात पानी के लिए जाना आना नहीं कल्पता ।28। चातुर्मास रहे करपात्री जिनकल्पी आदि

साधु को अनाच्छादित जगह में भिक्षाग्रहण करके आहार करना नहीं कल्पता । अनाच्छादित स्थान में आहार करते हुए यदि अकस्मात् वृष्टि पड़े तो भिक्षा का थोड़ा हिस्सा खा कर और थोड़ा हाथ में ले कर उसे दूसरे हाथ से ढक कर हृदय के आगे ढक रखे या कक्ष (बगल) में ढक रखे, इस प्रकार कर के गृहस्थ के आच्छादित स्थान तरफ जावे या वृक्ष के मूल तरफ जावे कि जिस जगह उस साधु के हाथ पर पानी के बिन्दु विराधना न करें या न पड़ें । यद्यपि जिनकल्पी आदि कुछ कम दश पूर्वधर होने से प्रथम से ही वृष्टि का उपयोग कर लेते हैं इससे आधा खाने पर उठना पड़े यह संभवित नहीं है तथापि छद्मस्थता के कारण कदाचित् अनुपयोग भी हो जावे । कथन किये अर्थ का ही समर्थन करते हुए कहते हैं कि चातुर्मास रहे पाणिपात्र साधु को कुछ भी पानी बिन्दु उस पर पड़े तो उस जिनकल्पी आदि को गृहस्थ के घर भात पानी को जाना आना नहीं कल्पता । यह करपात्रियों का विधि कहा, अब पात्र रखनेवाले साधुओं का विधि कहते हैं ।

चातुर्मास रहे पात्रधारी स्थविरकल्पी आदि साधु को अविच्छिन्न धारा से वृष्टि होती हो अथवा जिसमें वर्षाकाल –वर्षाकाल में ओढने का कपड़ा या छप्पर की लौती पानी से टपकाने लगे या कपड़े को भेदन कर पानी अन्दर के भाग में शरीर को भिगोएवे तब गृहस्थ के घर भात पानी के लिए आना नहीं कल्पता । यहां अपवाद कहते हैं कि –उस स्थविरकल्पी को यदि अन्तर अन्तर से थम थम कर वृष्टि होती हो तब या अन्दर सूत का वस्त्र और ऊपर उनका वस्त्र इन दोनों से लिपटे हुए स्थविरकल्पी को थोड़ी वृष्टि में गृहस्थ के घर भात

पानी के लिए जाना आना कल्पता है । इस अपवाद मे भी तपस्वी या भूख न सहन करनेवाले साधु भिक्षा के लिए हर एक अगली वस्तु के अभाव में ऊनके, बालों के, घास के या सूत के कपड़े से एवं तालपत्र या पलास के छत्र द्वारा वेष्टित होकर भी आहार लेने जावे । चातुर्मास रहे साधु साध्वियों को गृहस्थ के घर भिक्षा लाभ की प्रतिज्ञा से पहले यहां मुझे मिलेगा ऐसी बुद्धि से गोचरी गये साधु के थम थम कर पानी पड़े तों आरामगुह के नीचे, (बगीचे आदि में) सांभोगिक-अपने या दूसरों के उपाश्रय नीचे, उसके अभाव में या विकटगृह -जहां पर ग्रामलोग बैठते हैं चौपाल के नीचे, या वृक्ष के मूल में या निर्जल कैर आदि के मूल नीचे जाना कल्पता है । उसमें विकटगृह, वृक्षमूल आदि में रहे हुए साधु को उसके आने से पहले रांधना शुरू किया भात वगैरह और बाद में रांधनी शुरू की हुई मसूर की, उड़द की या तेलवाली दाल हो तब उसे भात वगैरह लेना कल्पता है परन्तु मसूरादि की दाल लेना नहीं कल्पता । इसका यह भाव है कि-साधु के आने से पहले ही गृहस्थों ने अपने लिए जो रांधना शुरू किया हो वह उसे कल्पता है, क्यों कि इससे उसे दोष नहीं लगता, और साधु के आने पर जो रांधना प्रारंभ किया हो तो वह पश्चादायुक्त होता है अतः उससे उद्गमादि दोष की संभावना होती है । इसी कारण वह लेना नहीं कल्पता । इसी तरह शेष रही दोनों बातें जान लेना चाहिये । उसके घर पर साधु के आने से पहले प्रथम ही मसूरादि की दाल पकानी शुरू कर दी हो और चावलादि बाद में पकाने रक्खे हों तो उस साधु को वह दाल ही कल्पती है परन्तु चावल नहीं कल्पते ।

For Private and Personal Use Only

गृहस्थ के घर पर यदि दोनों ही वस्तु साधु के आने से पहले पकानी रक्खी हो तो दोनों ही लेनी कल्पती हैं । जो चीज उसके आने से पहले रांधनी शुरू की हो वह उस साधु को कल्पती है और उसके आने पर रांधने रक्खी हो सो उसे नहीं कल्पती । चातुर्मास रहे साधु या साध्वी गृहस्थ के घर पर भिक्षा लेने के लिए गया हुआ हो उस वक्त यदि रह कर वारिस पड़ती हो तो उसे आराम या वृक्ष के मूल नीचे जाना कल्पता है, परन्तु पहले ग्रहण किये भात पानी सहित भोजन का समय उलंघन करना नहीं कल्पता । यदि उस वक्त वृष्टि न होवे तो आराम या वृक्ष के मूल नीचे रहा हुआ साधु क्या करें ? उत्तर देते हैं–पहले उद्‌गभ आदि से शुद्ध आहार खाकर पीकर पात्र निर्लेप कर और धोकर एक तरफ पात्रादि उपकरण को रख कर (शरीर के साथ लगा कर) वर्षते वर्षात में सूर्यास्त से पहले जहां उपाश्रय हो वहां जाना कल्पता है । परन्तु वह रात्रि उसे गृहस्थ के घर पर ही निकालनी नहीं कल्पती, क्योंकि एक ले साधु को बाहर रहने से 'स्वपरसमुत्था' – अपने से और दूसरों से उत्पन्न होते बहुत से दोषों की संभावना है, एवं उपाश्रय में रहनेवाले साधु भी चिन्ता करें । चातुर्मास रहे साधु साध्वी गृहस्थ के घर भिक्षा के लिये गया हुआ हो तब यदि थम थम कर वृष्टि होती हो तो उसे आराम के नीचे यावत् वृक्ष के मूल नीचे जाना कल्पता है । अब थम थम कर वृष्टि होती हो तो आरामदि के नीचे साधु किस विधि से खड़ा रहे सो बतलाते हैं । विकटगृह वृक्षमूलादि के नीचे रहा हुआ साधु एक साध्वी के साथ नहीं रह सकता । वैसे स्थान में एक साधु को दो साध्वियों के साथ रहना नहीं कल्पता ।

For Private and Personal Use Only

दो साधु और एक साध्वीं को साथ रहना नहीं कल्पता । दो साधु और दो साध्वियों को साथ रहना नहीं कल्पता । यदि वहां कोई पांचवां क्षुल्लक–छोटा चेला या चेली हो वह स्थान दूसरों की दृष्टिका विषय हो–दूसरे देख सकते हों अथवा वह स्थान बहुत से द्वारवाला हो तो साथ रहना कल्पता है । भावार्थ यह है कि – एक साधु को एक साध्वीं के साथ रहना नहीं कल्पता, एक साधु को दो साध्वियों के साथ रहना नहीं कल्पता, दो साधुओं को एक साध्वीं के साथ रहना नहीं कल्पता । एवं दो साधुओं को दो साध्वियों के साथ रहना नहीं कल्पता । यदि कोई लघु शिष्य या शिष्या पांचवां साक्षी हो तो रहना कल्पता है । अथवा वृष्टि विराम न पाने पर अपना कार्य न छोड़नेवाले लुहारादि की दृष्टि से या उस घर के किसी भी दरवाजे में किसी पांचवें के बिना भी रहना कल्पता है । चातुर्मास रहे साधु को गृहस्थ के घर भिक्षा लेने के लिए आगे कथन करते हैं उस प्रकार रहना न कल्पे । वहां एक साधु के एक श्राविका के साथ रहना न कल्पे इस तरह चौभंगी होती है । यदि यहां पर कोई भी पांचवां स्थविर या स्थविरा साक्षी हो तो रहना कल्पता है । या अन्य कोई देख सके ऐसा स्थान हो या बहुत दरवाजे वाला वह स्थान हो तो साथ रहना कल्पता है । इसी प्रकार साध्वीं और गृहस्थ की चतुर्भंगी समझना चाहिये । यहां पर साधु का एकाकीपन बतलाया है । किसी कारण साधु को एकला जाना पड़े उसके लिए समझना चाहिये । सांघाटिक में अन्य किसी साधु को उपवास हो या असुख होने से ऐसा बनता है । अन्यथा उत्सर्ग मार्ग में तो साधु दो और साध्वीं तीन साथ विचरें ऐसा समझना चाहियें ।

For Private and Personal Use Only

चौदहवां चातुर्मास रहे साधु साध्वियों को 'मेरे लिए तुम लाना' जिसको ऐसा न कहा हो उस साधु को 'तेरे योग्य मैं लाऊंगा' ऐसा किसी को मालुम किया है । ऐसे साधु को निमित्त अशन आदि आहार नहीं कल्पता । हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया है ? शिष्य की ओर से यह प्रश्न होने पर गुरू कहते हैं ''जिसको मालूम नहीं किया गया ऐसे साधु के लिए आहार लाया गया हो वह यदि इच्छा होवे तो आहार करे और यदि इच्छा न हो तो आहार न करे और उलटा कहे-किसने कहा था जो तू यह लाया है ?'' यदि इच्छा बिना ही दाक्षिण्यता से वह खावे भी तो अजीर्णादि से दुःख पैदा हो और चातुर्मास में कभी परठना पड़े तो शुद्ध स्थान की दुर्लभता के कारण दोषापत्ति होवे इसलिए पूछ कर ही लाना चाहिये ।

पन्द्रहवां चातुर्मास रहे साधु साध्वियों को पानी से निचड़ते शरीर से तथा थोड़े पानी से भीजे हुए शरीर से अशनादि चार प्रकार का आहार करना नहीं कल्पता । हे पूज्य । ऐसा किस लिए ? शिष्य का यह प्रश्न होने पर गुरू कहते हैं कि जिसमें लंबे काल में पानी सूके ऐसे पानी रहने के स्थान जिनेश्वरों ने सात बतलाये हैं-दो हाथ, हाथों की रेखायें, नख, नखों के अग्रभाग, भमर-आंखों के उपर के बाल, दाढी और मूछ । जब यह यों समझे कि मेरा शरीर पानी रहित हो गया है, सर्वथा सूक गया है तब अशनादि चार प्रकार का आहार करना कल्पता है ।

सोलहवां चातुर्मास रहे साधु साध्वियों को जो कथन करेंगे उन आठ सूक्ष्मो पर ध्यान देना चाहिये । अर्थात्

श्री कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद ।।151।।

नौवा व्याख्यान

छद्मस्थ साधु साध्वियों को बारंबार जहां जहां वे स्थान करें वहां वहां पर सूत्र के उपदेश द्वारा जानने चाहिये । आंखों से देखना है और देख तथा जान कर परिहरने योग्य होने से विचारने योग्य हैं । वे आठ सूक्ष्म इस प्रकार हैं- सूक्ष्म जीव, सूक्ष्म पनक फुल्लि, सूक्ष्म बीज, सूक्ष्म हरित, सूक्ष्म पुष्प, सूक्ष्म अंडे, सूक्ष्म बिल और सूक्ष्म स्नेह-अप्काय । वे कौनसे सूक्ष्म जीव हैं ? ऐसा शिष्य का प्रश्न होने पर गुरू कहते हैं-तीर्थकरें और गणधारों ने पांच प्रकार के -वर्ण के सूक्ष्म जीव कहे हैं- काले, नीले, लाल, पीले, और धौले(सफेद) एक वर्ण में हजारों भेद और बहुत प्रकार के संयोग हैं । वे सब कृष्ण आदि पांचों वर्ण में अवतरते हैं-समाविष्ट होते हैं । अणुद्धरी नामक कुंथुवे की जाति है जो स्थिर रही हुई, हलनचलन न करती हो उस वक्त छद्मस्थ साधु साध्वियों को तुरन्त नजर नहीं आती और जो अस्थिर हो, जब चलती हो तब छद्मस्थ साधु साध्वीयों को नजर आती है । इस लिए छद्मरूप साधु-साध्वियों को उन सूक्ष्म प्राणों -जीवों के बारंबार जानना, देखना और परिहरना चाहिये । क्योंकि वे चलते हुए ही मालूम होते हैं किन्तु स्थिर रहे मालूम नहीं होते । दूसरे सूक्ष्म पनक कौनसी है ? शिष्य के ऐसा प्रश्न करने पर गुरू कहते हैं कि सूक्ष्म पनक पांच प्रकार का कहा है, जो इस तरह है - काला, नीला, लाल, पीला और सफेद । सूक्ष्म पनक एक जाति है जिस में वे जीव उत्पन्न होते है । जहां पर वह सूक्ष्म पनक पैदा होतीं है वहां पर वह उसी द्रव्य के समान वर्णवाली होते है । वह पनक की जाति छद्मस्थ साधु साध्वीयों को जाननी, देखनी और परिहरनी चाहिये । वह प्रायः शरद् ऋतु

For Private and Personal Use Only

में जमीन काष्ठादि के अन्दर पैदा होती है और जहां पैदा होती है वहां वह उसी द्रव्य के वर्ण-रंगवाली होती है। यह प्रसिद्ध है। अब और कौन से सूक्ष्म हैं ? ऐसा शिष्य के पूछने पर गुरू कहते हैं कि अन्य सूक्ष्म पांच प्रकार की होती है जो इस तरह है काला, नीला, लाल, पीला और सफेद कणिका याने नखिका-नाखूनों के दोनों तरफ की चमड़ी। उसके समान वर्णामाला ही दूसरा सूक्ष्म कहा है जो छद्मस्थ साधु साध्वियों की जानने, देखने और परिहरने चाहिये। अब सूक्ष्म हरित कहते हैं, सूक्ष्म हरित पांच प्रकार की कही है, काली, लीली, लाल, पीली और सफेद। सूच्म हरित यह है कि जो पृथ्वी समान वर्णवाली प्रसिद्ध है। जो साधु-साध्वियों को जाननी, देखनी और परिहरनी चाहिये। यह सूक्ष्म हरित जानना चाहिये। वह अल्प संघयण-कम शरीर शक्ति वाली होती है इस कारण वह थोडे ही समय में नष्ट हो जाती है। अब वे सूक्ष्म पुष्प कहते हैं-सूक्ष्म पुष्प पांच प्रकार के होते हैं, काले से लेकर सफेद वर्ण तक। वृक्ष के समान वर्ण वाले वे सूक्ष्म पुष्प प्रसिद्ध ही हैं जो छद्मस्थ साधु साध्वियों की जानने, देखने और परिहर ने चाहिये। ये सूक्ष्म पुष्प समझना। अब शिष्य के पूछने पर सूक्ष्म अंडे बतलाते हैं। सूक्ष्म अंडे पांच प्रकार के होते हैं-मद्युमक्खी खटमल आदि के अंडे वे उद्दंशांड, लूता-किरली के अंडे वे उत्कलिकांड, पिपीलि का चींटियों के अंडे वे पिपीलिकांडा, हलिका-छपकी के अंडे वे हलिकांड और हल्लोहविया जो जुदी जुदी भाषाओं में अहिलोडी, सरटी और काकिडी कहलाती है उसके अंडे वे हल्लोहलिकांड हैं। जो साधु साध्वियों को जानने, देखने

और परिहर ने चाहियें । ये सूक्ष्म अंडे समझना चाहिये । लयन जीवों का आश्रयस्थान । शिष्य के पूछने पर गुरू उसके बतलाते हैं–सूक्ष्म लयन–बिल पांच प्रकार के हैं उत्तिंग गर्द भाकार के जीवों के रहने का स्थान, भूमि पर बनाया हुआ उनका जो घर है उसे उत्तिंगलयन कहते हैं । भृगु–सूकीं हुई जमीन की रेखा पानी सूक जाने पर क्यारे आदि मे जो तरड़े पड़ जाती हैं वह भृगुलयन कहलाता है । सरल बिल–सीधा बिल वह सरल लयन समझना चाहिये । तालवृक्ष के मूल के आकारवाला नीचे चौड़ा और ऊपर सूक्ष्म ऐसा जो है वह तालमुख शंबुकावर्त्त–भ्रमर का घर होता है । ये पांचों छद्मस्थ साधु साध्वियों को जानने, देखने और परिहर ने चाहियें । ये सूक्ष्मबिल जानना चाहिये । अब शिष्य के पूछने पर गुरू स्नेह अप्काय के भेद बतलाते हैं । अवश्याय ओस जो आकाश से रात्रि के समय पानी पड़ता है । हिम तो प्रसिद्ध ही है । महिका–धूमरी । ओले प्रसिद्ध हैं और भींनी जमीन में से निकले हुए तृण के अग्र भाग पर बिन्दुरूप जल जो यव के अंकुरादि पर देख पड़ते हैं । ये पांच प्रकार के अप्काय साधु साध्वियों को जानने, देखने और परिहर ने चाहिये । ये सूक्ष्म स्नेह समझ लेना चाहिये ।

सतरहवां चातुर्मास रहे साधु भातपानी के लिये गृहस्थ के घर जाना आना चाहे तो उन्हें पूछे सिवाय जाना आना नहीं कल्पता । किसको पूछना सो कहते हैं । सूत्रार्थ के देनेवाले आचार्य को । सूत्र पढ़ाने वाले उपाध्याय को । ज्ञानादि के विषय में शिथल होते हुए को स्थिर करनेवाले और उद्यम करनेवालों को, उत्तेजन देनेवाले

For Private and Personal Use Only

स्थवीर को । ज्ञानादि के विषय में प्रवृत्ति करनेवाले प्रवर्तक को । जिसके पास आचार्य सूत्रादि का अभ्यास करते हैं उस गणि को । तीर्थंकर के शिष्य गणधर को । जो साधुओं को लेकर बाहर अन्य क्षेत्रों में रहते हैं, गच्छ के लिए क्षेत्र, उपधि की मार्गणा आदि में प्रधावन वगैरह करनेवाले–उपधि आदि ला देनेवाले और सूत्र तथा अर्थ दोनों को जाननेवाले गणावच्छेदक को । अथवा अन्य साधु जो वय और पर्याय से लघु भी हो परन्तु जिसको गुरूतया मान कर विचरते हैं उसको । उस साधु को आचार्य यावत् जिसे गुरूतया मानकर विचरता हो उसे पूछकर जाना कल्पता है । किस तरह पूछना ? सो कहते हैं–हे पूज्य ! यदि आप की आज्ञा हो तो मैं भात पानी के लिए गृहस्थ के घर जाना आना चाहता हूं । यदि ऐसा पूछने पर आचार्यदि आज्ञा देवे तो भात पानी के लिए गृहस्थ के घर जाना आना कल्पता है । आज्ञा न देवें तो नहीं कल्पता । शिष्य पूछता है कि हे पूज्य ! ऐसा क्यों कहा है ? गुरू कहते है कि आचार्य आदि विघ्न के परिहार को जानते हैं ।

इसी प्रकार जिनचैत्य में जाना, निहार भूमि–दिशा फराकत जाना, अथवा उच्छास आदि वर्ज कर लीपना, सीना, लिखना आदि जो कार्य हो सब पूछ कर करना । इसी तरह कभी भिक्षादी के लिए या बिमारादि के कारण दूसरे गांव जाना पड़ें तो पूछ कर जाना कल्पे । अन्यथा वर्षाऋतु में दूसरे गांव जाना सर्वथा अनुचित है ।47।

चातुर्मास रहे साधु यदि कोई दूसरी विगय खाना इच्छे तो आचार्य यावत् जिस गुरू मान कर विचरता

है उसे पूछे बिना विगय खाना नहीं कल्पता । आचार्य या जिसे गुरू मान कर विचरता हैं उसे पूछ कर विगय खाना कल्पता है । किस तरह पूछना सो कहते हैं-हे पूज्य ! यदि आप की आज्ञा हो तो अमुक विगय इतने प्रमाण में और इतने समय तक खाना इच्छता हूं । यदि वह आचार्यदि उसे आज्ञा दें तो वह विगय उसे कल्पती है अन्यथा नहीं । शिष्य प्रश्न करता है कि-हे पूज्य ! ऐसा क्यों कहा गया है ? गुरू उत्तर देते हैं कि आचार्यादि लाभालाभ जानते हैं ।46।

चातुर्मास रहे साधु वात, पित्त और कफादि संनिपात संबन्धी रोगों की चिकित्सा कराना चाहे तो आचार्यादि से पूछ कर कराना कल्पता है । पहले के समान हीं सब कुछ समझना चाहिये । वह चिकित्सा आतुर, वैद्य, प्रतिचारक और भैषज्यरूप चार प्रकार की है । प्रत्येक के फिर चार -चार भेद कहे हैं । दक्ष, शास्त्रार्थ को जाननेवाला, दृष्टकर्मा और शुचि ये चार प्रकार भिषक् के हैं । बहुकल्प, बहुगुण, संपन्न और योग्य ये चार प्रकार औषध के हैं । अनुरक्त, शुचि, दक्ष और बुद्धिमान् ये चार प्रकार प्रतिचारक के हैं । तथा आढय-धनवान्, रोगी, भिषक् के वश और ज्ञायक-सत्यवान् ये चार प्रकार रोगी के हैं ।49।

चातुर्मास रहे साधु यदि कोई प्रशस्त, कल्याणकारी, उपद्रव को हरनेवाला, धन्य करनेवाला, मंगल करनेवाला, शोभा देनेवाला और महाप्रभावशाली तपकर्म अंगीकार करके विचरना चाहे तो गुरू आदिको पूछ कर करना कल्पता है । इत्यादि पहले जैसे ही सब कहना चाहिये ।50।

For Private and Personal Use Only

चातुर्मास रहे साधु जो चाहे वह कैसा साधु ? अपश्चिम याने चरम–अन्तिम मरण सो अपश्चिम मरण, परन्तु प्रतिक्षण आयु के दलिक अनुभव करने रूप आवीचि मरण नहीं । अपश्चिम मरण ही जिसमें अन्त है वह अपश्चिम मरणान्तिकी, ऐसी शरीर, कषायादिको कृश करने वाली संलेखना, द्रव्य भाव भेदों से भिन्न भेदवाली । 'चत्तारि विचित्ताइं' इत्यादि । उसका जोषण सेवन से संसेखना की सेवा उससे शरीर जिसने कृश कर डाला है, अर्थात् अपश्चिम मरणान्तिकी संलेखना की सेवा से–सेवन से जिसने शरीर को अतिकृश कर डाला है और इसी कारण जिसने भातपानी का भी प्रत्याख्यान कर लिया है, अर्थात् जिसने पादोपगम अनशन किया है और
इससे जीवित काल को न चाहनेवाला साधु इस प्रकार करने की इच्छा रखता हुआ गृहस्थ के घर में जाने आने अशनादिका आहार करने मल, मूत्र परठने, स्वाध्याय करने तथा धर्मजागरिका जागने याने आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थानविचय ये चार भेदरूप धर्मध्यान के विधानादि द्वारा जागने को इच्छे तो गुरू आदि को पूछे सिवाय कुछ भी करना नहीं कल्पता । सब कुछ पहले जैसे ही समझना चाहिये । गुरू की आज्ञा से ही करना कल्पता है ।51।

अठारहवां चातुर्मास रहे साधु वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण एवं अन्य उपधि तपाने के लिए एक दफा धूप में सुकाने के लिए, न तपाने से कुत्सापनक आदि दोषोत्पत्ति का संभव होने से बारंबार तपाना इच्छे तब एक साधु या अनेक साधुओं को मालूम किये बिना उसे गृहस्थ के घर भातपानी के लिए जाना आना या अशनादि

का आहार करना, जिनमंदिर जाना, शरीरचिन्ता आदि के लिए जाना, स्वाध्याय करना, कायोत्सर्ग करना एवं एक स्थान में आसन कर के रहना नहीं कल्पता । यदि वहां पर नजदीक में कहीं पर एक या अनेक साधु रहे हुए हों तो उसे इस प्रकार कहना चाहिये-हे आर्य ! जब तक मैं गृहस्थ के घर जाउं आउं, यावत् कायोत्सर्ग करूं अथवा वीरासन कर एक जगह रहूं तब तक इस उपधि को आप संभाल रखना । यदि वह वस्त्रों को संभाल रखना मंजूर करे तो उसे गृहस्थ के घर गोचरी के निमित्त जाना, आहार करना, जिनमंदिर जाना, शरीर चिन्ता दूर करने जाना, स्वाध्याय या कायोत्सर्ग करना एवं वीरासन कर एक स्थान पर बैठना कल्पता है । यदि वह मंजूर न करे तो नहीं कल्पता ।52।

19 चातुर्मास में रहे साधु साध्वियों को नहीं कल्पे । क्या न कल्पे ? सो बतलाते हैं - जिसने शय्या और आसन ग्रहण न किया हो उसे 'अनभिगृहीतशय्यासनिकः' कहते हैं । ऐसे साधु को जिसने शय्यासन ग्रहण न किया हो रहना नहीं कल्पता । अर्थात् वर्षाकाल में उपाश्रय में पट्टा, फलक आदि ग्रहण कर के रहना चाहिए । अन्यथा शीतल भूमि में सोने बैठने से कुंथु आदि जीवों की विराधना होने का संभव है और उससे कर्म एवं दोष का उपादान कारण होता है । यह अनभिगृहीतशय्यासनिकत्व समझना चाहिये ।।53। शय्या आसन ग्रहण करना । एक हाथ ऊंची और निश्चल शय्या रखना । ईर्या आदि समितियों में उपयोग रखनेवाले तथा अपनी वस्तुओं की बारंबार प्रतिलेखना करने वाले साधु को सुख पूर्वक संयम आराधना

For Private and Personal Use Only

होती है । पूर्वकाल में शय्या आसन चातुर्मास में साधुओं को ग्रहण करने का जो रीतरिवाज था आजकल वह न होने से और ग्रंथ विस्तृत हो जाने के भय से यह विषय सविस्तर नहीं लिखा है ।54।

बीसवां चातुर्मास रहे साधु–साध्वियों को स्थंडिल–शौच और मात्रालघुनीति के लिए तीन जगह कल्पती है । जो सहन न कर सके अर्थात् हाजत के वेग को न रोक सके उनको तीन जगह अन्दर रखनी चाहियें । जो सहन कर सकता है उसको तीन जगह बाहर रखनी चाहियें । यदि दूर जाने में हरकत आवे तो मध्यभूमि रखना चाहियें । उसमें भीं हरकत आवे तो नजदीक की भूमि रखना । इस प्रकार आसन, मध्य और दूर ये तीन तरह की भूमि हैं, उन्हें प्रतिलेखना चाहिये । जिस प्रकार चातुर्मास में किया जाता है उस प्रकार शरदी और गरमियों में नहीं किया जाता इस लिए हे पूज्य ! इसका क्या कारण है ? ऐसा शिष्य का प्रश्न होने पर गुरू कहते हैं कि–चातुर्मास में जीव शंखनक, इंद्रगोप, क्रमी आदि वनस्पति के नये उत्पन्न हुए अंकुर, पनक, फूलण एवं बीज में से उत्पन्न हुई हरित ये तमाम अधिक पैदा होती हैं, इसी कारण चातुर्मास में इनके लिए खास कथन किया गया है ।55।

इक्कीसवां चातुर्मास रहे साधु साध्वी को तीन मात्रा पात्र रखने कल्पते हैं । एक स्थंडिल के लिए मात्रा के लिये दूसरा और तीसरा श्लेष्म के लिए । पात्र न होने से वक्त बीत जाने के कारण शीघ्रता करते हुए आत्मविराधना तथा वर्षा होती हो तो बाहर जाने में संयमविराधना होती है ।56।

For Private and Personal Use Only

बाइसवां जिनकल्पी को निरंतर और स्थविरकल्पी को चातुर्मास में अवश्यमेव लोच कराना चाहिये । इस वचन से चातुर्मास रहे साधु साध्वी को आषाढ चातुर्मास के बाद लंबे केश तो दूर रहे परन्तु गाय के रोम जितने भी केश रखने नहीं कल्पते । इस लिए वह रात्रि भाद्रपद शुक्ला पंचमी की रात्रि और वर्तमान में शुक्ला चतुर्थी की रात्रि उल्लंघन न करनी चाहिये । उस से पहिले ही लोच कराना चाहिये । यह भावार्थ है कि यदि समर्थ हो तो चातुर्मास में सदैव लोच करावे और यदि असमर्थ हो तो भादवा सुदि चौथ की रात्रि तो उल्लंघन करनी ही नहीं चाहिये । पर्युषणा पर्व में साधु साध्वी को निश्चय ही लोच किये बिना प्रतिक्रमण करना नहीं कल्पता, क्यों कि केश रखने से अप्काय की विराधना होती है । तथा उसके संसर्ग से जुवों की उत्पत्ति होती हैं , एवं केशों में खुजली करते हुए उन जूवों का वध होता है या मस्तक में नाखून लगता है । यदि उस तरह से या कैंची से कतरवावे या मुंडन करावे तो आज्ञा भंगादि दोष लगता है, संयम और आत्म विराधना होती है । जूवों का वध होता है, नापित (नाई) पश्चात् ❁ कर्म करता है और शासन की अपभ्राजना होती है इसलिए लोचन श्रेष्ठ है । यदि कोई लोच न सहन कर सकता हो या लोच कराने से बुखार आदि आ जाता हो, या बालक होने से लोच समय रोने लगता हो या इससे धर्मत्याग देवे तो उसे लोच न करना चाहिये । साधु को उत्सर्ग से लोच करना चाहिये और अपवाद में बाल, बीमार आदि साधु को मुंडन

❁ नापित नाई हजामत किये बाद जो हाथ, वस्त्र, शस्त्रादि धोवे घिसे उसे पश्चात्कर्म कहते है ।

For Private and Personal Use Only

कराना चाहिये । उसमें प्रासुक जल से सिर धो कर प्रासुक पानी से नापित के हाथ भी घुलाना चाहिये । जो उस तरह से मुंडन कराने में असमर्थ हो या जिसके सिर में फुन्सी फोड़े निकले हुए हों उसको कैंची से केश कतरवाने कल्पते हैं । जो लोच सहन कर सके उसे महिने महिने बाद मुंडन कराना चाहिये । यदि कैंची से कतरावे तो पंद्रह पंद्रह दिन के बाद गुप्त रीति से कतरवाना चाहिये । मुंडन कराने और कतरवाने का प्रायश्चित निशिथसूत्र में कथन किये यथासंख्य लघु गुरुभास समझना चाहिये । लोच 6 महीने करना चाहिये । परन्तु स्थविरकल्पी साधुओं में स्थविर जो वृद्ध हो उसे बुढ़ापे से जरजरित हो जाने के कारण तथा नेत्रों का रक्षण करने के लिए एक वर्ष के बाद लोच कराना चाहिये और तरुण को चार मास बाद लोच करना चाहिये ।57।

तेइसवां चातुर्मास रहे साधु साध्वी को पर्युषणा बाद क्लेश पैदा करनेवाला वचन बोलना नहीं कल्पता । जो साधु या साध्वी क्लेशकारी वचन बोले उसे ऐसा कहना चाहिये । हे आर्य ! तुम आचार बिना बोलते हो क्योंकि पर्युषणा के दिन से पहले या उसी दिन बोले हुए क्लेशकारी वचन के लिए तो तुमने पर्युषणा पर्व में क्षमापना की हैं । अब जो पर्युषणा के दिन से पहले या उसी दिन बोले हुए क्लेशकारी वचन के लिए तो तुमने पर्युषणा पर्व में क्षमापना की है । अब जो पर्युषणा के बाद तुम फिर क्लेशकारी वचन बोलते हो यह अनाचार है । इस प्रकार निवारण करने पर भी जो साधु साध्वी क्लेश उत्पन्न करनेवाले वचन पर्युषणा बाद बोले तो उसे पनवाड़ी के पान की तरह संघ बाहिर करना चाहिये । जैसे पनवाड़ी सड़े हुए पान को दूसरे पान के नष्ट होने के भय से निकाल देता है, उसी प्रकार अनन्तातुबंधी क्रोधवाला साधु भी विनष्ट ही है, ऐसा समझ कर उसे दूर कर देना उचित

है । एक और ब्राह्मण का दृष्टान्त दिया है-खेर नगरवासी रूद्र नामक एक ब्राह्मण वर्षकाल में खेत बोने के लिए हल लेकर खेत में गया । हल चलाते हुए उसका गलिया बैल बैठ गया । हांकनेवाले साटे या चाबुक से मारने पीटने पर जब वह न उठा तब तीन क्यारों के मट्टी के डलों से मारते मारते उस मट्टी के डलों से उसका मुख ढक गया और श्वास रूक जाने से वह मर गया । फिर वह ब्राह्मण पश्चाताप करता हुआ महास्थान पर जा कर अपना वृत्तान्त कहने लगा । दूसरे ब्राह्मणों ने पूछा कि तू अब भी शान्त हुआ या नहीं ? उसने कहा कि मुझे अभी तक भी शान्ति नहीं हुई । तब ब्राह्मणों ने उसे अपनी जाति से बाहिर कर दिया । इसी प्रकार वार्षिक पर्व में कोष उपशान्त न होने के कारण जिस साधु साध्वी ने परस्पर क्षमापना न की हो उसे संघ बाहिर करना योग्य है । उपशान्त मे उपस्थित हुआ हो उसे मूल प्रायश्चित देना उचित है ।57।

चोविसवां चातुर्मास रहे साधु-साध्वी से यदि पर्युषणा के दिन ऊंचे शब्दवाला तथा कटुतापूर्ण-जकार मकार आदि रूप कलह होवे तो छोटा बड़े को खमावे । यदि बड़े ने अपराध किया हो तथापि व्यवहार से छोटा बड़े को खमावे । यदि धर्म न परिणमने के कारण छोटा बड़े को न खमावे तो क्या करना ? सो कहते हैं- बड़ा भी छोटे को खमावे, आप खमे और दूसरे को खमावे, आप उपशान्त होवे और दूसरों को उपशान्त करे । सुमति, पूर्वक, रागद्वेष के अभावपूर्वक सूत्र और अर्थ सम्बन्धी संपृच्छना या समाधि प्रश्न विशेष होने चाहियें। जिस के साथ कटुतापूर्ण कलह हुआ हो उसके साथ निर्मल मन से शान्ति होवे ऐसी अनेक शास्त्रों संबन्धी

For Private and Personal Use Only

बातें होनी चाहियें । अब उन दोनों में यदि एक खमावे और दूसरा न खमावे तो जो उपशान्त होता है, खमाता है वह आराधक होता है और जो नहीं खमाता, नहीं उपशमता वह विराधक होता है इस लिए आत्मार्थी को चाहे वह बड़ा हो या छोटा स्वयं उपशमित होना चाहिये । हे पूज्य ! ऐसा क्यों कहा ? शिष्य का यह प्रश्न होने पर गुरू कहते हैं कि-जो श्रमणत्व-साधुपन है वह उपशम प्रधान है । यहां पर दृष्टांत देते है-दश मुकुटबद्ध राजाओं से सेवित सिंधु सौवीर देश का अधिपति उदयन राजा-विद्युन्माली देवता से मिली हुई श्रीवीर प्रभु की प्रतिमा के पूजन से निरोगी हुए गंधार नामक श्रावक ने दी हुई गोलि के भक्षण करने से अद्‌भूत रूप को धारण करनेवाली सुवर्णगुलिका नामा दासी को देवाधिदेव की प्रतिमा सहित हरन करनेवाले और चौदह राजाओं से सेवित मालव देश के चंडप्रद्योत नामक राजा को देवाधिदेव प्रतिमा वापिस लाने के लिए उत्पन्न हुए संग्राम में पकड़ कर पीछे आते हुए डशपुर नगर में चातुर्मास रहा । वार्षिक पर्व के दिन राजा ने उपवास किया अतः राजा की आज्ञा से रसोइये ने भोजन के लिए चंडप्रद्योत से पूछा कि आप आज क्या खायेंगे ? इससे विष देने के भय से चंडप्रद्योत ने कहा कि-यदि तुम्हारे राजा को उपवास है तो आज मुझे भी पर्युषण होने से उपवास है, मैं भी श्रावक हूं । यह बात राजा को मालूम होने से विचारा कि 'इस धूर्त्त साधर्मिक को भी खमाये बिना मेरा वार्षिक प्रतिक्रमण शुद्ध न होगा', इस धारणा से उदयन राजा ने

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उसका सर्वस्व वापिस दे कर उसके मस्तक पर लिखाये हुए 'मेरी दासी का पति' इन अक्षरों को आच्छादन करने के लिये अपना मुकुटपट्ट देकर श्री उदयन राजा ने चंडप्रद्योत को खमाया । यहां पर उपशान्त होने के कारण उदयन राजा को आराधकपन समझना चाहिये । किसी वक्त दोनों को आराधनापन होता है । वह इस प्रकार है –

एक समय कौशांबी नगरी में सूर्य और चंद्र अपने विमानद्वारा श्रीवीर प्रभु को वन्दनार्थ आये । चंदना साध्वी दक्षता होने के कारण अस्त समय जान कर अपने स्थान पर चल गई और मृगावती सूर्य चंद्रमा के गये बाद अंधकार पसरने पर रात जान कर डरती हुई उपाश्रय आई । ईर्यापथिकी कर के सोती हुई चंदना के पैरों में पड़ कर –हे पूज्या ! मेरा अपराध क्षमा करो', यों कहने लगी । चन्दना ने कहा–हे भद्रे ! तेरे जैसी कुलीन को इतना अनुपयोग रखना योग्य नहीं है । मृगावती बोली–'महाराज' ! फिर ऐसा न होगा । यों कह कर चरणों में लेट गई और अपने अनुपयोगतारूप अपराध के लिए अपने आत्मसाक्षी अनेकविध पश्चाताप करने लगी । इधर चंदना को निद्रा आ गई थी, अपने क्षमा प्रदान के लिये भी गुरुनी को जगाने की तकलीफ देना उसने उचित न समझा । अतः उसी प्रकार चरणों में पड़े हुए अपने उस अपराध की तीव्रालोचना करते हुए मृगावती ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । दैवयोग उस समय अकस्मात् कहीं से वहां एक सर्प आ निकला । निद्रागत चंदना का हाथ संथारा से नीचे की ओर झुका था और उसी तरफ सर्प आ रहा था । मृगावती ने

For Private and Personal Use Only

चंदना का हाथ उठा कर ऊपर की और कर दीआ इससे उसकी निद्रा भंग हो गई । सर्पागमन का वृतान्त सुनाने से चंदनाने कहा–ऐसे घोरांधकार में तुमने सर्प को कैसे जाना ? अब केवलज्ञान की प्राप्ति मालूम हो जाने पर चंदनाने उस केवली के चरणों में पड़ अपने अपराध की क्षमापना करते–तीव्र पश्चाताप करते हुए केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । इस प्रकार सच्चे अन्तःकरणपूर्वक खमाते हुए दोनों को आराधना होती है, परन्तु क्षुल्लक साधु और कुंभार के जैसी भावना से मिच्छामि दुक्कडं न देना चाहिये उससे दोनों को कुछ भी आराधना नहीं होतीं हैं । वह दृष्टांत इस प्रकार है ।

एक दफा एक साधु समुदाय एक कुंभार के मकान में ठहरे हुए थे । उनमें एक क्षुल्लक–छोटा साधु भी था । वह अपनी किशोर वय के कारण कुतहूल से बहुत सी कंकरें ले कर कुंभार के नये बनाये हुए कच्चे बरतनों पर निशाना अजमाने लगा । जिस घड़े पर कंकर लगती उसमें छेद पड़ जाता था । कुंभार ने उसकी येह चेष्टा देख उसे मना किया । क्षुल्लकने अपने अपराध की क्षमापना के रूप में 'मिच्छामि दुक्कडं' कहा । कुंभार वहां से चला गया । आंख बचा कर वह फिर निशाने मारने लगा और बहुत से बरतन काने कर दिये । कुंभार ने देख कर फिर धमकाया । साधु फिर मिच्छामि दुक्कडं दे कर वैसा ही करने लगा तब फिर कुंभारने उसके जैसा ही बन कर एक कंकर उठा कर उसके कान पर रख उसको दबाया । साधु चिल्लाया और बोला छोड़ दो मुझे पीड़ा होती है । कुंभार ने मिच्छामि दुक्कडं देकर हाथ ढीला कर दिया, परन्तु फिर दबाया । फिर क्षुल्लक

For Private and Personal Use Only

चिल्लाया और बोला कि पीड़ा होती है । कुंभार ने फिर मिच्छामि दुक्कडं दिया । तब क्षुल्लक बोला-बारंबार वही काम करते हो और माफी भी मांगते हो या मिच्छामि दुक्कडं भी देते हो यह कैसा मिच्छामि दुक्कडं है ? कुंभार बोला महाराज ! जैसा आपका मिच्छामि दुक्कडं है वैसा ही मेरा भी है ।59।

25 चातुर्मास रह साधु साध्वी को तीन उपाश्रय ग्रहण करने कल्पते हैं । जंतु संसक्ति आदि के भय से उन तीन उपाश्रयों में दो उपाश्रयों को बारंबार प्रतिलेखन-साफसूफ कर रखना चाहिये । जो उपाश्रय उपभोग में आता हो उस सम्बन्धी प्रमार्जना करनी चाहिये । अर्थात् जिस उपाश्रय में साधु रहते हों उसको प्रातःकाल, जब दो पहर के समय गोचरी को जावें तब और फिर तीसरे पहर के अन्त में इस तरह तीन दफा प्रमार्जित करना चाहिये । चातुर्मास के सिवा दो दफा प्रमार्जना करनी चाहिये । जब उपाश्रय जीव से असंसक्त हो तब की यह विधि है । यदि जीव से संसक्त हो तो बारंबार प्रमार्जना करनी चाहिये । शेष दो उपाश्रयों को नजर से देखते रहना चाहिये । परन्तु उन में ममत्व न करना चाहिये । तथा तीसरे दिन प्रोंछन से-दंडासन ने पड़िलेहन करना चाहिये ।60।

26 चातुर्मास रहे साधु साध्वी को अन्यतर दिशाओं का अवग्रह कर के अमुक दिशा और अनुदिशा-अग्नि आदि विदिशाओं का अवग्रह कर के अमुक दिशा या विदिशा में मैं जाता हूं दूसरे साधुओं को यों कह कर भात पानी के लिए जाना कल्पता है । हे पूज्य ! ऐसा किस हेतु से कहा है ? इस तरह शिष्य की तरफ से प्रश्न

For Private and Personal Use Only

होने पर गुरू कहते हैं–चातुर्मास में प्रायश्चित वहन करने के लिए या संयम के निमित्त छठ आदि करने वाले होते है । वे तपस्वी तप के कारण दुर्बल तथा कृश अंगवाले होते हैं इस लिए थकाव लगने से या अशक्ति से कदाचित कहीं मूर्छा आ जाय या गिर पड़े तो उसी दिशा में या विदिशा में पीछे उपाश्रय में रहे साधु खोज करें । यदि कहे बिना ही गया हो तो उसे कहां खोजने जायें ।61।

27 चातुर्मास रहे साधु साध्वी को वर्षाकाल में औषधि के लिए, या बीमार की सारसंभाल के लिए, या वैद्य के लिए चार पांच योजन जा कर भी वापिस आना कल्पता है, परन्तु वहां रहना नही कल्पता । यदि अपने स्थान पर न पहुंच सकता हो तो मार्ग में भी रहना कल्पता है परन्तु उस जगह रहना नहीं कल्पता, क्यों कि वहां से निकल जाने से वींर्याचार का आराधन होता है । जहां जाने से जिस दिन वर्षाकल्पादि मिल गया हो उस दिन की रात्रि को वहां रहना नहीं कल्पता । वहां से निकल जाना कल्पता है । वह रात्रि उल्लंघन करनी नहीं कल्पती । कार्य हो जाने पर तुरन्त ही निकल कर बाहर आ रहना यह भाव है ।62।

28 इस प्रकार पूर्व में कथन किये मुजब सांवत्सरिक चातुर्मास संबन्धी स्थविरकल्प को यथासूत्र–जैसे सूत्र में कथन किया है वैसे करना चाहिये पर सूत्र विरूद्ध न करना चाहिये । जिस प्रकार कहा है वैसे करे तो वह यथाकल्प कहलाता हैं और यदि विपरीत करे तो अकल्प कहलाता है । यथासूत्र और यथाकल्प आचरण आचरते हुए, ज्ञानादि त्रयरूप मार्ग को यथातथ्य–सत्य वचनानुसार और भली प्रकार मन, वचन, काया द्वारा

सेवन कर, अतिचार रहित पालन कर, विधिपूर्वक करने से सुशोभित कर जीवन पर्यन्त आराधन कर, दूसरों को उपदेषकर, श्री जिनेश्वरों द्वारा उपदेश किये मुजब जैसे पूर्व में पाला वैसे हीं फिर पाल कर कितने एक निर्ग्रंथ श्रमण उसको अति उत्तमतापूर्वक सेवन कर उसीं भव में सिद्ध होते हैं, केवलीं होते हैं, कर्मरूप पिंजरे से मुक्त होते हैं, कर्मकृत सर्व ताप से उपशमन से शीतल होते हैं और मन संबन्धीं सर्व दुःखों का अन्त करते हैं, कितने एक उसकी उत्तम पालना द्वारा दूसरे भव में सिद्ध होते हैं, यावत शरीर तथा मन संबन्धी सर्व दुःखों का अन्त करते हैं । कितने एक उसकी मध्यम पालना से तीसरे भव में यावत शरीर तथा मन संबन्धीं दुःखों का अन्त करते हैं । कितने एक जघन्य आराधना द्वारा भीं सात आठ भव तो उलघे हीं नहीं । अर्थात् सात आठ भव में तो अवश्य हीं मुक्ति पाते हैं ।63।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् श्री महावीर प्रभु राजगृह नगर में समवसरे । उस समय गुणशील नामक चैत्य में बहुत से साधुओं, बहुत सीं साध्वीयों, बहुत से श्रावकों, बहुत से श्राविकाओं, बहुत से देवों और बहुत सीं देवीयों के मध्य में रह कर इस प्रकार वचन योग द्वारा फल कथनपूर्वक जनाया, इस प्रकार प्ररूपण किया अर्थात् दरपण के समान श्रोताओं के हृदय में संक्रमाया और पर्युषणाकल्प नामक अध्ययन को प्रयोजन संहित, हेतु सहित, कारण सहित, सूत्र सहित, अर्थ सहित, सूत्रार्थ दोनों सहित, व्याकरण – पूछे हुए

For Private and Personal Use Only

अर्थ सहित बारंबार उपदिष्ट किया, अर्थात् पुनः पुनः उसका उपदेश किया । जिस प्रकार प्रभु ने कहा–त्यों श्री भद्रबाहुस्वामी ने अपने शिष्यों को कहा था । इस तरह श्री पर्युषणाकल्प नामक दशाश्रुतस्कंध का आठवां अध्ययन सम्पूर्ण हुआ ।

शुभं भवतुं ।

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इति श्री कल्पसूत्रम्
हिन्दी भावानुवाद सहितं ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

આ. શ્રી
કૈલાસસાગરસૂરિ
જ્ઞાનમંદિર
કોબા, ગાંધીનગર

For Private and Personal Use Only